जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

(भाग-4)

लेखन एवं सङ्कलन :
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षुमण्डल, देहरादून
एवं
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन परिवार, अलीगढ़

ॐ

॥ परमात्मने नमः ॥

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, पुष्प-4

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

(भाग-4)

अनेकान्त-स्याद्वाद; मोक्षमार्ग, एवं जीव के असाधारण पाँच भावों का प्रश्नोत्तरात्मक संग्रह

लेखन एवं सङ्कलन :

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)

प्रकाशक :

श्री दिगम्बर-जैन मुमुक्षुमण्डल, देहरादून

एवं

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन परिवार, अलीगढ़

पाँचवाँ संस्करण : 1100 प्रतियाँ (सम्पादित)
(दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर प्रकाशित, मंगलवार, 03 सितम्बर 2019)

मूल्य –

— मुमुक्षुता की प्रगटता अथवा भावना/संकल्प ही
इस पुस्तक का उचित मूल्य है।

Available At -

— **TEERTHDHAM MANGALAYATAN**
Aligarh-Agra Road, Sasni-204216, Hathras (U.P.)
www.mangalayatan.com; info@mangalayatan.com

— **TEERTHDHAM CHIDAYATAN**
Dusari Nasiyan se Aage, Hastinapur, Distt. Meerut-250404 (U.P.)
Shri Mukeshchand Jain, Mob, 9837079003

— **SHRI KUNDKUND KAHAN DIG. JAIN SWADHYAY MANDIR**
29, Gandhi Road, Dehradun-248001 (Uttarakhand)
Ph. : 0135 - 2654661 / 2623131

— **AZAD TRADING COMPANY**
Jain Mandir ke Neeche, Lal Kauyan, Bulandshahar-203001 (U.P.)
Ph. : 9897069781

— **SHREE KUNDKUND-KAHAN PARMARTHIK TRUST**
302, Krishna-Kunj, Plot No. 30,
Navyug CHS Ltd., V.L. Mehta Marg,
Vile Parle (W), Mumbai - 400056
e-mail : vitragva@vsnl.com / shethhiten@rediffmail.com

टाइप सेटिंग :
मङ्गलायतन ग्राफिक्स, अलीगढ़

मुद्रक :
देशना कम्प्यूटर्स, जयपुर

प्रकाशकीय

जगत के सब जीव सुख चाहते हैं और दु:ख से भयभीत हैं। सुख पाने के लिए यह जीव, सर्व पदार्थों को अपने भावों के अनुसार पलटना चाहता है, परन्तु अन्य पदार्थों को बदलने का भाव मिथ्या है, क्योंकि पदार्थ तो स्वयमेव पलटते हैं और इस जीव का कार्य, मात्र ज्ञाता-दृष्टा है।

सुखी होने के लिए जिनवचनों को समझना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान में जिनधर्म के रहस्य को बतलानेवाले अध्यात्मपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी हैं। ऐसे सतपुरुष के चरणों की शरण में रहकर हमने जो कुछ सीखा, पढ़ा है, उसके अनुसार पण्डित कैलाशचन्द्रजी जैन (बुलन्दशहर) द्वारा गुंथित जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला के सातों भाग, जिनधर्म के रहस्य को अत्यन्त स्पष्ट करनेवाले होने से चौथी बार प्रकाशित हो रहे हैं।

इस प्रकाशन कार्य में हम लोग अपने मण्डल के विवेकी और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहचाननेवाले स्वर्गीय श्री रूपचन्दजी, माजरावालों को स्मरण करते हैं, जिनकी शुभप्रेरणा से इन ग्रन्थों का प्रकाशनकार्य प्रारम्भ हुआ था।

हम बड़े भक्तिभाव से और विनयपूर्वक ऐसी भावना करते हैं कि सच्चे सुख के अर्थी जीव, जिनवचनों को समझकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करें। ऐसी भावना से इन पुस्तकों का चौथा प्रकाशन आपके हाथ में है।

इस चौथे भाग में जैनदर्शन के प्राणभूत अनेकान्त-स्याद्वाद का स्वरूप; जीव के असाधारण पाँच भावों का स्वरूप, मोक्षमार्ग सम्बन्धी प्रश्नोत्तर एवं ग्रन्थराज पंचाध्यायी के प्रश्नोत्तरों का समावेश किया गया

है। विदित हो कि पंचाध्यायी के प्रश्नोत्तर, मासिक आर्ष टीका के सात भागों में से संकलित किये गये हैं।

हमारे उपकारी आदरणीय पण्डित कैलाशचन्द्रजी के जन्म-शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में, तीर्थधाम मङ्गलायतन में आयोजित **मङ्गल समर्पण समारोह** के अवसर पर यह सम्पादित संस्करण प्रकाशित किया गया था, जिसका मुमुक्षु समाज में अत्यन्त समादर हुआ और शीघ्र ही इसकी सभी प्रतियाँ समाप्त हो गयीं, फलस्वरूप सम्पादित संस्करण का यह दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है, इसका हमें हर्ष है। प्रस्तुत ग्रन्थ को सुव्यवस्थित सम्पादितरूप में उपलब्ध कराने का श्रेय पण्डितजी के सुपुत्र श्री पवन जैन, अलीगढ़ एवं पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां को है। तदर्थ मण्डल की ओर से आभार व्यक्त करते हैं।

सभी जीव इस भाग में समाहित निश्चय-व्यवहार का सम्यक् स्वरूप समझकर, पक्षातिक्रान्त होकर स्वरूपानुभूति प्राप्त करें - यही भावना है।

03 सितम्बर 2019
दशलक्षण महापर्व के
पावन अवर पर प्रकाशित

निवेदक
दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल
देहरादून

भूमिका

वीतरागी जिनेन्द्र परमात्मा का अनेकान्त-स्याद्वादमयी जिनशासन, चार अनुयोगमय है एवं जिनवाणी में अनेकान्तमय वस्तु का स्याद्वादशैली में प्रतिपादन किया गया है। आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने अनेकान्त को जिनेन्द्रभगवान का अलंघ्य शासन कहा है। इसलिए अनेकान्तमय वस्तु को जानकर, उसमें से सम्यक् एकान्तस्वरूप निज शुद्धात्मद्रव्य का अवलम्बन ही परम हितकारी है, इसलिए इस चौथे भाग में सर्व प्रथम अनेकान्त स्याद्वाद सम्बन्धी प्रश्नोत्तर दिये गये हैं।

आत्मा का हित मोक्ष ही है क्योंकि मोक्ष में आकुलता नहीं है; अतः निज चैतन्यस्वभावी भगवान आत्मा के आश्रय से मोक्षमार्ग प्रगट करना, प्रत्येक पात्र जीव का कर्तव्य है। अनादि काल से ही अज्ञानी जीव, शुभभावरूप पराश्रितभावों में मोक्षमार्ग की कल्पना करके अथवा शरीराश्रित क्रियाकाण्ड में मोक्षमार्ग मानकर, संसार परिभ्रमण का पात्र बना हुआ है; इसलिए दूसरे और तीसरे अध्याय में मोक्षमार्ग तथा मोक्षमार्ग सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों का समावेश किया गया है; जिससे बन्धमार्ग में मोक्षमार्ग माननेरूप मिथ्याभ्रान्ति का अभाव होकर आत्मकल्याण का पथ प्रशस्त हो।

तत्त्वार्थसूत्र में जीवों के निज भावों का वर्णन करते हुए, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक एवं पारिणामिकभाव को जीव का स्वतत्त्व कहा गया है। इन भावों का स्वरूप पहचानकर, उपादेयभूत निज परमपारिणामिकभाव के अवलम्बन से, सर्व प्रथम औपशमिक, धर्म का क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव प्रगट करना पात्र जीवों का कर्तव्य है। यद्यपि औदयिकभाव भी जीव की पर्याय में होता है, तथापि आकुलतामय होने से उसे हेय कहा गया है। इन सभी पंच भावों पर उपयोगी प्रश्नोत्तरों का समावेश भी इस पुस्तक में किया गया है।

पण्डित राजमलजी द्वारा रचित पंचाध्यायी ग्रन्थ अध्यात्म के सूक्ष्म एवं गम्भीर रहस्यों से भरपूर है। इसमें द्रव्य-गुण-पर्याय; निश्चय-व्यवहार आदि नय; जीवों के पाँच भाव; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का

स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रतिपादित किया गया है। अतः पात्र जीवों के लिये उपयोगी जानकर, इस ग्रन्थ के आधार पर प्रश्नोत्तरों का संकलन अन्त में परिशिष्टरूप से दिया गया है।

यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि वर्तमान दिगम्बर जैन समाज में उक्त समस्त विषयों की चर्चा का उदय पूज्य गुरुदेवश्री की अध्यात्म क्रान्ति से ही हुआ है। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने प्रवचनों में जैन सिद्धान्तों का आत्महितकारी स्वरूप स्पष्ट करते हुए, निरन्तर आत्मकल्याण की पावन प्रेरणा भी प्रदान की है। इस उपकार के लिये पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में सादर वन्दन समर्पित करता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन एवं समादरणीय श्री रामजीभाई दोशी, श्री खीमचन्दभाई सेठ की कक्षाओं के समय ही मैं इन विषयों को प्रश्नोत्तररूप से आत्महितार्थ लिखता रहा हूँ, जिसे देहरादून मुमुक्षु मण्डल ने अब तक तीन बार प्रकाशित किया है। अब यह चौथा संस्करण मेरी भावना के अनुरूप सम्पादित होकर प्रकाशित किया जा रहा है, जिसकी मुझे प्रसन्नता है।

हे जीवों! यदि आत्महित करना चाहते हो तो समस्त प्रकार से परिपूर्ण निज आत्मस्वभाव की रुचि और विश्वास करो। देहादि से सर्वथा भिन्न ज्ञानस्वरूप निज आत्मा का निर्णय करना ही सम्पूर्ण जिनशासन का सार है क्योंकि जो जीव, देहादि से भिन्न ज्ञान-दर्शनस्वभावी आत्मा का आश्रय लेते हैं, वे मोक्षमार्ग प्राप्त कर मोक्ष को चले जाते हैं और जो देहादि में ही अपनेपने का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करते हैं, वे चारों गतियों में घूमकर निगोद में चले जाते हैं।

सभी जीव इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किये गये प्रश्नोत्तरों का बारम्बार अभ्यास करके, आत्महित के मार्ग में प्रवर्तमान हों - इसी भावना के साथ-

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन
अलीगढ़

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारत की वसुन्धरा, अनादि से ही तीर्थङ्कर भगवन्तों, वीतरागी सन्तों, ज्ञानी-धर्मात्माओं एवं दार्शनिक / आध्यात्मिक चिन्तकों जन्मदात्री रही है। इसी देश में वर्तमान काल में भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं। वर्तमान में भगवान महावीर के शासनकाल में धरसेन आदि महान दिगम्बर सन्त, श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य आदि महान आध्यात्मिक सन्त, इस पवित्र जिनशासन की पताका को दिग्दिगन्त में फहराते रहे हैं।

वर्तमान शताब्दी में जिनेन्द्रभगवन्तों, वीतरागी सन्तों एवं ज्ञानी धर्मात्माओं द्वारा उद्घाटित इस शाश्वत् सत्य को, जिन्होंने अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से स्वयं आत्मसात करते हुए पैंतालीस वर्षों तक अविरल प्रवाहित अपनी दिव्यवाणी से, इस विश्व में आध्यात्मिक क्रान्ति का शंखनाद किया - ऐसे परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी से आज कौन अपरिचित है! पूज्य गुरुदेवश्री ने क्रियाकाण्ड की काली कारा में कैद, इस विशुद्ध जिनशासन को अपने आध्यात्मिक आभामण्डल के द्वारा न मुक्त ही किया, अपितु उसका ऐसा प्रचार-प्रसार जिसने मानों इस विषम पञ्चम काल में तीर्थङ्करों का विरह भुलाकर, भरतक्षेत्र को विदेहक्षेत्र और पञ्चम काल को चौथा काल ही बना दिया।

भारतदेश के गुजरात राज्य में भावनगर जनपद के 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल, सन् 1890 ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

सात वर्ष की वय में लौकिक शिक्षा लेना प्रारम्भ किया। प्रत्येक वस्तु के हृदय तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धिप्रतिभा, मधुरभाषीपना, शान्तस्वभाव, सौम्य व गम्भीर मुखमुद्रा, तथा निस्पृह स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में प्रिय हो गये। विद्यालय और

जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में माता के अवसान से, पिताजी के साथ पालेज जाना हुआ। चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर रात्रि के समय रामलीला या नाटक देखने जाते, तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन के काव्य की रचना करते हैं — **शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।**

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करते हैं, और गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करते हैं, फिर 24 वर्ष की उम्र में (विक्रम संवत् 1970) में जन्मनगरी उमराला में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार करते हैं। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाती है, तीक्ष्ण बुद्धि के धारक कानजी को शङ्का होती है कि कुछ गलत हो रहा है।

विक्रम संवत् 1978 में महावीरप्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसङ्ग बनता है :

विधि के किसी धन्य क्षण में श्रीमद्‌भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, गुरुदेवश्री के हस्तकमल में आता है और इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्‌गार निकलते है — **'यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** समयसार का अध्ययन और चिन्तन करते हुए अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रस्फुटित होता है एवं अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन होता है। भूली पड़ी परिणति निज घर देखती है। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़,

मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो जाता है कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण अन्तरंग श्रद्धा कुछ और तथा बाहर में वेष कुछ और — यह स्थिति आपको असह्य लगने लगती है। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय करते हैं।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थल की शोध करते हुए सोनगढ़ आकर 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर जन्मकल्याणक के दिवस, (चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991) दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न, मुँहपट्टी का त्याग करते हैं और स्वयं घोषित करते हैं कि '**अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।**' सिंहवृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

'स्टार ऑफ इण्डिया' में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा। अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय-मन्दिर**' का निर्माण किया। गुरुदेवश्री ने ज्येष्ठ कृष्णा 8, संवत् 1994 के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह 'स्वाध्यायमन्दिर' जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

यहाँ दिगम्बरधर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया। उनमें से 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर तो 19 बार अध्यात्म वर्षा की। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक

अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1961 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण किया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, इस हेतु से विक्रम संवत् 2000 के मार्गशीष माह से (दिसम्बर 1943 से) **'आत्मधर्म'** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 – फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पञ्च कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा अफ्रीका के नैरोबी में कुल 66 पञ्च कल्याणक तथा वेदी प्रतिष्ठा इन वीतरागमार्ग प्रवर्तक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ।

दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार (मार्गशीष कृष्णा 7, संवत् 2037) के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष देहादि का लक्ष्य छोड़कर, अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके यहाँ से अध्यात्म युग सृजन कर गये।

अनुक्रमणिका

1. अनेकान्त और स्याद्वाद 3

2. मोक्षमार्ग 59

3. मोक्षमार्ग सम्बन्धी प्रश्नोत्तर 104

4. जीव के असाधारण पाँच भाव 131

5. पञ्चाध्यायी प्रश्नोत्तर 173

परमागम के सारभूत सिद्धान्त

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपनाहै।
10. ध्रुव का अवलम्बन है, वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

ॐ

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

भाग - 4

मङ्गलाचरण

णमो अरहन्ताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं;
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं ॥1॥

आत्मा सो अर्हन्त है, निश्चय सिद्ध जु सोहि।
आचारज उवझाय अरु, निश्चय साधु सोहि ॥2॥

स्याद्वाद अधिकार अब, कहौ जैन को मूल।
जाकें जानत जगत जन, लहैं जगत-जल-कूल ॥3॥

देव गुरु दोनों खड़े, किसके लागू पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, भगवन दियो बताय ॥4॥

करुणानिधि गुरुदेवश्री, दिया सत्य उपदेश।
ज्ञानी माने परख कर, करे मूढ़ संक्लेश ॥5॥

आत्मार्थी मुमुक्षु के लिए पूज्य गुरुदेवश्री का सन्देश

वीतरागवाणी का तात्पर्य : स्व-सन्मुखता

– आत्मा, परद्रव्य का कर्ता या भोक्ता नहीं – ऐसा बताकर, परद्रव्य का कर्ता-भोक्तापना छुड़ाकर, स्व-सन्मुखता कराना है।

– विकार का कर्ता, कर्म नहीं है – ऐसा कहकर, कर्माधीन दृष्टि छुड़ाना है।

– विकार का कर्ता, कर्म है; जीव नहीं है; कर्म व्यापक होकर विकार करता है – ऐसा कहकर, एक समय के उपाधिभाव से भेदज्ञान कराकर, द्रव्य पर दृष्टि कराना है।

– तत् समय की योग्यता से जो विकार होनेवाला था, वही हुआ है – ऐसा कहकर, एक समय के विकार का लक्ष्य छुड़ाकर, दृष्टि को द्रव्य पर लगाना है।

– विकार भी जो क्रमबद्ध में था, वही हुआ है – इस कथन से क्रमबद्धपर्याय के स्वकाल का सत् परिणमन व विकार का अकर्तापना बताकर, ज्ञातास्वभाव की दृष्टि कराना है।

– निर्मलपरिणाम भी क्रमबद्ध हैं – ऐसा कहकर, शुद्धपर्याय के एक अंश का लक्ष्य छुड़ाकर, त्रिकाली ध्रुव का लक्ष्य कराना है।

– पर्याय का कर्ता, परद्रव्य नहीं है – ऐसा कहकर पर से दृष्टि हटाकर, स्वद्रव्य में लगाना है।

– पर्याय का कर्ता, स्वद्रव्य भी नहीं है, पर्याय अपने षट्कारक से स्वतन्त्र होती है – इस प्रकार पर्याय की स्वतन्त्रता बताकर, उसका लक्ष्य छुड़ाकर, दृष्टि को द्रव्य-सन्मुख कराना है।

– विकार या निर्मलपर्याय का कर्ता, ध्रुव द्रव्य नहीं है; पर्याय ही पर्याय का कर्ता है। ध्रुव द्रव्य, बन्ध-मोक्ष परिणाम का कर्ता भी नहीं है – ऐसा बताकर, पर्याय की सन्मुखता छुड़ाकर, ध्रुव की सन्मुखता कराना है।

1

अनेकान्त और स्याद्वाद

प्रश्न 1– स्याद्वाद–अनेकान्त के विषय में समयसार कलश चार में क्या बताया है ?

उत्तर – **उभयनयविरोधध्वंसिनि स्यात्पदांके,**
जिनवचसि रमन्ते ये स्वयं वान्तमोहाः।
सपदि समयसारं ते परं ज्योतिरुच्चै–
रनवमनयपक्षाक्षुण्णमीक्षन्त एव॥4॥

श्लोकार्थ – [**उभय–नय–विरोध–ध्वंसिनि**] निश्चय और व्यवहार – इन दो नयों के विषय के भेद से परस्पर विरोध है; उस विरोध का नाश करनेवाला [**स्यात्–पद–अंके**] 'स्यात्' पद से चिह्नित [**जिनवचसि**] जो जिन भगवान का वचन (वाणी) है, [**ये रमन्ते**] उसमें जो पुरुष रमते हैं (रङ्ग, राग, भेद का आश्रय छोड़कर, त्रिकाली अपने भगवान का आश्रय लेते हैं), [**ते**] वे पुरुष [**स्वयं**] अपने आप ही (अन्य कारण के बिना) [**वान्तमोहाः**] मिथ्यात्वकर्म के उदय का वमन करके, [**उच्चैः परं ज्योतिः समयसारं**] इस अतिशयरूप परमज्योति प्रकाशमान शुद्ध आत्मा को [**सपदि**] तत्काल (उसी क्षण) [**ईक्षन्ते एव**] देखते ही हैं (अनुभव करते हैं)। कैसा है समयसाररूप शुद्ध आत्मा ? [**अनवम्**] नवीन उत्पन्न नहीं हुआ; किन्तु कर्मों से आच्छादित था, सो ज्ञायक की ओर दृष्टि करने से प्रगट व्यक्तरूप हो गया है और समयसाररूप शुद्ध आत्मा कैसा है ? [**अनय–पक्ष–अक्षुण्णम्**] सर्वथा एकान्तरूप कुनय के पक्ष से खण्डित नहीं होता, निर्बाध है।

प्रश्न 2- स्याद्वाद-अनेकान्त के विषय में नाटक समयसार में क्या बताया है ?

उत्तर - निहचैमैं रूप एक विवहारमैं अनेक,
याहि नै-विरोध मैं जगत भरमायौ है।
जगके विवाद नासिबे कौं जिन आगम है,
जामैं स्याद्वाद नाम लच्छन सुहायौ है॥
दरसनमोह जाकौ गयौ है सहजरूप,
आगम प्रमान ताके हिरदैं मैं आयौ है।
अनैसौ अखंडित अनूतन अनंत तेज,
ऐसौ पद पूरन तुरन्त तिनि पायौ है॥

अर्थ - निश्चयनय से पदार्थ एकरूप है और व्यवहार में अनेकरूप है। इस नय-विरोध में संसार भूल रहा है, सो इस विवाद को नष्ट करनेवाला जिनागम है, जिसमें स्याद्वाद का शुभ चिह्न है। (मुहर छाप लगी है - स्याद्वाद से ही पहिचाना जाता है कि यह जिनागम है)। जिस जीव को दर्शनमोहनीय का उदय नहीं होता, उसके हृदय में स्वत: स्वभाव यह प्रमाणिक जिनागम प्रवेश करता है और उसे तत्काल ही नित्य, अनादि और अनन्त प्रकाशमान मोक्षपद प्राप्त होता है।

प्रश्न 3- स्याद्वाद-अनेकान्त के विषय में पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, श्लोक 225 में अमृतचन्द्राचार्यजी ने क्या बताया है ?

उत्तर - एकेनाकर्षन्ती श्लथयन्ती वस्तुतत्त्वमितरेण।
अन्तेन जयति जैनी नीतिर्मन्थान नैत्रमिव गोपी॥

अर्थात् दही की मथानी की रस्सी को खेंचनेवाली ग्वालिनी की तरह जिनेन्द्रदेव की स्याद्वाद नीति अथवा निश्चय-व्यवहाररूप

नीति वस्तु के स्वरूप को एक सम्यग्दर्शन से अपनी तरफ खेंचती है, दूसरे से अर्थात् सम्यग्ज्ञान से शिथिल करती है और अन्तिम अर्थात् सम्यक्चारित्र से सिद्धरूप कार्य को उत्पन्न करने से सर्व के ऊपर वर्तती है।

भावार्थ - भगवान की वाणी, स्याद्वाद अनेकान्तात्मक है; वस्तु का स्वरूप प्रधानतया-गौणनय की विवक्षा से किया जाता है। जैसे कि जीवद्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी है; द्रव्यार्थिकनय की विवक्षा से नित्य है और पर्यायार्थिकनय की विवक्षा से अनित्य है, यह नय विवक्षा है।

प्रश्न 4- नाटक-समयसार में जैनमत का मूल सिद्धान्त क्या बताया है, जिससे जीव, संसार से पार होते हैं?

उत्तर - स्याद्वाद अधिकार अब, कहौं जैन कौ मूल।
जाके जानत जगत जन, लहैं जगत-जल-कूल॥

अर्थ - जिनमत का मूल सिद्धान्त 'अनेकान्त स्याद्वाद' है। जिसका ज्ञान होने से जगत् के मनुष्य, संसार-सागर से पार होते हैं।

प्रश्न 5- अनेकान्तमयी जिनवाणी का स्वरूप, श्री प्रवचनसार, कलश दो में क्या बताया है?

उत्तर - 'जो महामोहरूपी अन्धकार समूह को लीलामात्र में नष्ट करता है और जगत् के स्वरूप को प्रकाशित करता है, वह अनेकान्त ज्ञान सदा जयवन्त रहो' - ऐसा बताया है।

प्रश्न 6- समयसार कलश दो में पण्डित जयचन्द्रजी ने सरस्वती की अनेकान्तमयी सत्यार्थमूर्ति किसे कहा है?

उत्तर - 'सम्यग्ज्ञान ही सरस्वती की सत्यार्थमूर्ति है। उसमें भी सम्पूर्ण ज्ञान तो केवलज्ञान है, जिसमें समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष भासित

होते हैं। केवलज्ञान, अनन्त धर्म और गुणसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है; इसलिए वह सरस्वती की मूर्ति है और केवलज्ञान के अनुसार जो भावश्रुतज्ञान है, वह आत्मतत्त्व को परोक्ष देखता है; इसलिए भावश्रुतज्ञान भी सरस्वती की मूर्ति है। द्रव्यश्रुत-वचनरूप है, वह भी निमित्तरूप उसकी मूर्ति है, क्योंकि वह वचनों के द्वारा अनेक धर्मवाले आत्मा को बतलाती है। इस प्रकार समस्त पदार्थों के तत्त्व को बतानेवाली सम्यग्ज्ञानरूप (उपादान) तथा वचनरूप (निमित्त) अनेकान्तमयी सरस्वती की मूर्ति है।'

प्रश्न 7- पुरुषार्थसिद्ध्युपाय के दूसरे श्लोक में कैसे अनेकान्त को नमस्कार किया है ?

उत्तर - (1)जो परमागम का जीवन है, (2) जिसने अन्य एकान्तमतियों की भिन्न-भिन्न एकान्त मान्यताओं का खण्डन कर दिया है, और (3) जिसने समस्त नयों द्वारा प्रकाशित जो वस्तु का स्वभाव है, उसके विरोध को नष्ट कर दिया है। मैं, उस अनेकान्त को, अर्थात् एक पक्षरहित स्याद्वादरूप भावश्रुतज्ञान को नमस्कार करता हूँ - ऐसा कहा है।

प्रश्न 8- अनेकान्त-स्याद्वाद, परमागम का जीवन क्यों है ?

उत्तर - जगत् का प्रत्येक सत्, अनेकान्तरूप है। अस्ति-नास्ति, तत्-अतत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि युगलों से गुँथित है। जब पदार्थ ही स्वत:सिद्ध अनेकान्तरूप है, तो उसको जाननेवाला वही ज्ञान, प्रमाण कोटि में आ सकता है कि जो अनेकान्त को अनेकान्तरूप ही जाने। इसलिए अनेकान्त स्याद्वाद को परमागम का जीवन कहा है -

एक काल में देखिये अनेकान्त का रूप।
एक वस्तु में नित्य ही विधि निषेध स्वरूप॥

प्रश्न 9- अनेकान्त-स्याद्वाद को समझने समझाने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर - अज्ञानियों में अनादिकाल से एक-एक समय करके जो पर पदार्थों में, शुभाशुभ विकारीभावों में कर्ता-भोक्ता की खोटी बुद्धि है, उसका अभाव करने के लिए और अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति के निमित्त अनेकान्त-स्याद्वाद को समझने-समझाने की आवश्यकता है।

प्रश्न 10- अनेकान्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - प्रत्येक वस्तु में वस्तुपने की सिद्धि करनेवाली अस्ति -नास्ति आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का एक ही साथ प्रकाशित होना - उसे अनेकान्त कहते हैं।

प्रश्न 11- प्रत्येक वस्तु में किस-किस का ग्रहण होता है ?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य का, प्रत्येक गुण का, प्रत्येक पर्याय का, प्रत्येक अविभाग प्रतिच्छेद का ग्रहण होता है।

प्रश्न 12- अनेकान्त की व्याख्या में 'आदि' शब्द आया है, उससे क्या-क्या समझना ?

उत्तर - एक-अनेक, नित्य-अनित्य, अभेद-भेद, सत्-असत्, तत्-अतत् आदि अनेक युगल समझ लेना।

प्रश्न 13- सत्-असत् आदि युगल किस-किस में लग सकते हैं ?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य में, प्रत्येक गुण में, प्रत्येक पर्याय में, प्रत्येक अविभाग प्रतिच्छेद में लग सकते हैं।

प्रश्न 14- एक अनेक, नित्य-अनित्य, सत्-असत् आदि क्या हैं ?

उत्तर - धर्म हैं; गुण नहीं हैं।

प्रश्न 15- धर्म और गुण में क्या अन्तर है ?

उत्तर - गुणों को धर्म कह सकते हैं, परन्तु धर्मों को गुण नहीं कह सकते हैं। क्योंकि - (1) अस्तित्व, वस्तुत्व आदि सामान्य और विशेषगुण होते हैं, उनकी पर्यायें होती है। (2) नित्य-अनित्य, तत् -अतत् आदि धर्म हैं, उनकी पर्यायें नहीं होती हैं। ये अपेक्षित धर्म हैं।

प्रश्न 16- प्रत्येक द्रव्य में सत्-असत्, नित्य-अनित्य, एक -अनेक आदि अनेक अपेक्षित धर्म हैं, वे किस प्रकार हैं ?

उत्तर - जैसे - एक आदमी को कोई पिताजी, कोई बेटाजी, कोई मामाजी, कोई चाचाजी, कोई ताऊजी कहता है, तो क्या वह झगड़ा करेगा ? नहीं करेगा, क्योंकि वह समझता है, इस अपेक्षा मामा हूँ, इस अपेक्षा पिताजी हूँ; उसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य में नित्य-अनित्य, एक -अनेक आदि अनेक अपेक्षित धर्म हैं। उनमें अपेक्षा समझने से कभी भी झगड़ा नहीं होगा और अनेकान्त-स्याद्वादधर्म की सिद्धि हो जावेगी।

प्रश्न 17- अनेकान्त-स्याद्वाद किसमें लग सकता है और किसमें नहीं लग सकता है ?

उत्तर - जिसमें जो धर्म हो, उसी में लग सकता है। जिसमें जो धर्म नहीं हो, उसमें नहीं लग सकता है। जैसे - परमाणु निश्चय से अप्रदेशी (एक प्रदेशी) है, व्यवहार से बहुप्रदेशी है; उसी प्रकार कालद्रव्य निश्चय से अप्रदेशी (एक प्रदेशी) है, व्यवहार से काल द्रव्य बहुप्रदेशी हो - ऐसा नहीं है।

प्रश्न 18- अनेकान्त का द्रव्य-गुण-पर्याय क्या है ?

उत्तर - आत्मा, द्रव्य है; ज्ञान, गुण है; अनेकान्त ज्ञानरूप, पर्याय है।

प्रश्न 19- अनेकान्त का व्युत्पत्ति अर्थ क्या है ?

उत्तर - अन् = नहीं; एक = एक; अन्त = धर्म; अर्थात् एक धर्म नहीं, दो / अधिक धर्म हों, यह अनेकान्त का व्युत्पत्ति अर्थ है।

प्रश्न 20- अनेकान्त क्या बताता है?

उत्तर - दो धर्म हों, वे परस्पर विरुद्ध हों और वस्तु को सिद्ध करते हों, यह अनेकान्त बताता है।

प्रश्न 21- क्या नित्य-अनित्य आदि विरोधी धर्म हैं?

उत्तर - नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि विरोधी धर्म नहीं हैं। परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, है नहीं क्योंकि उनकी सत्ता एक द्रव्य में एक साथ पायी जाती है।

प्रश्न 22- वस्तु किसे कहते हैं?

उत्तर - (1) जिसमें गुण-पर्याय बसते हों, उसे वस्तु कहते हैं। (2) जिसमें सामान्य-विशेषपना पाया जावे, उसे वस्तु कहते हैं। (3) जो अपना-अपना प्रयोजनभूत कार्य करता हो, उसे वस्तु कहते हैं।

प्रश्न 23- वस्तु की ये तीन व्याख्या किसमें पायी जाती हैं?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य में पायी जाती हैं। अत: जाति अपेक्षा छह द्रव्य और संख्या अपेक्षा जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तान्त, धर्म -अधर्म-आकाश एक-एक और लोकप्रमाण असंख्यात कालद्रव्य, सब वस्तु हैं।

प्रश्न 24- वस्तु को जानने से हमें क्या लाभ रहा?

उत्तर - जब प्रत्येक द्रव्य वस्तु है, तो मैं भी एक वस्तु हूँ। मैं अपने गुण-पर्यायों में बसता हूँ; पर में नहीं बसता हूँ। ऐसा जानकर, अपनी वस्तु की ओर दृष्टि करे तो तत्काल सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर क्रम से निर्वाण की प्राप्ति हो, यह वस्तु को जानने का लाभ है।

प्रश्न 25- मैं किसमें नहीं बसता हूँ और किसमें बसता हूँ ?

उत्तर - (1) अत्यन्त भिन्न परपदार्थों में नहीं बसता हूँ, अपने गुण-पर्यायों में बसता हूँ। (2) आँख-नाक-कान आदि औदारिक -शरीर में नहीं बसता हूँ, अपने गुण-पर्यायों में बसता हूँ। (3) तैजस -कार्माणशरीर में नहीं बसता हूँ, अपने गुण-पर्यायों में बसता हूँ। (4) भाषा और मन में नहीं बसता हूँ, अपने गुण-पर्यायों में बसता हूँ। (5) शुभाशुभभावों में नहीं बसता हूँ, अपने गुण-पर्यायों में बसता हूँ। (6) अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्यायोंरूप भेद कल्पना में नहीं बसता हूँ, अपने गुण-पर्यायों में बसता हूँ। (7) भेदनय के पक्ष में नहीं बसता हूँ, अपने गुण-पर्यायों में बसता हूँ। (8) अभेदनय के पक्ष में नहीं बसता हूँ, अपने गुण-पर्यायों में बसता हूँ। (9) भेदाभेदनय के पक्ष में नहीं बसता हूँ, अपने गुण-पर्यायों में बसता हूँ।

प्रश्न 26- प्रत्येक वस्तु अपने-अपने में ही बसती है, पर में नहीं बसती, यह महामन्त्र किन-किन शास्त्रों में आया है ?

उत्तर - (अ) अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादासहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के आधीन नहीं है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती।''

(श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52)

(आ) सर्व पदार्थ, अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं, तथापि वे परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते। *(श्री समयसार, गाथा 3)*

(इ) अपने-अपने सत्वकूँ, सर्व वस्तु विलसाय। ऐसे चिंतवै जीव तब, परतें ममत न थाय। *(श्री जयचन्द्रजी, अन्यत्वभावना)*

(ई) अन्य द्रव्य से, अन्य द्रव्य के गुण की उत्पत्ति नहीं की जा सकती, क्योंकि सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभाव से उत्पन्न होते हैं।

(श्री समयसार, गाथा 372)

(उ) सत् द्रव्य लक्षणम्। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य-युक्तं सत्।

(तत्त्वार्थसूत्र)

(ऊ) जिनेन्द्रभगवान की वाणी से कथित सर्व पदार्थों का द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप ही यथार्थ है, यह पारमेश्वरी व्यवस्था है।

(श्री प्रवचनसार, गाथा 93)

यह सब महामन्त्र हैं।

प्रश्न 27- विरोध कितने प्रकार का है?

उत्तर - दो प्रकार का है। (1) एक विरोध, बिल्ली-चूहे की तरह; नेवला-साँप की तरह; अन्धकार-प्रकाश की तरह; सम्यक्त्व के समय ही मिथ्यात्व का सद्भाव मानना आदि विरोध, वस्तु को नाश करनेवाला है। (2) दूसरा विरोध, अस्ति-नास्ति आदि वस्तु को सिद्ध करनेवाला है।

प्रश्न 28- बिल्ली-चूहे की तरह का विरोध, वस्तु का नाश करनेवाला कैसे है?

उत्तर - वस्तु अनेकान्तरूप है, परन्तु जो वस्तु को सर्वथा एकरूप ही मानते हैं, वह विरोध, वस्तु का नाश करनेवाला है। जैसे - कोई वस्तु को सर्वथा सामान्यरूप ही मानता है। कोई वस्तु को सर्वथा विशेषरूप ही मानता है। कोई वस्तु को सर्वथा असत् ही मानता है। कोई वस्तु को सर्वथा एकरूप मानकर द्रव्य-गुण-पर्याय के भेदों का नाश करता है। कोई वस्तु को सर्वथा भेदरूप ही मानकर स्वत:सिद्ध अखण्ड वस्तु को खण्ड-खण्ड ही मानता है। ऐसी मान्यताएँ, अर्थात् बिल्ली-चूहे की तरह का विरोध, वस्तु का नाश करनेवाला है।

प्रश्न 29- क्या कहीं छहढाला में वस्तु का नाश करनेवाला विरोध बताया है?

उत्तर -

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि-रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहुदेनत्रास॥

(1) जगत् में सर्वथा नित्य, एक, अद्वैत और सर्व-व्यापक ब्रह्ममात्र वस्तु है; अन्य कोई पदार्थ नहीं है। (2) वस्तु सर्वथा क्षणिक-अनित्य है। (3) गुण-गुणी, सर्वथा भिन्न हैं; किसी गुण के संयोग से वस्तु है। (4) जगत् का कोई कर्ता-हर्ता तथा नियंता है। (5) दया-दान महाव्रतादि शुभराग से मोक्ष होता है। (6) निमित्त से उपादान में कार्य होता है। (7) शुभभाव, मोक्षमार्ग है आदि सर्वथा एकान्तरूप विरोध, वस्तु का नाश करनेवाला है - ऐसा छहढाला में बताया है।

प्रश्न 30- अस्ति-नास्ति आदि विरोध, वस्तु को सिद्ध करनेवाला किस प्रकार है ?

उत्तर - नय विवक्षा से वस्तु में अनेक स्वभाव हैं और उनमें परस्पर विरोध है। जैसे - अस्ति है, वह नास्ति का प्रतिपक्षीपना है परन्तु जब स्याद्वाद अनेकान्त से स्थापन करें तो सर्व विरोध दूर हो जाता है।

प्रश्न 31- नित्य-अनित्य विरोध, वस्तु को कैसे सिद्ध करता है ?

उत्तर - क्या वस्तु नित्य है ? उत्तर हाँ। क्या वस्तु अनित्य भी है ? उत्तर हाँ। देखो, दोनों प्रश्नों के उत्तर में 'हाँ' है। विरोध लगता है परन्तु वस्तु द्रव्य-गुण की अपेक्षा नित्य है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है - ऐसा स्याद्वाद-अनेकान्त वस्तु को सिद्ध करता है।

प्रश्न 32- तत्-अतत् विरोध वस्तु को कैसे सिद्ध करता है ?

उत्तर - जो (वस्तु) तत् है, वही अतत् है। आत्मा, स्वरूप से

(ज्ञानरूप से) तत् है, वही ज्ञेयरूप से अतत् है। स्याद्वाद अनेकान्त वस्तु को तत्-अतत् स्वभाववाली बतलाकर, इनके विरोध को मेटकर वस्तु को सिद्ध करता है।

प्रश्न 33- एक-अनेक का विरोध, वस्तु को कैसे सिद्ध करता है?

उत्तर - एक नय अखण्ड वस्तु की स्थापना करके द्रव्य-गुण -पर्याय के भेद को इन्कार करता है, किन्तु अनेक नय द्रव्य-गुण -पर्याय का भिन्न-भिन्न लक्षण बतलाकर, वस्तु को भेदरूप स्थापित करता है। इस प्रकार इनमें विरोध दिखते हुए भी स्याद्वाद-अनेकान्त वस्तु को एक-अनेक बतलाकर, इनके विरोध को मेटकर, वस्तु को सिद्ध करता है।

प्रश्न 34- उपादान और निमित्त में एकान्ती और अनेकान्ती की मान्यता किस प्रकार हैं?

उत्तर - (1) उपादान कुछ नहीं करता, केवल निमित्त ही उसे परिणमाता है, वह भी एक धर्म को माननेवाला एकान्ती है, तथा जो यह मानता है कि निमित्त की उपस्थिति ही नहीं होती, वह भी एक धर्म का लोप करनेवाला एकान्ती है। (2) परन्तु जो यह मानता है कि परिणमन तो सब निरपेक्ष अपने-अपने चतुष्टय में स्वकाल की योग्यता से करते हैं, किन्तु जहाँ आत्मा विपरीतदशा में परिणमता है, वहाँ योग्य कर्म का उदयरूप निमित्त की उपस्थिति होती है तथा जहाँ आत्मा पूर्ण स्वभावरूप परिणमता है, वहाँ सम्पूर्ण कर्म का अभावरूप निमित्त होता है, वह दोनों धर्मों को माननेवाला अनेकान्ती है।

प्रश्न 35- व्यवहार-निश्चय में एकान्ती और अनेकान्ती की मान्यता किस प्रकार हैं?

उत्तर - (1) जो निश्चयरत्नत्रय से अनभिज्ञ है और मात्र देव

-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन; शास्त्रज्ञान को सम्यग्ज्ञान; अणुव्रतादिक को श्रावकपना; और महाव्रतादिक को मुनिपना मानता है, वह व्यवहाराभासी एकान्ती है। जो भूमिकानुसार राग को पूर्वचर या सहचररूप से नहीं मानता, वह निश्चयाभासी एकान्ती है।

(2) किन्तु जो मोक्षमार्ग तो निरपेक्ष शुद्धरत्नत्रय को ही मानता है और भूमिकानुसार पूर्वचर या सहचर भी साधक के होता है - ऐसा मानता है, वह स्याद्वाद-अनेकान्त का मर्मी अनेकान्ती है।

प्रश्न 36- द्रव्य और पर्याय के विषय में एकान्ती कौन है और अनेकान्ती कौन है ?

उत्तर - (1) जो साँख्यवत् त्रिकाली शुद्धद्रव्य को त्रिकाल शुद्ध मानता है किन्तु पर्याय को नहीं मानता है। वह एक धर्म का लोप करनेवाला एकान्ती है, तथा जो बौद्धवत् पर्याय को ही मानता है, उसमें अन्वयरूप से पाया जानेवाला द्रव्य को नहीं मानता, वह भी एक धर्म का लोप करनेवाला एकान्ती है।

(2) किन्तु जो द्रव्य और पर्याय दोनों को मानता है तथा पर्याय का आश्रय छोड़कर, द्रव्य का ही आश्रय करता है, वह स्याद्वाद अनेकान्त का मर्मी अनेकान्ती है।

प्रश्न 37- जो पर की क्रिया को अपनी मानता है, वह कौन है और प्रत्येक द्रव्य में अपनी-अपनी क्रिया होती है - ऐसा मानता है, वह कौन है ?

उत्तर - (1) मन-वचन-काय, पर वस्तु की क्रिया का कर्ता आत्मा को मानता है, वह एक पदार्थ की क्रिया का लोप करनेवाला एकान्ती है।

(2) जो यह मानता है कि प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्ररूप से अपने-अपने परिणाम को करता है, वह स्याद्वाद-अनेकान्त का मर्मी अनेकान्ती है।

प्रश्न 38- विरोध होते हुए भी विरोध, वस्तु को सिद्ध करता है, इसमें करणानुयोग का दृष्टान्त देकर समझाओ ?

उत्तर - क्या अपनी मूर्खता चक्कर खिलाती है ? उत्तर - हाँ! क्या कर्म भी चक्कर खिलाता है ? उत्तर-हाँ! दोनों प्रश्नों के उत्तर में 'हाँ' है, विरोध लगता है। परन्तु आत्मा अपनी मूर्खता से चक्कर काटता है, यह निश्चयनय का कथन है और कर्म चक्कर कटाता है, यह व्यवहारनय का कथन है - ऐसा स्याद्वादी-अनेकान्ती जानता है क्योंकि वह चारों अनुयोगों के रहस्य का मर्मी है।

प्रश्न 39- क्या मुख्य-गौण वस्तु के भेद हैं ?

उत्तर - वस्तु के भेद नहीं हैं, क्योंकि मुख्य-गौण वस्तु में विद्यमान धर्मों की अपेक्षा नहीं हैं किन्तु वक्ता की इच्छानुसार हैं। मुख्य-गौण कथन के भेद हैं; वस्तु के नहीं हैं।

प्रश्न 40- शास्त्रों में 'ही' का प्रयोग किस-किस दृष्टि से किया है ?

उत्तर - (1) एक दृष्टि से कथन में 'ही' आता है।

(2) 'ही' दृढ़ता सूचक है।

(3) जहाँ अपेक्षा स्पष्ट बतानी हो, वहाँ 'ही' अवश्य लगाया जाता है।

(4) 'ही' अपने विषय के बारे में सब शङ्काओं का अभाव कर, दृढ़ता बताता है। जैसे - आत्मा, द्रव्यदृष्टि से शुद्ध ही है।

(5) 'ही' सम्यक्एकान्त को बताता है।

प्रश्न 41- शास्त्रों में 'भी' का प्रयोग किस-किस दृष्टि से किया जाता है ?

उत्तर - (1) प्रमाण की दृष्टि से कथन में 'भी' आता है ? जैसे आत्मा, शुद्ध भी है और अशुद्ध भी है।

(2) अपूर्ण को पूर्ण न समझ लिया जावे, इसके लिए 'भी' का प्रयोग होता है।

(3) जो बात अंश के विषय में कही जा रही हैं, उसे पूर्ण के विषय में ना समझ लिया जावे, इसके लिए 'भी' का प्रयोग होता है।

दूसरे प्रकार के शब्दों में कहा जावे - (1) (सापेक्ष) जहाँ कोई अपेक्षा ना दिखाई जावे, वहाँ पर 'भी' का प्रयोग होता है। जैसे - द्रव्य नित्य भी है और अनित्य भी है।

(2) (सम्भावित) जितनी वस्तु कही है उतनी मात्र ही वस्तु नहीं है; दूसरे धर्म भी उसमें हैं, यह बताने के लिए 'भी' का प्रयोग होता है।

(3) (अनुक्त) अपनी मनमानी कल्पना से कैसा भी धर्म, वस्तु में फिट न कर लिया जावे, ऐसे मनमानी के धर्मों के निषेध के लिए 'भी' का प्रयोग होता है।

प्रश्न 42- व्यवहार, उपचार कब कहा जा सकता है?

उत्तर - (1) जिसको निश्चय प्रगटा हो, उस को उपचार लागू होता है; क्योंकि अनुपचार हुए बिना, उपचार लागू नहीं होता है।

(2) व्यवहार या उपचार यह झूठा कथन है, क्योंकि व्यवहार के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है; इसलिए इसका त्याग करना। जहाँ-जहाँ व्यवहार या उपचार कथन हो, वहाँ 'ऐसा है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है' - ऐसा जानने पर व्यवहार, उपचार कहा जा सकता है।

प्रश्न 43- सम्यक् अनेकान्ती कौन है?

उत्तर - वस्तु, द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा सामान्य है; विशेष नहीं है, तथा वस्तु, पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा विशेष है; सामान्य नहीं है - यह दोनों सम्यक् अनेकान्ती हैं।

प्रश्न 44– मिथ्या अनेकान्ती कौन है?

उत्तर – वस्तु, द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा सामान्य भी है और विशेष भी है, तथा पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा वस्तु विशेष भी है और सामान्य भी है, यह दोनों मान्यतावाले मिथ्या अनेकान्ती हैं।

प्रश्न 45– अपनी आत्मा का श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन है और देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन है। इसमें सच्चा अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त किस प्रकार है?

उत्तर – अपनी आत्मा का श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है और देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान, सम्यग्दर्शन नहीं है, यह सच्चा अनेकान्त है और अपनी आत्मा का श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन है और देव-गुरु-शास्त्र का श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन है, यह मिथ्या अनेकान्त है।

प्रश्न 46– (1) देशचारित्ररूप शुद्धि भी श्रावकपना है और 12 अणुव्रतादिक भी श्रावकपना है। (2) सकलचारित्र-रूप शुद्धि भी मुनिपना है और 28 मूलगुण पालन भी मुनिपना है। (3) सम्यग्दर्शन, आत्मा के आश्रय से भी होता है और दर्शनमोहनीय के अभाव से भी होता है। इन तीन वाक्यों में सच्चा अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त क्या है?

उत्तर – दर्शनचारित्ररूप शुद्धि ही श्रावकपना है और 12 अणुव्रतादिक श्रावकपना नहीं है, यह सच्चा अनेकान्त है। देशचारित्र-रूप शुद्धि भी श्रावकपना है और 12 अणुव्रतादिक भी श्रावकपना है, यह मिथ्या अनेकान्त है। इसी प्रकार बाकी दो वाक्यों में सच्चा अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त लगायें।

प्रश्न 47– अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा? इसके कुछ दृष्टान्त देकर समझाइये।

उत्तर – (1) आत्मा, अपनेरूप से है और पररूप से नहीं है तो

अनेकान्त को समझा है। आत्मा, अपनेरूप से भी है और पररूप से भी है तो अनेकान्त को नहीं समझा।

(2) आत्मा, अपना कर सकता है और पर का नहीं कर सकता तो अनेकान्त को समझा है। आत्मा, अपना भी कर सकता है और पर का भी कर सकता है तो अनेकान्त को नहीं समझा।

(3) आत्मा के आश्रय से प्रगट शुद्धभाव से धर्म होता है और शुभभाव से नहीं होता तो अनेकान्त को समझा है। आत्मा के आश्रय से प्रगट शुद्धभाव से भी धर्म होता है और शुभभाव से भी धर्म होता है तो अनेकान्त को नहीं समझा।

(4) ज्ञान का कार्य, ज्ञान से होता है और दूसरे गुणों से नहीं तो अनेकान्त को समझा है। ज्ञान का कार्य, ज्ञानगुण से भी होता है और दूसरे गुणों से भी होता है तो अनेकान्त को नहीं समझा।

(5) एक पर्याय, अपना कार्य करती है और दूसरी पर्याय का कार्य नहीं करती तो अनेकान्त को समझा है। एक पर्याय अपना भी कार्य करती है और पर का भी कार्य करती है तो अनेकान्त को नहीं समझा।

(6) ज्ञान, आत्मा से होता है और शरीर, इन्द्रियाँ, द्रव्यकर्म और शुभाशुभभावों से नहीं होता, तो अनेकान्त को समझा है। ज्ञान, आत्मा से भी होता है और शरीर, इन्द्रियाँ, द्रव्यकर्म और शुभाशुभभावों से भी होता है तो अनेकान्त को नहीं समझा।

प्रश्न 48- निश्चय-व्यवहार के अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर - (1) निश्चय, निश्चय से है; व्यवहार से नहीं है और व्यवहार, व्यवहार से है; निश्चय से नहीं है तो निश्चय-व्यवहार के अनेकान्त को समझा है।

(2) निश्चय, निश्चय से भी है; व्यवहार से भी है और व्यवहार, व्यवहार से भी है, निश्चय से भी है तो निश्चय व्यवहार के अनेकान्त को नहीं समझा।

प्रश्न 49- उपादान-निमित्त के अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर - (1) उपादान, उपादान से है; निमित्त से नहीं है और निमित्त, निमित्त से है; उपादान से नहीं तो उपादान-निमित्त के अनेकान्त को समझा है।

(2) उपादान, उपादान से भी है, निमित्त से भी है और निमित्त, निमित्त से भी है, उपादान से भी है तो उपादान-निमित्त के अनेकान्त को नहीं समझा है।

प्रश्न 50- कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं अपना कल्याण किया और साथ में दूसरों का भी कल्याण किया - इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर - (1) कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं अपना कल्याण किया; दूसरों का कल्याण नहीं किया तो अनेकान्त को समझा है।

(2) कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं अपना कल्याण किया और साथ में दूसरों का भी कल्याण किया तो अनेकान्त को नहीं समझा।

प्रश्न 51- मानतुंगाचार्य ने 48 ताले तोड़े - इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर - (1) ताले अपनी योग्यता से टूटे हैं; मानतुंगाचार्य से नहीं तो अनेकान्त को समझा है।

(2) ताले अपनी योग्यता से भी टूटे हैं और मानतुंगाचार्य से भी टूटे हैं तो अनेकान्त को नहीं समझा।

प्रश्न 52– सीता के ब्रह्मचर्य से अग्नि, शीतल हो गयी – इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

प्रश्न 53– मनोरमा के शील से दरवाजा खुल गया – इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

प्रश्न 54– श्रीपाल के शरीर का कुष्ट रोग, गन्धोदक से ठीक हुआ – इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

प्रश्न 55– विषापहार स्तोत्र के पढ़ने से विष दूर हो गया – इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर – उक्त सभी प्रश्नों का प्रश्न ५० या ५१ के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न 56– कर्मों के अभाव से सिद्धदशा की प्राप्ति हुई– इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर – (1) सिद्धदशा की प्राप्ति 14वें गुणस्थान का अभाव करके, आत्मा में से हुई हैं; कर्मों के अभाव से नहीं हुई हैं तो अनेकान्त को समझा है।

(2) सिद्धदशा की प्राप्ति 14वें गुणस्थान का अभाव करके, आत्मा में से भी हुई है और कर्मों के अभाव में से भी हुई है तो अनेकान्त को नहीं समझा है।

प्रश्न 57– दर्शनमोहनीय के अभाव से क्षायिकसम्यक्त्व की प्राप्ति हुई – इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

प्रश्न 58– केवलज्ञान होने से केवलज्ञानावरणीयकर्म का अभाव हुआ, इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

प्रश्न 59- कुन्दकुन्द भगवान ने समयसार बनाया, इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा?

उत्तर - उक्त सभी प्रश्नों का 56वें प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न 60- कुत्ता, णमोकारमन्त्र सुनने से स्वर्ग में देव हुआ, इसमें अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा?

उत्तर - (1) कुत्ता, शुभभाव से स्वर्ग में देव हुआ; णमोकारमन्त्र सुनने से नहीं हुआ तो अनेकान्त को समझा है।

(2) कुत्ता, शुभभाव से भी स्वर्ग में देव हुआ और णमोकारमन्त्र सुनने से भी देव हुआ तो अनेकान्त को नहीं समझा।

प्रश्न 61- (1) बाई ने रोटी बनाई, (2) मैंने दरी बिछाई, (3) मैंने रुपया कमाया, (4) मैंने किताब उठाई, (5) धर्मद्रव्य ने जीव-पुद्गल को चलाया, (6) अधर्मद्रव्य ने जीव-पुद्गल को ठहराया, (7) मैंने दाँत साफ किये, (8) आकाश से सब द्रव्यों को जगह दी, (9) कालद्रव्य ने सब द्रव्यों को परिणमाया, (10) मैं रोटी खाता हूँ, (11) बढ़ई ने अलमारी बनायी, (12) मैंने मकान बनाया, (13) मैंने कपड़े धोये, (14) इन्द्रभूति को समवसरण के देखते ही सम्यग्दर्शन हुआ आदि वाक्यों में अनेकान्त को कब समझा है और कब नहीं समझा?

उत्तर - (1) रोटी, लोई का अभाव करके, आटे में से बनी है और बाई से नहीं बनी है तो अनेकान्त को समझा है।

(2) रोटी, लोई का अभाव करके, आटे में से भी बनी है और बाई से भी बनी है तो अनेकान्त को नही समझा।

इसी प्रकार बाकी प्रश्नों के उत्तर दो।

प्रश्न 62- दर्शनावरणीयकर्म के अभाव से केवलदर्शन

की प्राप्ति हुई, इस वाक्य में अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर - (1) केवलदर्शन, आत्मा के दर्शनगुण में से अचक्षुदर्शन का अभाव करके, उस समय पर्याय की योग्यता से हुआ है और दर्शनावरणीयकर्म के अभाव से तथा आत्मा के दर्शनगुण को छोड़कर दूसरे गुणों से नहीं हुआ है तो अनेकान्त को समझा है।

(2) केवलदर्शन, आत्मा के दर्शनगुण में से अचक्षुदर्शन का अभाव करके, उस समय पर्याय की योग्यता से भी हुआ है और दर्शनावरणीयकर्म के अभाव से तथा आत्मा के दर्शनगुण को छोड़कर, दूसरे गुणों से भी हुआ है तो अनेकान्त को नहीं समझा है।

प्रश्न 63- (1) अनन्तानुबन्धी क्रोधादि द्रव्यकर्म के अभाव से, स्वरूपाचरणचारित्र की प्राप्ति हुई। (2) अन्तरायकर्म के अभाव से, क्षायिकवीर्य की प्राप्ति हुई। (3) वेदनीयकर्म के अभाव से, अव्याबाघ प्रतिजीवीगुण में शुद्धता प्रगटी। (4) आयुकर्म के अभाव से, अवगाह प्रतिजीवीगुण में शुद्धता प्रगटी। (5) नामकर्म के अभाव से, सूक्ष्मत्व प्रतिजीवीगुण में शुद्धता प्रगटी। इन छह वाक्यों में अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर - उक्त सभी प्रश्नों के उत्तर, प्रश्नोत्तर 62 के अनुसार दो।

प्रश्न 64- जो भी पर्याय होती है, भूतकाल-भविष्यत्काल की पर्यायों के सम्बन्ध से होती है, इस वाक्य में अनेकान्त को कब समझा और कब नहीं समझा ?

उत्तर - (1) जाति अपेक्षा छह द्रव्यों में तथा प्रत्येक द्रव्य के गुणों में जो भी पर्याय होती है, वह उस समय पर्याय की योग्यता से

ही होती है और भूतकाल-भविष्यत्काल की पर्यायों के सम्बन्ध से नहीं होती है तो अनेकान्त को समझा है।

(2) जाति अपेक्षा छह द्रव्यों में तथा प्रत्येक द्रव्य के गुणों में जो भी पर्याय होती है, वह उस समय पर्याय की योग्यता से भी होती है और भूतकाल-भविष्यत्काल की पर्यायों से भी होती है तो अनेकान्त को नहीं समझा है।

प्रश्न 65- व्रतादि, मोक्षमार्ग है, इसमें सच्चा अनेकान्त और मिथ्या अनेकान्त कैसे है ?

उत्तर - शुद्धभाव, मोक्षमार्ग है और व्रतादि, मोक्षमार्ग नहीं है, यह सच्चा अनेकान्त है। शुद्धभाव भी मोक्षमार्ग है और शुभभाव भी मोक्षमार्ग है, यह मिथ्या अनेकान्त है।

प्रश्न 66- (1) शास्त्र से ज्ञान होता है।(2) दर्शनमोहनीय के उपशम से औपशमिकसम्यक्त्व होता है।(3) शुभभावों से धर्म होता है।(4) कुम्हार ने घड़ा बनाया।(5) धर्मद्रव्य ने मुझे चलाया।(6) कर्म, मुझे चक्कर कटाते हैं।(7) शरीर ठीक रहे, तो आत्मा का सुख मिलता है।(8) सम्यग्दर्शन के कारण ज्ञान-चारित्र में शुद्धि होती है।(9) केवलज्ञानावरणीयकर्म के अभाव से केवलज्ञान होता है।(10) केवलज्ञान होने से, केवल-ज्ञानावरणीयकर्म का अभाव होता है। इन सब वाक्यों में अनेकान्त को कब माना और कब नहीं माना, स्पष्ट करो ?

उत्तर - (1) ज्ञानगुण से ज्ञान होता है और शास्त्र से नहीं होता है तो अनेकान्त को माना।

(2) ज्ञानगुण से भी ज्ञान होता है और शास्त्र से भी होता है तो अनेकान्त को नहीं माना।

इसी प्रकार बाकी प्रश्नों के उत्तर दो।

प्रश्न 67– सच्चे अनेकान्त के जाननेवाले को कैसे-कैसे प्रश्न उपस्थित नहीं होते हैं ?

उत्तर – (1) मैं किसी का भला–बुरा कर दूँ; (2) मेरा कोई भला–बुरा कर दे; (3) शरीर की क्रिया से धर्म होगा; (4) शुभभाव से धर्म होगा या शुभभाव करते–करते धर्म होगा; (5) निमित्त से उपादान में कार्य होता है; (6) एक गुण का कार्य, दूसरे गुण से होता है; (7) एक पर्याय, दूसरी पर्याय में कुछ करे; आदि प्रश्न सच्चे अनेकान्ती को नहीं उठते हैं क्योंकि वह जानता है कि एक द्रव्य का, दूसरे द्रव्य से; एक गुण का, दूसरे गुण से तथा एक पर्याय का, दूसरी पर्याय से कुछ सम्बन्ध नहीं है; इसलिए सच्चे अनेकान्ती को ऐसे प्रश्न नहीं उठते हैं।

प्रश्न 68– मिथ्यादृष्टि को कैसे-कैसे प्रश्न उठते हैं ?

उत्तर – (1) मैं दूसरों का भला–बुरा या दूसरे मेरा भला–बुरा कर सकते है; (2) शरीर मेरा है; (3) शरीर का कार्य मैं कर सकता हूँ; (4) निमित्त से उपादान में कार्य होता है; (5) शुभभावों से धर्म होता है आदि खोटे प्रश्न मिथ्यादृष्टि को उपस्थित होते हैं क्योंकि वह स्याद्वाद अनेकान्त का रहस्य नहीं जानता है।

प्रश्न 69– स्व से अस्ति और पर से नास्ति क्या बताता है ?

उत्तर – मैं अपने स्वभाव से हूँ और पर से नहीं हूँ – ऐसा अनेकान्त बताता है।

प्रश्न 70– 'पर में' क्या–क्या आया ?

उत्तर – (1) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ; (2) आँख–नाक–कान आदि औदारिकशरीर; (3) तैजस व कार्माणशरीर; (4) भाषा और मन; (5) शुभाशुभभाव; (6) अपूर्ण–पूर्ण शुद्धपर्याय का पक्ष;

(7) भेदनय का पक्ष; (8) अभेदनय का पक्ष; (9) भेदाभेदनय का पक्ष; ये सब पर में आते हैं।

प्रश्न 71– मैं अपने स्वभाव से हूँ और पर से नहीं हूँ, इसको जानने से क्या लाभ है?

उत्तर – मैं अपने स्वभाव से हूँ और पर से नहीं हूँ – ऐसा निर्णय करते ही अनादिकाल से जो पर में कर्ता–भोक्ता की बुद्धि थी, उसका अभाव होकर, सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रम से अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति हो जाती है और स्याद्वाद अनेकान्त का मर्मी बन जाता है।

प्रश्न 72– अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति किसको है और अनन्त चतुष्टय क्या है?

उत्तर – अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति अरहन्त भगवान को हुई है और अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य, ये चार अनन्त चतुष्ट्य कहलाते हैं।

प्रश्न 73– भगवान को अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति कैसे हुई?

उत्तर – भगवान ने अपने स्वचतुष्ट्य की ओर दृष्टि दी, तो उनको अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति हुई।

प्रश्न 74– भगवान ने कैसे स्वचतुष्टय की ओर दृष्टि दी तो उनको अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हुई?

उत्तर – '(1) स्वद्रव्य = निर्विकल्प वस्तु मात्र। परद्रव्य = सविकल्प भेद कल्पना। (2) स्वक्षेत्र = आधारमात्र वस्तु का प्रदेश। परक्षेत्र = जो वस्तु का आधारभूत प्रदेश, निर्विकल्प वस्तुमात्ररूप से कहा था, वही प्रदेश सविकल्प भेदकल्पना से परप्रदेश बुद्धिगोचररूप से कहा जाता है। (3) स्वकाल = वस्तुमात्र

की मूल अवस्था। परकाल = द्रव्य की मूल निर्विकल्प अवस्था, वही अवस्थान्तर भेदरूप कल्पना से परकाल कहा जाता है। (4) स्वभाव = वस्तु की मूल सहजशक्ति। परभाव = द्रव्य की सहजशक्ति के पर्यायरूप (भेदरूप) अनेक अंश द्वारा भेदकल्पना, उसे परभाव कहा जाता है।' इस प्रकार स्व के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की ओर दृष्टि करने से, पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की ओर दृष्टि ना करने से, भगवान को अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हुई।

(श्री समयसार, कलश 252)

प्रश्न 75- हमें अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति कैसे होवे?

उत्तर - भगवान ने जैसा किया, वैसा ही उपदेश दिया है। जो जीव, भगवान के कहे अनुसार चलता है, उसे अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति होती है; अन्य प्रकार से नहीं होती है।

प्रश्न 76- स्वचतुष्टय, परचतुष्टय कितने द्रव्यों में पाया जाता है?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य में पाया जाता है।

प्रश्न 77- जो मूढ़ मिथ्यादृष्टि है, वह कैसा भेदविज्ञान करे, तो अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हो?

उत्तर - (1) मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय, मेरा स्वद्रव्य; इसकी अपेक्षा बाकी सब द्रव्यों के गुण-पर्यायों के पिण्ड, परद्रव्य हैं।

(2) मेरा असंख्यात प्रदेशी आत्मा, स्वक्षेत्र है; इसकी अपेक्षा बाकी सब द्रव्यों का क्षेत्र, परक्षेत्र है।

(3) मेरी पर्यायों का पिण्ड, स्वकाल है; इसकी अपेक्षा बाकी सब द्रव्यों की पर्यायों का पिण्ड, परकाल है।

(4) मेरे अनन्त गुण, मेरा स्वभाव है; इसकी अपेक्षा बाकी सब द्रव्यों के अनन्त गुण, परभाव हैं।

पात्र जीव को प्रथम प्रकार का भेदविज्ञान करने से, अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति का अवकाश है।

प्रश्न 78- दूसरे प्रकार का भेदविज्ञान क्या है?

उत्तर - (1) मेरे गुण-पर्यायों का पिण्ड, स्वद्रव्य है; इसकी अपेक्षा गुण-पर्यायों का भेद, परद्रव्य है।

(2) असंख्यात् प्रदेशी क्षेत्र, मेरा स्वक्षेत्र है; इसकी अपेक्षा प्रदेश भेद, परक्षेत्र है।

(3) कारणशुद्धपर्याय, मेरा स्वकाल है; इसकी अपेक्षा पर्याय का भेद, परकाल है।

(4) अभेद गुणों का पिण्ड, स्वभाव है; इसकी अपेक्षा ज्ञान -दर्शन का भेद, परभाव है।

पात्र जीव को दूसरे प्रकार का भेदविज्ञान करने से, अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति का अवकाश है।

प्रश्न 79- तीसरे प्रकार का भेदविज्ञान क्या है?

उत्तर - (1) अनन्त गुण पर्यायों का पिण्डरूप अभेदद्रव्य मैं हूँ - ऐसा विकल्प, परद्रव्य है; इसकी अपेक्षा 'है सो है' वह स्वद्रव्य है।

(2) असंख्यात् प्रदेशी अभेद क्षेत्र का विकल्प, परक्षेत्र है; इसकी अपेक्षा 'जो क्षेत्र है, सो है' जिसमें विकल्प का भी प्रवेश नहीं, वह स्वक्षेत्र है।

(3) कारणशुद्धपर्याय 'अभेद मैं' यह विकल्प परकाल है; इसकी अपेक्षा 'जो है, सो है' जिसमें विकल्प भी नहीं है, वह स्वकाल है।

(4) अभेद गुणों के पिण्ड का विकल्प, परभाव है; इसकी अपेक्षा जिसमें गुणों का विकल्प भी नही हैं 'वह स्वभाव' है।

पात्र जीवों को तीसरे प्रकार के भेदविज्ञान से अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति नियम से होती है।

प्रश्न 80- जैसा आपने तीन प्रकार का भेदविज्ञान बताया है - ऐसा तो हमने हजारों बार किया है परन्तु हमें अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति क्यों नहीं हुई ?

उत्तर - वास्तव में इस जीव ने एक बार भी भेदविज्ञान नहीं किया है क्योंकि अनुभव होने पर, भूतनैगमनय से तीन प्रकार का भेद-विज्ञान किया, ऐसा उपचार नाम पाता है; अनुभव के बिना उपचार नाम नहीं पाता है।

प्रश्न 81- अस्ति-नास्ति अनेकान्त को वास्तव में कब समझा कहा जा सकता है ?

उत्तर - अपने आत्मा का अनुभव होने पर, अस्ति-नास्ति का अनेकान्त समझा कहा जा सकता है।

प्रश्न 82- 11 अङ्ग 9 पूर्व का पाठी द्रव्यलिङ्गी मुनि भी क्या अस्ति-नास्ति का भेदविज्ञानी नहीं कहा जा सकता ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं कहा जा सकता; क्योंकि अपना अनुभव होने पर ही, भेदविज्ञानी नाम पाता है।

प्रश्न 83- 'अस्ति' में कौन आया ?

उत्तर - अपना परमपारिणामिकभाव ज्ञायकस्वभाव 'अस्ति में' आया। वह भी अस्ति में कब आया ? जब अपने अभेद ज्ञायक स्वभाव के आश्रय से निर्विकल्पता हुई, तब।

प्रश्न 84- मोटेरूप से 'नास्ति' में कौन-कौन आया ?

उत्तर - (1) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ। (2) आँख-नाक -कानरूप औदारिकशरीर। (3) तैजस-कार्माणशरीर। (4) भाषा और मन। (5) शुभाशुभभाव। (6) अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्यायों का पक्ष। (7) भेदनय का पक्ष। (8) अभेदनय का पक्ष। (9) भेदाभेद -नय का पक्ष।

प्रश्न 85- द्रव्य से अस्ति-नास्ति क्या है ?

उत्तर - वस्तु, स्वभाव से ही सामान्य-विशेषरूप है। उसे सामान्यरूप से देखना, अस्ति है। भेदरूप, विशेषरूप देखना, नास्तिरूप है। प्रदेश दोनों के एक ही हैं।

प्रश्न 86- द्रव्य से अस्ति-नास्ति जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - विशेष को गौण करके, अपने सामान्य अस्ति की ओर दृष्टि करे, तो तत्काल सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो - यह 'अस्ति -नास्ति' जानने से लाभ हुआ।

प्रश्न 87- क्षेत्र से अस्ति-नास्ति क्या है ?

उत्तर - वस्तु, स्वभाव से देश-देशांशरूप है। देशदृष्टि से देखना, सामान्यदृष्टि है, इससे वस्तु में भेद नहीं दिखता है। देशांशदृष्टि से देखना, विशेषदृष्टि है। इस प्रकार सामान्यदृष्टि, क्षेत्र से 'अस्ति' और विशेषदृष्टि, क्षेत्र से 'नास्ति' है।

प्रश्न 88- क्षेत्र से अस्ति-नास्ति जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - क्षेत्र से नास्ति की दृष्टि गौण करके, सामान्यक्षेत्र के अस्ति पर दृष्टि करे तो तत्काल सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो - यह क्षेत्र से 'अस्ति-नास्ति' जानने का लाभ है।

प्रश्न 89- काल से अस्ति-नास्ति क्या है ?

उत्तर - वस्तु, स्वभाव से ही काल-कालांशरूप है। काल से देखना, सामान्यदृष्टि और कालांशदृष्टि से देखना, विशेषदृष्टि है। इस प्रकार सामान्यदृष्टि, काल से अस्ति है और विशेषदृष्टि, काल से नास्ति है।

प्रश्न 90- काल से अस्ति-नास्ति जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - विशेषदृष्टि कालांश को गौण करके, सामान्यदृष्टि

काल पर दृष्टि करे, तो तत्काल सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो, यह काल से अस्ति-नास्ति जानने का लाभ हुआ।

प्रश्न 91- भाव से अस्ति-नास्ति क्या है ?

उत्तर - वस्तु, स्वभाव से ही भाव-भावांशरूप है। भाव की दृष्टि से देखना, सामान्यदृष्टि और भावांश की दृष्टि से देखना, विशेषदृष्टि है। इस प्रकार भाव से सामान्यदृष्टि, भाव से अस्ति है और भावांश विशेषदृष्टि, भाव से नास्ति है।

प्रश्न 92- भाव से अस्ति-नास्ति जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - भाव से नास्ति की दृष्टि को गौण करके, सामान्य अस्ति की ओर दृष्टि करे, तो तत्काल समयग्दर्शनादि की प्राप्ति हो, यह भाव से अस्ति-नास्ति जानने का फल है।

प्रश्न 93- अस्ति-नास्ति के ज्ञान की समीचीनता कब कही जा सकती है, कब नहीं ?

उत्तर - वस्तु, सत् सामान्य की दृष्टि से द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से हर प्रकार अखण्ड है और वही वस्तु, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा अंशों में विभाजित हो जाती है; इसलिए खण्डरूप है। वस्तु के दोनों रूप हैं। वस्तु सारी की सारी जिस रूप में देखना हो, उसे मुख्य और दूसरी को गौण कहते हैं। वस्तु के (आत्मा के, क्योंकि तात्पर्य हमें आत्मा से है) दोनों पहलू को जानकर, सामान्य पहलू की ओर दृष्टि करने से जन्म-मरण का अभाव हो जाता है। ऐसा जानकर सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति हुई, तो अस्ति-नास्ति का ज्ञान सच्चा है अन्यथा झूठा है।

प्रश्न 94- अस्ति-नास्ति का ज्ञान किसको है और किसको नहीं है ?

उत्तर – चौथे गुणस्थान से सब ज्ञानियों को है और निगोद से लगाकर द्रव्यलिङ्गी मुनि तक को अस्ति–नास्ति का ज्ञान नहीं है।

प्रश्न 95– नित्य-अनित्य का रहस्य क्या है?

उत्तर – (1) वस्तु जैसे स्वभाव से स्वत: सिद्ध है, वैसे ही वह स्वभाव से परिणमनशील भी है।

(2) स्वत: स्वभाव के कारण, उस में नित्यपना है और परिणमन स्वभाव के कारण, उसमें अनित्यपना है।

(3) नित्य–अनित्यपना दोनों एक समय में ही होते हैं।

(4) पात्र जीव, अनित्यपर्याय को गौण करके, नित्यस्वभाव की ओर दृष्टि करके, जन्म–मरण के दु:ख का अभाव करे। यह नित्य–अनित्य के जानने का रहस्य है।

प्रश्न 96– नित्य किसे कहते हैं?

उत्तर – पर्याय पर दृष्टि ना देकर, जब द्रव्यदृष्टि से केवल अविनाशी त्रिकाली स्वभाव को देखा जाता है तो वस्तु, नित्य प्रतीत होती है।

प्रश्न 97– नित्यस्वभाव की सिद्धि कैसे होती है?

उत्तर – 'यह वही है' – इस प्रत्यभिज्ञान से इसकी सिद्धि होती है। जैसे, जो मारीच था, वह ही शेर था; वह ही नन्दराजा था; और वह ही महावीर बना; 'यह तो वही है' – इससे नित्यस्वभाव का पता चलता है।

प्रश्न 98– अनित्य किसे कहते है?

उत्तर – त्रिकाली स्वत: सिद्ध स्वभाव पर दृष्टि न देकर, जब पर्याय से मात्र क्षणिक अवस्था देखी जाती है तो वस्तु, अनित्य प्रतीत होती है।

प्रश्न 99- अनित्य की सिद्धि कैसे होती है?

उत्तर - 'यह वह नहीं है' - इस ज्ञान से इसकी सिद्धि होती है। जैसे, जो मारीच है, वह शेर नहीं; जो शेर है, वह महावीर नहीं; इससे अनित्य की सिद्धि होती है।

प्रश्न 100- आत्मा, नित्य भी है और अनित्य भी है, इसमें अनेकान्त किस प्रकार है?

उत्तर - आत्मा, द्रव्य-गुण की अपेक्षा नित्य है और आत्मा, पर्याय की अपेक्षा अनित्य है।

प्रश्न 101- नित्य-अनित्य में अनेकान्त कहाँ आया?

उत्तर - आत्मा, द्रव्य-गुण की अपेक्षा नित्य ही है; अनित्य नहीं है, यह अनेकान्त है और आत्मा, पर्याय की अपेक्षा अनित्य ही है, नित्य नहीं है, यह अनेकान्त है।

प्रश्न 102- कोई कहे आत्मा, द्रव्य-गुण की अपेक्षा नित्य भी है और अनित्य भी है?

उत्तर - यह मिथ्याअनेकान्त है।

प्रश्न 103- कोई कहे आत्मा, पर्याय की अपेक्षा अनित्य भी है और नित्य भी है?

उत्तर - यह मिथ्याअनेकान्त है।

प्रश्न 104- नित्य-अनित्यपना किसमें होता है?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य गुण में अनादि अनन्त नित्य-अनित्यपना होता है।

प्रश्न 105- नित्य-अनित्य पर तीनों प्रकार के भेदविज्ञान लगाकर समझाइये?

उत्तर – प्रश्नोत्तर 77–78–79 प्रश्नोत्तर के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न 106– नित्य–अनित्य अनेकान्त को समझने से क्या लाभ है?

उत्तर – मुझ आत्मा, नित्य है; बाकी सब पर, अनित्य है – ऐसा जानकर अपने नित्य त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर, धर्म की प्राप्ति होना, यह नित्य–अनित्य को समझने का लाभ है। अत: अनित्य को गौण करके, नित्यस्वभाव का आश्रय लेना पात्र जीवों का परम कर्तव्य है।

प्रश्न 107– मुझ आत्मा नित्य है और पर, अनित्य है तो 'पर में' कौन–कौन आता है?

उत्तर – (1) अत्यन्त भिन्न परपदार्थ, अनित्य हैं। (2) आँख, नाक, कान आदि औदारिकशरीर, अनित्य है। (3) तैजस–कार्माण शरीर, अनित्य हैं। (4) भाषा और मन, अनित्य हैं। (5) शुभाशुभ –भाव, अनित्य हैं। (6) अपूर्ण–पूर्ण शुद्धपर्याय का पक्ष, अनित्य है। (7) भेदनय का पक्ष, अनित्य है। (8) अभेदनय का पक्ष, अनित्य है। (9) भेदाभेदनय का पक्ष, अनित्य है।

प्रश्न 108– मुझ आत्मा ही नित्य है और पर अनित्य हैं, इसको जानने से क्या लाभ है?

उत्तर – अपने नित्य ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करने से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रम से वृद्धि करके पूर्ण सिद्धदशा की प्राप्ति होती है और पर जो अनित्य है, उनसे लाभ–नुकसान माने तो चारो गतियों में घूमकर निगोद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 109– सर्वथा नित्यपक्ष के मानने में क्या नुकसान है?

उत्तर – (1) सत् को सर्वथा नित्य मानने में परिणति का अभाव हो जावेगा।

(2) परिणति के अभाव में तत्त्व, क्रिया, फल, कारक, कारण, कार्य कुछ भी नहीं बनेगा।

प्रश्न 110- सर्वथा नित्यपक्ष मानने से 'तत्त्व' किस प्रकार नहीं बनेगा ?

उत्तर - (1) परिणाम, सत् की अवस्था है और यदि परिणाम का अभाव माना जाये तो परिणाम के अभाव में परिणामी (द्रव्य) का अभाव स्वयंसिद्ध है।

(2) व्यतिरेक के अभाव में अन्वय (द्रव्य) अपनी रक्षा नहीं कर सकता। इस प्रकार 'तत्त्व' के अभाव का प्रसङ्ग उपस्थित होवेगा।

प्रश्न 111- सर्वथा नित्यपक्ष मानने से क्रिया-फल आदि किस प्रकार नहीं बनेंगे ?

उत्तर - क्रिया-फल, कार्य आदि तो सब पर्याय में होते हैं; इसलिए पर्याय की नास्ति मानने से, अर्थात् सर्वथा नित्यपक्ष मानने से क्रिया-फल आदि नहीं बनने का प्रसङ्ग उपस्थित होवेगा।

प्रश्न 112- सर्वथा नित्यपक्ष मानने से 'तत्त्व और क्रिया' कैसे नहीं बन सकेंगे ?

उत्तर - (1) मोक्ष का साधन जो सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव है, वह परिणाम है। उन शुद्धभावों का फल, मोक्ष है और मोक्ष भी निराकुलतारूप, सुखरूप परिणाम है।

(2) मोक्षमार्ग, साधन और मोक्ष, साध्यरूप, ये दोनों परिणाम हैं और परिणाम आप मानते नहीं हो।

(3) क्रिया के अभाव होने का प्रसङ्ग उपस्थित हो गया, क्योंकि क्रिया, पर्याय में होती है।

(4) मोक्षमार्ग और मोक्षरूप परिणाम का कर्ता, साधक आत्म

–द्रव्य है, सामान्यस्वरूप है, विशेष के बिना सामान्य भी नहीं बनेगा।

(5) इस प्रकार तत्त्व का अभाव ठहरता है, अर्थात् कर्ता, कर्म, क्रिया कोई भी कारक नहीं बनता है।

प्रश्न 113– सर्वथा अनित्यपक्ष मानने में क्या नुकसान है?

उत्तर – (1) सत् को सर्वथा अनित्य मानने से, सत् तो पहले ही नाश हो जावेगा फिर प्रमाण और प्रमाण का फल नहीं बनेगा।

(2) सत् को अनित्य सिद्ध करने के लिए अनुमान प्रयोग में 'जो सत् है, वह अनित्य है' यह कहना ही गलत हो जावेगा, क्योंकि सत् तो है ही नहीं, फिर 'जो सत् है वह' – यह शब्द कैसा?

(3) सत् को नहीं माननेवाला, उसका अभाव कैसे सिद्ध करेंगे, अर्थात् नहीं कर सकेंगे।

(4) सत् को नित्य सिद्ध करने में जो प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है, वह तो क्षणिक एकान्त (सर्वथा) का बाधक है।

(5) वस्तु के अभाव में परिणाम किसका। इसलिए नित्य के अभाव में अनित्य तो गधे के सीङ्ग के समान है।

प्रश्न 114– नित्य-अनित्य के सम्बन्ध में क्या रहा?

उत्तर – द्रव्य और पर्याय, दोनों को मानना चाहिए, क्योंकि पर्याय अनित्य है, उसे गौण करके द्रव्य जो नित्य है, उसका आश्रय लेने से धर्म की शुरुआत और क्रम से पूर्णता की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 115– अनेकान्त वस्तु को नित्य-अनित्य बताने से क्या तात्पर्य है?

उत्तर – आत्मा स्वयं नित्य है और स्वयं की पर्याय ही अनित्य है; उसमें जिस ओर की रुचि, उस ओर का परिणाम होता है। नित्य वस्तु की रुचि करे, तो नित्य स्थायी ऐसी वीतरागता की प्राप्ति होती है

और अनित्य पर्याय की रुचि करे, तो क्षणिक राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न 116- तत्-अतत् में किस बात का विचार किया जाता है?

उत्तर - नित्य-अनित्य में बतलाये हुए परिणमनस्वभाव के कारण, वस्तु में जो समय-समय का परिणाम उत्पन्न होता है, वह परिणाम सदृश है या विसदृश है, इसका विचार तत्-अतत् में किया जाता है।

प्रश्न 117- तत् किसे कहते हैं?

उत्तर - परिणमन करती हुई 'वही की वही है; दूसरी नहीं' - इसे तत्भाव कहते हैं।

प्रश्न 118- अतत् किसे कहते हैं?

उत्तर - परिणमन करती हुई वस्तु, समय-समय में नयी-नयी उत्पन्न हो रही है। 'वह की वह नहीं है' इसको अतत्भाव कहते हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक समय का सत् ही भिन्न-भिन्नरूप है।

प्रश्न 119- तत् धर्म से क्या लाभ है?

उत्तर - इससे तत्त्व की सिद्धि होती है।

प्रश्न 120- अतत् धर्म से क्या लाभ है?

उत्तर - इससे क्रिया, फल, कारक, साधन, साध्य, कारण -कार्य आदि भावों की सिद्धि होती है।

प्रश्न 121- तत्-अतत् का अनेकान्त क्या है?

उत्तर - प्रत्येक वस्तु में वस्तुपने की सिद्धि करनेवाली तत् -अतत् आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का एक ही साथ प्रकाशित होना, उसे अनेकान्त कहते है।

प्रश्न 122- आत्मा में तत्-अतत्पना क्या है?

उत्तर – आत्मा 'वह का वही है' यह तत्पना है और बदलते -बदलते 'यह वह नहीं है' यह अतत्पना है।

प्रश्न 123– तत्–अतत् में तीनों प्रकार के भेदविज्ञान लगाकर समझाइये ?

उत्तर – प्रश्नोत्तर 77–78–79 के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न 124– आत्मा, तत्रूप से है; अतत्रूप से नहीं, इसको जानने से क्या लाभ ?

उत्तर – आत्मा में तत्–अतत्पना दोनों धर्म पाये जाते हैं। अतत्पने को गौण करके, तत्धर्म की ओर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रम से निर्वाण की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 125– अतत् में कौन–कौन आता है ?

उत्तर – (1) अत्यन्त भिन्न पदार्थ, अतत् हैं। (2) आँख -नाक-कान औदारिकशरीर, अतत् है। (3) तैजस, कार्माणशरीर अतत् हैं। (4) शब्द और मन, अतत् हैं। (5) शुभाशुभभाव, अतत् हैं। (6) पूर्ण–अपूर्ण शुद्धपर्याय का पक्ष, अतत् है। (7) भेदनय का पक्ष, अतत् है। (8) अभेदनय का पक्ष, अतत् है। (9) भेदाभेदनय का पक्ष अतत् है। (10) ज्ञान की पर्याय, अतत् है। एकमात्र अपना त्रिकाली आत्मा 'वह का वह' तत् है। इस पर दृष्टि देते ही अपने भगवान का पता चल जाता है और क्रम से मोक्षलक्ष्मी का नाथ बन जाता है। अतत् से मेरा भला है या बुरा है – ऐसी मान्यता से चारों गतियों में घूमकर निगोद का पात्र बन जाता है।

प्रश्न 126– एक–अनेकपना क्या है ?

उत्तर – अखण्ड सामान्य की अपेक्षा से द्रव्य सत्, एक है और अवयवों की अपेक्षा से द्रव्य सत्, अनेक भी है।

प्रश्न 127- सत् एक है, इसमें क्या युक्ति है ?

उत्तर - द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से, गुण-पर्याय का या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अंशों का अभिन्न प्रदेशी होने से सत्, एक है; इसलिए अखण्ड सामान्य की अपेक्षा से सत्, एक है।

प्रश्न 128- द्रव्य से सत्, एक कैसे हैं ?

उत्तर - गुण-पर्यायों का एक तन्मय पिण्ड द्रव्य, एक है; इसलिए द्रव्य से सत्, एक है।

प्रश्न 129- क्षेत्र से सत्, एक कैसे है ?

उत्तर - जिस समय जिस द्रव्य के एक देश में, जितना जो सत् स्थित है, उसी समय उसी द्रव्य के सब देशों में (क्षेत्रों में) भी उतना वही वैसा ही सत् स्थित है। इस अपेक्षा सत्, क्षेत्र से एक है।

प्रश्न 130- काल से सत्, एक कैसे है ?

उत्तर - एक समय में रहनेवाला जो जितना और जिस प्रकार का सम्पूर्ण सत् है, वहीं, उतना और उसी प्रकार का सम्पूर्ण सत्, सब समयों में भी है, वह सदा अखण्ड है। इस अपेक्षा सत्, काल से एक है।

प्रश्न 131- भाव से सत्, एक कैसे है ?

उत्तर - सत् सब गुणों का तादात्म्य एक पिण्ड है। गुणों के अतिरिक्त उसमें और कुछ है ही नहीं। किसी एक गुण की अपेक्षा जितना सत् है, प्रत्येक गुण की अपेक्षा भी वह उतना ही है। समस्त गुणों की अपेक्षा भी वह उतना ही है। इस अपेक्षा सत्, भाव से एक है।

प्रश्न 132- सत् के अनेक होने में क्या युक्ति है ?

उत्तर - व्यतिरेक बिना, अन्वयपक्ष नहीं रह सकता, अर्थात्

अवयवों के अभाव में अवयवी का भी अभाव ठहरता है। अत: अवयवों की अपेक्षा से सत्, अनेक भी है।

प्रश्न 133- द्रव्य से सत्, अनेक कैसे हैं ?

उत्तर - गुण अपने लक्षण से है, पर्याय अपने लक्षण से है। प्रत्येक अवयव अपने-अपने लक्षण से भिन्न-भिन्न है; प्रदेशभेद नहीं है; अत: सत्, द्रव्य से अनेक है।

प्रश्न 134- क्षेत्र से सत्, अनेक कैसे हैं ?

उत्तर - प्रत्येक देशांश का सत् भिन्न-भिन्न है। इस अपेक्षा क्षेत्र से अनेक भी है; सर्वथा नहीं है।

प्रश्न 135- काल से सत्, अनेक कैसे हैं ?

उत्तर - पर्यायदृष्टि से प्रत्येक काल (पर्याय) का सत्, भिन्न -भिन्न है। इस प्रकार सत्, काल की अपेक्षा अनेक है।

प्रश्न 136- भाव की अपेक्षा सत्, अनेक कैसे हैं ?

उत्तर - प्रत्येक भाव (गुण) अपने-अपने लक्षण से भिन्न -भिन्न है; प्रदेश भेद नहीं है। इस प्रकार सत्, भाव की अपेक्षा अनेक है।

प्रश्न 137- एक-अनेक पर अनेकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर - आत्मा, द्रव्य की अपेक्षा एक है; अनेक नहीं है, यह अनेकान्त है; और आत्मा, गुण-पर्यायों की अपेक्षा अनेक है; एक नहीं है, यह अनेकान्त है।

प्रश्न 138- आत्मा, द्रव्य की अपेक्षा एक भी है और अनेक भी है, क्या यह अनेकान्त नहीं है ?

उत्तर - यह मिथ्या अनेकान्त है।

प्रश्न 139- द्रव्य, गुण-पर्याय की अपेक्षा अनेक भी है और एक भी है, क्या यह अनेकान्त है ?

उत्तर - यह मिथ्या अनेकान्त है।

प्रश्न 140- एक-अनेक में तीनों प्रकार के भेदविज्ञान समझाइये ?

उत्तर - प्रश्नोत्तर 77, 78, 79 के अनुसार उत्तर दो।

प्रश्न 141- एक-अनेक को जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - गुण और पर्यायों में जो अनेकपना है, उसे गौण करके एक अभेद का आश्रय ले, तो तुरन्त सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है और क्रम से निर्वाण की ओर गमन होता है।

प्रश्न 142- अनेकपने में क्या-क्या आता है, जिसकी ओर दृष्टि करने से चारों गतियों में घूमकर निगोद जाना पड़ता है ?

उत्तर - (1) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ अनेक हैं। (2) आँख, नाक, कान औदारिकशरीर में अनेक हैं। (3) तैजस, कार्माणशरीर, अनेक हैं। (4) भाषा और मन, अनेक हैं। (5) शुभाशुभभाव, अनेक हैं। (6) अपूर्ण=पूर्ण शुद्धपर्याय का पक्ष, अनेक है। (7) भेदनय का पक्ष, अनेक है। (8) अभेदनय का पक्ष, अनेक है। (9) भेदाभेदनय का पक्ष, अनेक है। (10) गुणभेद, अनेक हैं। इसलिए अनेक की ओर दृष्टि करने से मेरा भला है या बुरा है, ऐसी मान्यता चारों गतियों में घुमाकर निगोद में ले जाती है और इन सबसे दृष्टि उठाकर, एक अभेद भगवान ज्ञायक पर दृष्टि देने से धर्म की प्राप्ति होकर, क्रम से सिद्ध बन जाता है।

प्रश्न 143- स्याद्वाद किसे कहते हैं ?

उत्तर - वस्तु के अनेकान्तस्वरूप को समझानेवाली सापेक्ष कथन पद्धति को स्याद्वाद कहते हैं।

प्रश्न 144– स्याद्वाद का अर्थ क्या है ?

उत्तर – स्यात् = कथंचित किसी प्रकार से, किसी सम्यक् अपेक्षा से; वाद = कथन करना।

प्रश्न 145– स्याद्वाद कैसा है ?

उत्तर – अनन्त धर्मोंवाला द्रव्य है। उसके एक-एक धर्म का ज्ञान करके, विवक्षित (मुख्य) अविवक्षित (गौण) की विधि निषेध द्वारा प्रगट होनेवाली सप्तभङ्गी सतत् सम्यक् प्रकार से कथन किये जानेवाले 'स्यात्' काररूपी अमोघमन्त्र द्वारा 'ही' में भरे हुए सर्व विविध विषय के मोह को दूर करता है।

प्रश्न 146– स्याद्वाद को स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर – एक ही पदार्थ कथञ्चित् स्वचतुष्टय की अपेक्षा से अस्तिरूप है। कथञ्चित् परचतुष्टय की अपेक्षा से नास्तिरूप है। कथञ्चित् समुदाय की अपेक्षा से एकरूप है। कथञ्चित् गुण-पर्याय की अपेक्षा से अनेकरूप है। कथञ्चित् द्रव्य अपेक्षा से नित्य है। कथञ्चित् पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है। कथञ्चित् नय अपेक्षा से वस्तुस्वभाव का कथन करना, उसे स्याद्वाद कहते हैं।

प्रश्न 147– स्यात्-पद क्या बताता है और क्या नहीं बताता है ?

उत्तर – स्यात्-पद अविवक्षितधर्मों का गौणपना बताता है; परन्तु अविवक्षितधर्मों का अभाव करना नहीं बताता है।

प्रश्न 148– स्याद्वाद और अनेकान्त में कैसा सम्बन्ध है ?

उत्तर – द्योत्य-द्योतकसम्बन्ध है; वाच्य-वाचकसम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न 149– वाच्य-वाचकसम्बन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – जैसे शब्द हो, वैसा ही पदार्थ हो, उसे वाच्य-वाचक

-सम्बन्ध कहते हैं। जैसे, शक्कर शब्द हुआ, वह वाचक है; शक्कर पदार्थ, वाच्य है और जैसे, गुरु ने कहा आत्मा तो यह वाचक है और आत्मा पदार्थ दृष्टि में आवे, वह वाच्य है।

प्रश्न 150- द्योत्य-द्योतकसम्बन्ध किसमें होता है ?

उत्तर - स्याद्वाद और अनेकान्त में होता है। स्याद्वाद = द्योतक बतलानेवाला है और अनेकान्त = वस्तुस्वरूप है, द्योत्य है, बताने योग्य है।

प्रश्न 151- द्योत्य और द्योतकसम्बन्ध समझ में नहीं आया। कृपया स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर - आत्मा, स्व की अपेक्षा से अस्ति है और पर की अपेक्षा से नास्ति है। यह अस्ति-नास्ति दोनों धर्म एक साथ पाये जाते हैं परन्तु कथन दोनों का एक साथ नहीं हो सकता है। जैसे आत्मा, स्व की अपेक्षा से है, ऐसा कथन किया, वहाँ आत्मा, पर की अपेक्षा नहीं है, यह नहीं कहा गया; परन्तु गौण हो गया - ऐसी कथनशैली को स्याद्वाद कहते हैं; इसलिए अनेकान्त को द्योत्य और स्याद्वाद को द्योतक कहते हैं।

प्रश्न 152- द्योत्य-द्योतकसम्बन्ध कब है ?

उत्तर - वस्तु में अनेक धर्म हैं। जब एक धर्म का कथन किया जावे, दूसरा धर्म गौण होवे, तब द्योत्य-द्योतकसम्बन्ध है।

प्रश्न 153- सप्तभङ्गी कैसे प्रगट होती है ?

उत्तर - जिसका कथन करना है, उस धर्म को मुख्य करके, उसका कथन करने से और जिसका कथन नहीं करना है, उस धर्म को गौण करके, उसका निषेध करने से सप्तभङ्गी प्रगट होती है।

प्रश्न 154- सप्तभङ्गी कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर - दो प्रकार की है। नयसप्तभङ्गी और प्रमाणसप्तभङ्गी।

प्रश्न 155- नयसप्तभङ्गी और प्रमाणसप्तभङ्गी किसे कहते हैं और इनका वर्णन कहाँ किया है ?

उत्तर - वक्ता के अभिप्राय को एक धर्म द्वारा कथन करके बताना हो तो उसे नयसप्तभङ्गी कहते हैं और वक्ता के अभिप्राय को सारे वस्तुस्वरूप द्वारा कथन करके बताना हो तो प्रमाणसप्तभङ्गी कहते हैं। प्रवचनसार में नयसप्तभङ्गी का और पञ्चास्तिकाय में प्रमाणसप्तभङ्गी का कथन किया है।

प्रश्न 156- सामान्य और विशेष को जानने से दु:ख कैसे मिटे और सुख कैसे प्रगटे ?

उत्तर - (1) वस्तु में नित्य, धर्म है जिसके कारण, वस्तु अवस्थित है। इस धर्म को जानने से पता चलता है कि द्रव्यरूप से मोक्ष, आत्मा में वर्तमान में विद्यमान ही है, तो फिर उसका आश्रय करके कैसे प्रगट नहीं किया जा सकता है ? वर्तमान पर्याय में मिथ्यात्व है, राग है, द्वेष है, दु:ख है, साथ ही यह पता चल जाता है कि परिणमनस्वभाव द्वारा बदल कर, सम्यक्त्व, वीतरागता और सुखरूप परिवर्तित किया जा सकता है।

(2) भव्य जीव, नित्यस्वभाव का आश्रय करके पर्याय के दु:ख को सुख में बदल देता है। इसलिए सामान्य और विशेष को जानने से दुख का अभाव और सुख की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 157- कोई वस्तु को सर्वथा नित्य ही मान ले तो क्या नुकसान होगा ?

उत्तर - निश्चयभासी बन जावेगा।

प्रश्न 158- कोई वस्तु को सर्वथा अनित्य ही मान ले तो क्या नुकसान होगा ?

उत्तर - मूलतत्त्व ही जाता रहेगा और बौद्धमत का प्रसङ्ग बनेगा।

प्रश्न 159- नित्य-अनित्य को जानकर, पात्र जीव को क्या करना चाहिए ?

उत्तर - सामान्य-विशेष दोनों को जानकर, पर्याय को गौण करके, द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेकर धर्म प्रगट करना, पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न 160- क्या प्रमाणसप्तभङ्गी को जानने से कल्याण नहीं होता है ?

उत्तर - अवश्य होता है।

प्रश्न 161- प्रमाणसप्तभङ्गी को जानने से कल्याण कैसे होता है ?

उत्तर - [अ] (1) मुझ आत्मा, अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से अस्ति है। (2) मुझ आत्मा, तत् है। (3) मुझ आत्मा, नित्य है। (4) मुझ आत्मा, एक है।

[आ] (1) मुझ आत्मा की अपेक्षा बाकी बचे हुए अनन्त आत्मा, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोकप्रमाण असंख्यात कालद्रव्य-पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव नास्ति हैं। (2) सब पर पदार्थ, अतत् हैं। (3) सब पर पदार्थ, अनित्य हैं। (4) सब पर पदार्थ, अनेक हैं।

ऐसा जानते ही दृष्टि एकमात्र अपने स्वभाव पर आ जाती है। जब पर की ओर देखना नहीं रहा तो पर्याय में राग-द्वेष भी उत्पन्न नहीं होंगे और दृष्टि एकमात्र स्वभाव पर होने से धर्म की प्राप्ति हो जाती है। इस प्रथम प्रकार के भेदविज्ञान में पर्याय का भी भेदविज्ञान आ जाता है। इस प्रकार पात्र जीव प्रमाणसप्तभङ्गी को जानने से, धर्म की प्राप्ति करके क्रम से निर्वाण का पात्र बन जाता है।

प्रश्न 162- नयसप्तभङ्गी जानने से कैसे कल्याण हो ?

उत्तर - नयसप्तभङ्गी वह कर सकता है, जिसने मोटेरूप से परद्रव्यों से तो मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, ऐसा जाना है -

[अ] (1) अनन्त गुणसहित अभेद परमपारिणामिक ज्ञायक -भाव अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्ति है, (2) ज्ञायकभाव, तत् है, (3) ज्ञायकभाव, नित्य है, (4) ज्ञायकभाव, एक है।

[आ] (1) इस त्रिकाली ज्ञायक की अपेक्षा पर्याय में विकारीभाव, अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय, गुणभेद कल्पना आदि परद्रव्य -क्षेत्र-काल-भाव से नास्ति है, (2) विकारीभाव, अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय, गुणभेद कल्पना आदि सब अतत् हैं, (3) विकारीभाव, अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय, गुणभेद कल्पना आदि, अनित्य है, (4) विकारीभाव, अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय, गुणभेद कल्पना आदि, अनेक हैं।

ऐसा निज आत्मा का एक-अनेकात्मक स्वरूप जानकर, पात्र जीव तुरन्त स्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्ति, तत्, नित्य, एक स्वभाव की ओर दृष्टि करके, सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति करके क्रम से अपने में एकाग्रता करके, परम मोक्षलक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्रश्न 163- प्रमाणसप्तभङ्गी और नयसप्तभङ्गी का ज्ञान किसको होता है और किसको नहीं होता है ?

उत्तर - ज्ञानियों को ही इन दोनों का ज्ञान वर्तता है। मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिङ्गी मुनि आदि को इनमें से एक का भी ज्ञान नहीं वर्तता है।

प्रश्न 164- एकान्त के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद हैं - सम्यक्एकान्त और मिथ्याएकान्त।

प्रश्न 165- सम्यक्एकान्त और मिथ्याएकान्त क्या है, खोलकर समझाइये ?

उत्तर - (1) अपने स्वरूप से अस्तित्व और पररूप से नास्तित्व आदि जो वस्तुस्वरूप है, उसकी अपेक्षा रखकर प्रमाण द्वारा जाने हुए पदार्थ के एक देश का (पक्ष का) विषय करनेवाला नय, सम्यक् -एकान्त है। (थोड़े में सापेक्षनय, सम्यक्एकान्त है)।

(2) किसी वस्तु के एक धर्म का निश्चय करके, उसमें रहनेवाले अन्य धर्मों का सर्वथा निषेध करना, वह मिथ्याएकान्त है। (निरपेक्षनय, मिथ्याएकान्त है।)

प्रश्न 166- सम्यक्एकान्त और मिथ्याएकान्त के दृष्टान्त दीजिए ?

उत्तर - (1) 'सिद्ध भगवान ही सुखी हैं' - ऐसा जानना, वह सम्यक्एकान्त है क्योंकि 'सिद्ध जीवों को बिल्कुल दु:ख नहीं है' - ऐसा गर्भितरूप से उसमें आ जाता है। और 'सर्व जीव एकान्तः सुखी है' - ऐसा जानना मिथ्याएकान्त है क्योंकि वर्तमान में अज्ञानी जीव, दु:खी है, इसका उसमें अस्वीकार है।

(2) 'सम्यग्ज्ञान ही धर्म है' - ऐसा जानना, सम्यक्एकान्त है, क्योंकि 'सम्यग्ज्ञानपूर्वक वैराग्य होता है' - ऐसा उसमें गर्भितरूप से आ जाता है और 'स्त्रीपुत्रादिक का त्याग ही' धर्म है - ऐसा जानना वह मिथ्याएकान्त है, क्योंकि त्याग के साथ सम्यग्ज्ञान होना ही चाहिए - ऐसा इसमें नहीं आता है।

(3) सम्यग्दर्शनादि से ही मुक्ति होती है, यह सम्यक्एकान्त है क्योंकि पर से, महाव्रतादि से नहीं होती है, यह गौण है और महाव्रतादि से ही मुक्ति होती है, यह मिथ्याएकान्त है, क्योंकि सम्यग्दर्शनादि से मुक्ति होती है - ऐसा इसमें नहीं आता है।

प्रश्न 167- आत्मा को शुभभाव से ही धर्म होता है - क्या यह सम्यक्एकान्त है ?

उत्तर – बिल्कुल नहीं, यह मिथ्याएकान्त है, क्योंकि इसमें शुद्धभाव का निषेध किया है।

प्रश्न 168– शुद्धभाव से ही धर्म होता है, क्या यह भी मिथ्याएकान्त है ?

उत्तर – बिल्कुल नहीं, यह सम्यक्एकान्त है। शुद्धभाव से ही धर्म होता है, यह अर्पित कथन और शुभभाव से नहीं, यह अनर्पित कथन इसमें आ ही जाता है।

प्रश्न 169– मिथ्याएकान्त के दृष्टान्त दीजिए ?

उत्तर – (1) आत्मा, सर्वथा नित्य ही है। (2) आत्मा, सर्वथा अनित्य ही है। (3) आत्मा, सर्वथा एक ही है। (4) आत्मा, सर्वथा अनेक ही है। (5) आत्मा को शुभभाव से ही धर्म होता है। (6) भगवान का दर्शन ही सम्यक्त्व है। (7) अणुव्रतादिक का पालन करना ही श्रावकपना है। (8) 28 मूलगुण पालन करना ही मुनिपना है। (9) चार हाथ जमीन देखकर चलना ही ईर्यासमिति है। (10) भूखा रहना ही क्षुधापरिषहजय है। यह सब मिथ्या –एकान्त है, क्योंकि इनमें अन्य धर्मों का सर्वथा निषेध पाया जाता है।

प्रश्न 170– सम्यक्एकान्ती कौन है ?

उत्तर – वस्तु, सामान्य–विशेषस्वरूप है – ऐसा जिसको प्रमाण ज्ञान हुआ हो, वह जानता है कि वस्तु द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा, सामान्य ही है तथा वस्तु पर्यायर्थिकनय की अपेक्षा, विशेष ही है, ऐसी मान्यतावाले ही सम्यक्एकान्ती है।

प्रश्न 171– मिथ्याएकान्ती कौन है ?

उत्तर – वस्तु, सामान्य–विशेषस्वरूप है, ऐसा न जानकर कोई वस्तु को सर्वथा सामान्य ही माने, कोई वस्तु को सर्वथा विशेष ही माने – ऐसी मान्यतावाले दोनों मिथ्याएकान्ती हैं।

प्रश्न 172- सम्यक्एकान्त के दृष्टान्त दीजिए ?

उत्तर - (1) आत्मा, द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य ही है। (2) आत्मा, पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य ही है। (3) आत्मा, द्रव्य की अपेक्षा एक ही है। (4) आत्मा, गुण-पर्याय भेद की अपेक्षा अनेक ही है। (5) आत्मा को शुद्धभाव से ही धर्म होता है। (6) आत्मा के आश्रय से श्रद्धागुण में से शुद्धदशा प्रगट होना ही सम्यक्त्व है। (7) दो चौकड़ी कषाय के अभावरूप शुद्धदशारूप देशचारित्र ही श्रावकपना है। (8) शुद्धोपयोगरूप दशा ही मुनिपना है। (9) तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप शुद्धि ही इर्यासमिति है। (10) तीन चौकड़ी के अभावरूप शुद्धि की वृद्धि होना ही क्षुधापरिषहजय है। यह सब सम्यक्एकान्त है, क्योंकि इनमें अन्य धर्मों का किसी अपेक्षा से निषेध पाया जाता है।

प्रश्न 173- अनेकान्त के समयसारशास्त्र में कितने बोल कहे हैं ?

उत्तर - नित्य-अनित्य, एक-अनेक, तत्-अतत् आदि 14 बोल कहे हैं।

प्रश्न 174- नित्य-अनित्य, एक-अनेक, तत्-अतत् आदि जो 14 बोलों को न समझे, उसे भगवान ने क्या कहा है ?

उत्तर - उसे 14 बार पशु कहा है।

प्रश्न 175- इन 14 बोलों के अनेकान्त-स्याद्वादस्वरूप को समझ ले तो क्या होता है ?

उत्तर - (1) जो जीव, भगवान के कहे हुए 14 बोल के अनेकान्त-स्याद्वाद के स्वरूप को समझ ले तो वह जीव, श्री समयसार में आये हुए गाथा 50 से 55 तक वर्णादिक 29 बोलों से रहित, अपने

एकमात्र भूतार्थस्वभाव का आश्रय लेकर, सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर क्रमशः मोक्ष की प्राप्ति करता है।

(2) पञ्चम पारिणामिकभाव का महत्त्व आ जाता है, और चार भावों की महिमा छूट जाती है।

(3) चारों गति के अभावरूप पञ्चमगति की प्राप्ति होती है।

(4) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, और योग, संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है।

(5) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव – ऐसे पाँच परावर्तनों का अभाव हो जाता है।

(6) पञ्च परमेष्ठियों में उसकी गिनती होने लगती है।

(7) 14 वाँ गुणस्थान प्राप्त होकर, सिद्धदशा की प्राप्ति होती है।

(8) आठों कर्मों का अभाव हो जाता है।

(9) सम्पूर्ण दुःखों का अभाव होकर, सम्पूर्ण सुखी हो जाता है।

प्रश्न 176– अनेकान्त–स्याद्वाद के 14 बोलों को न समझे, तो क्या होगा ?

उत्तर – (1) समयसार में भगवान ने उसे 'पशु' कहा है। (2) आत्मावलोकन में 'हरामजादीपना' कहा है। (3) प्रवचनसार में कहा है कि 'वह पद पद पर धोखा खाता है'। (4) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में 'वह जिनवाणी सुनने के अयोग्य है।' (5) समयसार में 'वह संसार परिभ्रमण का कारण कहा है।' (6) समयसार, कलश ५५ में 'यह अज्ञान, मोह–अज्ञान–अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है' – ऐसा बताया है। (7) अनेकान्त–स्याद्वाद को न समझनेवाला मिथ्यादर्शनादि की पुष्टि करता हुआ, चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद में चला जाता है।

प्रश्न 177- अनेकान्त का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर - अनेकान्तमार्ग भी सम्यक्एकान्त ऐसे निजपद की प्राप्ति कराने के सिवाय, अन्य किसी भी हेतु से उपकारी नहीं है।

प्रश्न 178- नित्य-अनित्य को अनेकान्त की परिभाषा में लगाओ ?

उत्तर - प्रत्येक वस्तु में वस्तुपने की सिद्धि करनेवाली नित्य -अनित्य आदि परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का एक ही साथ प्रकाशित होना, उसे अनेकान्त कहते हैं।

प्रश्न 179- नित्य-अनित्यधर्म में विरोध होने पर भी स्याद्वाद-अनेकान्त इस विरोध को कैसे मिटाता है ?

उत्तर - क्या द्रव्य, नित्य है ? उत्तर - हाँ है। क्या द्रव्य, अनित्य है ? उत्तर - हाँ है। देखो - दोनों प्रश्नों के उत्तर में 'हाँ' है, विरोध -सा लगता है परन्तु द्रव्य, द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य है और पर्यायर्थिकनय की अपेक्षा अनित्य है - ऐसा स्याद्वाद-अनेकान्त नित्य-अनित्य के परस्पर विरोध को मिटाकर, नित्य-अनित्यधर्म स्वरूप वस्तु की सिद्धि करता है।

प्रश्न 180- नित्य पर सम्यक्अनेकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर - द्रव्य, द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य ही है; अनित्य नहीं है - यह सम्यक्अनेकान्त है।

प्रश्न 181- अनित्य पर सम्यक्अनेकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर - द्रव्य, पर्यायर्थिकनय की अपेक्षा अनित्य ही है; नित्य नहीं है, यह सम्यक्अनेकान्त है।

प्रश्न 182- नित्य पर मिथ्याअनेकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर - द्रव्य, द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य भी है और अनित्य भी है, यह मिथ्याअनेकान्त है।

प्रश्न 183- अनित्य पर मिथ्याअनेकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर - द्रव्य, पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य भी है और नित्य भी है, यह मिथ्याअनेकान्त है।

प्रश्न 184- नित्य पर सम्यक्एकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर - द्रव्य, द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा नित्य ही है, यह सम्यक्एकान्त है।

प्रश्न 185- अनित्य पर सम्यक्एकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर - द्रव्य, पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा अनित्य ही है, यह सम्यक्एकान्त है।

प्रश्न 186- नित्य पर मिथ्याएकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर - द्रव्य, सर्वथा नित्य ही है, यह मिथ्याएकान्त है।

प्रश्न 187- अनित्य पर मिथ्याएकान्त किस प्रकार लगता है ?

उत्तर - द्रव्य, सर्वथा अनित्य ही है, यह मिथ्याएकान्त है।

प्रश्न 188- प्रत्येक द्रव्य, नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म स्वरूप है, ऐसा किसने बताया ?

उत्तर - जिन, जिनवर और जिनवरवृषभों ने बताया है।

प्रश्न 189- जिन, जिनवर और जिनवरवृषभों ने प्रत्येक द्रव्य को नित्य-अनित्यादि अनेक धर्मस्वरूप बताया है, इसको जानने-मानने से ज्ञानियों को क्या लाभ होता है ?

उत्तर - (1) प्रत्येक द्रव्य, नित्य-अनित्यादि धर्मस्वरूप है - ऐसा जाननेवाले श्रुतज्ञानी को सम्पूर्ण द्रव्यों का ज्ञान, केवली के समान हो जाता है; मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का अन्तर रहता है।

(2) ज्ञानी साधक, नित्यधर्मस्वरूप निज आत्मा में विशेष एकाग्रता करके, केवलज्ञान की प्राप्ति कर लेता है।

प्रश्न 190- प्रत्येक द्रव्य, नित्य-अनित्य अनेक धर्मस्वरूप है, इसे सुनकर सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि क्या जानता है और क्या करता है ?

उत्तर - अपने मानसिकज्ञान में प्रत्येक द्रव्य, नित्य-अनित्यादि अनेक धर्मस्वरूप है - ऐसा निर्णय करके, अपने नित्यधर्मस्वरूप आत्मा की दृष्टि करके, साधक बनकर क्रम से सिद्धदशा की प्राप्ति कर लेता है।

प्रश्न 191- प्रत्येक द्रव्य, नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म -स्वरूप है, इसको सुनकर अपात्र मिथ्यादृष्टि क्या जानता है और क्या करता है ?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य, नित्य-अनित्यादि अनेक धर्मस्वरूप कैसे हो सकता है ? कभी नहीं हो सकता; एक ही समय में नित्य और अनित्य कैसे हो सकता है ? इस प्रकार मिथ्या मान्यता की पुष्टि करके, चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

प्रश्न 192- यह नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म, प्रत्येक द्रव्य में ही लगते हैं या और किसी में भी लगते हैं ?

उत्तर – प्रत्येक द्रव्य तथा प्रत्येक द्रव्य के एक-एक गुण में भी नित्य-अनित्यादि अनेक धर्म लग सकते हैं। इससे प्रत्येक द्रव्य-गुण की स्वतन्त्रता का ज्ञान होता है।

प्रश्न 193- एक-अनेक; सत्-असत्; तत्-अतत्; भेद-अभेद पर सम्यक्अनेकान्त और मिथ्या-अनेकान्त आदि के सब प्रश्नोत्तर लगाकर बताओ?

उत्तर – इन सभी प्रश्नों का प्रश्न क्रमांक 178 से 192 तक के अनुसार उत्तर दीजिये।

प्रश्न 194- स्याद्वाद-अनेकान्त के विषय में श्री समयसार, कलश 273 में क्या बताया है?

उत्तर – (1) पर्यायदृष्टि से देखने पर आत्मा, अनेकरूप दिखायी देता है और द्रव्यदृष्टि से देखने पर एकरूप; (2) क्रमभावी पर्यायदृष्टि से देखने पर, क्षणभंगुर दिखायी देता है और सहभावी गुणदृष्टि से देखने पर, परम विस्तार को प्राप्त दिखायी देता है और प्रदेशों की अपेक्षावाली दृष्टि से देखने पर, अपने प्रदेशों में ही व्याप्त दिखायी देता है। ऐसा द्रव्य-पर्यायात्मक अनन्तधर्मवाला वस्तु का स्वभाव है।

प्रश्न 195- अनेकान्त-स्याद्वाद के विषय में श्री समयसार, कलश 274 में क्या बताया है?

उत्तर – (1) एक ओर से देखने पर, कषायों का क्लेश दिखायी देता है और एक ओर से देखने पर शान्ति (कषायों का अभावरूप शान्तभाव) दिखायी देता है; (2) एक ओर से देखने पर, परभाव की (सांसारिक) पीड़ा दिखायी देती है और एक ओर से देखने पर, (संसार के अभावरूप) मुक्ति भी स्पर्श करती है। (3) एक ओर से

देखने पर तीनों लोक दिखायी देता है और एक ओर से देखने पर केवल एक चैतन्य ही शोभित होता है। ऐसी आत्मा की अद्भुत से भी अद्भुत स्वभाव महिमा जयवन्त वर्तती है।

प्रश्न 196– श्री समयसार, कलश 273–274 में अज्ञानी क्या मानता है और ज्ञानी क्या मानता है?

उत्तर – अहो, 'आत्मा का यह सहज वैभव अद्भुत है।' वह स्वभाव, अज्ञानियों के ज्ञान में आश्चर्य उत्पन्न करता है कि यह तो असम्भव सी बात है। ज्ञानियों को वस्तुस्वभाव में आश्चर्य नहीं होता; फिर भी उन्हें कभी नहीं हुआ ऐसा अभूतपूर्व–अद्भुत परमानन्द होता है, और आश्चर्य भी होता है। अहो! यह जिनवचन महान उपकारी हैं, वस्तु के यथार्थस्वरूप को बतानेवाले हैं; मैंने अनादिकाल ऐसे यथार्थस्वरूप के ज्ञान बिना ही व्यतीत कर दिया है। अहा! स्याद्वाद–अनेकान्तरूप मेरा स्वभाव जयवन्त वर्तता है। ऐसा स्याद्वाद –अनेकान्तस्वरूप ही दुःख का अभाव करनेवाला और सुख का देनेवाला है। हे संसार के प्राणियों! ऐसे अनेकान्त–स्याद्वाद स्वरूप की पहिचान करो।

प्रश्न 197– दुःख से छूटने के लिए और सुखी होने के लिए क्या करना चाहिए?

उत्तर – अनन्त शक्तिसम्पन्न अनेकान्तस्वरूप निज भगवान आत्मा को पहिचानना चाहिए।

प्रश्न 198– ज्ञानमात्र आत्मा, अनेकान्तस्वरूप किस प्रकार से है?

उत्तर – ज्ञानमात्र आत्मा को ज्ञानलक्षण के द्वारा अनुभव करने पर, आत्मा में मात्र ज्ञान ही नहीं आता है परन्तु ज्ञान के साथ, आनन्द,

प्रभुता, वीर्य, दर्शन, चारित्र, अस्तित्वादिक अनन्त गुणों सहित अभेद आत्मा अनुभव में आता है। इस प्रकार ज्ञानमात्र आत्मा कहते ही, अनेकान्तपना आ जाता है।

प्रश्न 199– आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं, उनमें हेर-फेर होता है या नहीं होता है?

उत्तर – आत्मा में अनन्त शक्तियाँ एक साथ काम करती हैं। शक्तियों में हेरफेर नहीं होता; प्रत्येक शक्ति की पर्यायें, क्रम-क्रम से भी नहीं होती हैं, अपितु जितनी शक्तियाँ हैं, उतनी-उतनी पर्यायें एक-एक समय करके निरन्तर होती रहती हैं।

प्रश्न 200– ज्ञानलक्षण द्वारा ध्यान में क्या आता है और क्या नहीं आता है?

उत्तर – ज्ञानलक्षण द्वारा अनन्त गुणों का पिण्ड ज्ञायक भगवान अनुभव में आता है और नौ प्रकार का पक्ष अनुभव में नहीं आता है।

प्रश्न 201– आत्मा किसके द्वारा अनुभव में आता है और किसके द्वारा अनुभव में नहीं आता है?

उत्तर – एकमात्र प्रज्ञारूपी छैनी द्वारा ही आत्मा अनुभव में आता है और नौ प्रकार के पक्षों द्वारा आत्मा अनुभव में नहीं आता है।

प्रश्न 202– आत्मा और अनन्त शक्तियों का द्रव्य, क्षेत्र -काल-भाव एक ही है या अलग?

उत्तर – आत्मा और अनन्त शक्तियों का द्रव्य-क्षेत्र-काल एक ही है; मात्र भाव में अन्तर है।

प्रश्न 203– भगवान का लघुनन्दन कब कहलाता है?

उत्तर – अनन्त शक्तिसम्पन्न निज आत्मा को अनुभव करने पर ही भगवान का लघुनन्दन कहला सकता है।

प्रश्न 204- प्रत्येक शक्ति का द्रव्य, क्षेत्र और काल, एक होने पर भी, भावभेद हैं, इसे स्पष्ट समझाइये?

उत्तर - कार्य भेद है। जैसे, जीवत्वशक्ति का कार्य, आत्मा को चैतन्यप्राणों से जिलाना है। ज्ञान का कार्य, जानना है। श्रद्धा का कार्य, प्रतीति है। चारित्र का कार्य, लीनता है। वीर्य का कार्य, स्वरूप की रचना है। सुख का कार्य, आकुलतारहित शान्ति का अनुभव है। प्रभुताशक्ति का कार्य, स्वतन्त्रता से शोभायमान रहना है। प्रकाशशक्ति का कार्य, स्वयं-प्रत्यक्ष स्वानुभव करना है। इस प्रकार अनन्त शक्तियों के कार्य भेद होने पर भी, द्रव्य-क्षेत्र-काल का भेद नहीं है।

प्रश्न 205- जीवत्वशक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर - चैतन्यमात्र भावप्राण को धारण करे, उसे जीवत्वशक्ति कहते हैं।

प्रश्न 206- जीवत्वशक्ति के जानने से क्या लाभ हैं?

उत्तर - आत्मा, दस प्राणों से और भावेन्द्रियरूप अशुद्धभाव प्राणों से जीता है, ऐसी खोटी मान्यता का अभाव हो जाता है और चैतन्यप्राणों से आत्मा सदा जीता है, ऐसा अनुभव हो जाता है।

प्रश्न 207- जीवत्वशक्ति क्या करती है?

उत्तर - आत्मा को कभी भी अजीवरूप नहीं होने देती; सदैव जीवरूप रखती है।

प्रश्न 208- जीवत्वशक्ति में पाँच भाव लगाओ?

उत्तर - आत्मा की जीवत्वशक्ति=पारिणामिकभाव। रागादि उदयभावों का अभाव=औदयिकभाव नास्तिरूप आया। जीवत्वशक्ति का शुद्धरूप परिणमन=क्षयोपशम और क्षायिकभाव आ गये; परन्तु औपशमिकभाव नहीं आता है।

प्रश्न 209– जीवत्वशक्ति में सात तत्त्व लगाओ ?

उत्तर – त्रिकाल चैतन्यप्राण से सम्पन्न ज्ञायकभाव=जीवतत्त्व। शुद्धपर्याय प्रगटी=संवरा–निजरा और मोक्षतत्त्व। अशुद्धपरिणमन दूर हुआ=आस्रव–बंधतत्त्व। जड़प्राणों से भिन्न जाना = अजीव–तत्त्व। इस प्रकार जैसे–जीवत्वशक्ति में सात तत्त्व आये; उसी प्रकार प्रत्येक शक्ति में लगाना चाहिए।

प्रश्न 210– जीवत्वशक्ति में किसका समावेश होता है और किसका समावेश नहीं होता है ?

उत्तर – जीवत्वशक्ति में अक्रमरूप अनन्त शक्तियाँ और उन शक्तियों का क्रम–क्रम से होनेवाला शुद्धपरिणमन; इस प्रकार क्रम –अक्रमरूप अनन्त धर्मों का जीवत्वशक्ति में समावेश होता है। नौ प्रकार के पक्षों का समावेश जीवत्वशक्ति में नहीं होता है। जीवत्व –शक्ति की तरह ही, बाकी सब शक्तियों में जानना और लगाना चाहिए।

प्रश्न 211– शक्तियों की यथार्थ पहिचान कब होती है ?

उत्तर – अपनी ज्ञान की पर्याय, निज आत्मा के सन्मुख करने पर ही शक्तियों की यथार्थ पहिचान होती है क्योंकि अपने आपका अनुभव होने पर ही अनन्त शक्तियाँ आत्मा में एक साथ उछलती हैं। इसलिए प्रत्येक आत्मार्थी को अनन्त शक्तिसम्पन्न अपने ज्ञायक –स्वभाव को दृष्टि में लेना ही मनुष्यजीवन का सार है।

प्रश्न 212– आत्मा प्रसिद्ध हुई, ऐसा कब कहा जा सकता है ?

उत्तर – मुझ आत्मा का पर द्रव्यों से तो किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। मुझ आत्मा में असंख्य प्रदेश, अनन्त शक्तियाँ,

एक-एक शक्ति में अनन्त सामर्थ्य है। मेरी किसी भी शक्ति में, उसके किसी भी प्रदेश में विकार नहीं है। पुण्य-पाप के विकल्पों से भिन्न, अनन्त गुणसम्पन्न निज आत्मा का अनुभव करने पर ही आत्मा की प्रसिद्धि होती है। इसलिए हे भव्यो! अपनी आत्मा का अनुभव करो, यह जैनशासन का सार है।

प्रश्न 213- 47 शक्तियों का स्वरूप स्पष्ट समझाओ?

उत्तर - आत्म-वैभव में पूज्य श्री कानजीस्वामी ने अलौकिक रीति से 47 शक्तियों का स्वरूप प्रवचन द्वारा समझाया है, उसमें देखिएगा, आपको अपूर्व आनन्द आयेगा।

॥ अनेकान्त-स्याद्वाद प्रथम अधिकार समाप्त॥

2

मोक्षमार्ग

इस भव तरु का मूल इक जानहु मिथ्या भाव।
ताको करि निर्मूल अब करिए मोक्ष उपाव॥1॥
शिव उपाय करते प्रथम कारण मंगलरूप।
विघन विनाशक सुखकरन नमौं शुद्ध शिवभूप॥2॥

अर्थात्, इस भवरूपी वृक्ष का मूल, एक मिथ्यात्वभाव है, उसको निर्मूल करके मोक्ष का उपाय करना चाहिए॥1॥

शिव उपाय, अर्थात् मोक्ष का उपाय करने से पहिले उसका कारण और मङ्गलरूप शुद्ध शिवभूप को नमस्कार करना चाहिए, क्योंकि वह विघ्न विनाशक और सुख का करनेवाला है॥2॥

प्रश्न 1– मोक्ष क्या है ?

उत्तर – 'मोक्ष कहे निज शुद्धता', अर्थात् परिपूर्ण शुद्धि का प्रकट होना, वह मोक्ष है और मोक्ष, आत्मा की परिपूर्ण शुद्धदशा है।

प्रश्न 2– मोक्ष कितने प्रकार का है ?

उत्तर – पाँच प्रकार का है। (1) शक्तिरूप मोक्ष, (2) दृष्टिरूप मोक्ष (चौथा गुणस्थान), (3) मोहमुक्त मोक्ष (12 वाँ गुणस्थान), (4) जीवनमुक्त मोक्ष (13, 14 वाँ गुणस्थान), (5) देहमुक्त मोक्ष (सिद्धदशा)।

प्रश्न 3– पाँच प्रकार के मोक्ष के विषय में क्या ध्यान रखना चाहिए ?

उत्तर - (1) शक्तिरूप मोक्ष के आश्रय बिना, दृष्टिरूप मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। (2) दृष्टिरूप मोक्ष के प्राप्त किये बिना, मोहमुक्त मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। (3) मोहमुक्त मोक्ष प्राप्त किये बिना, जीवनमुक्त मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती। (4) जीवनमुक्त मोक्ष प्राप्त किये बिना, देहमुक्त मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिए पात्र जीवों को एकमात्र शक्तिरूप मोक्ष का आश्रय करना चाहिए, क्योंकि इसी के आश्रय से ही दृष्टिरूप मोक्ष आदि की प्राप्ति होती है। पर के, विकार के, अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्यायों के आश्रय से मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

प्रश्न 4- मोक्ष कैसे होता है ?

उत्तर - संवर, निर्जरापूर्वक ही मोक्ष होता है।

प्रश्न 5- संवर, निर्जरा और मोक्ष, अस्तिसूचक नाम हैं या नास्तिसूचक नाम हैं ?

उत्तर - संवर, निर्जरा और मोक्ष, नास्तिसूचक नाम हैं।

प्रश्न 6- भावसंवर की नास्ति-अस्ति सूचक परिभाषा क्या है ?

उत्तर - शुभाशुभभावों का उत्पन्न नहीं होना, नास्ति से भावसंवर और शुद्धि का प्रगट होना, अस्ति से भावसंवर है।

प्रश्न 7- भावनिर्जरा की नास्ति-अस्ति सूचक परिभाषा क्या है ?

उत्तर - अशुद्धि की हानि, नास्ति से भावनिर्जरा है और शुद्धि की वृद्धि, अस्ति से भावनिर्जरा है।

प्रश्न 8- भावमोक्ष की नास्ति-अस्ति सूचक परिभाषा क्या है ?

उत्तर – सम्पूर्ण अशुद्धि का अभाव, नास्ति से भावमोक्ष है और सम्पूर्ण शुद्धि का प्रगट होना, अस्ति से भावमोक्ष है।

प्रश्न 9– भावसंवर, भावनिर्जरा किसके अभावपूर्वक प्रगट होती है ?

उत्तर – संवर–निर्जरा, आस्रव और बन्ध के अभावपूर्वक प्रगट होती है।

प्रश्न 10– आस्रव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीव में जो विकारी शुभाशुभभावरूप अरूपी अवस्था होती है, वह आस्रव है।

प्रश्न 11– आस्रव के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दो भेद हैं – द्रव्यआस्रव और भावआस्रव।

प्रश्न 12– आस्रव की दूसरी परिभाषा क्या हैं ?

उत्तर – (1) नया–नया आना, (2) मर्यादापूर्वक आना।

प्रश्न 13– भावआस्रव में आस्रव की यह दोनों परिभाषाएँ किस प्रकार घटित होती हैं ?

उत्तर – (1) शुभाशुभभाव नये–नये आते हैं; इसलिए 'नया–नया आना' यह भावआस्रव है। (2) जीव इतना विकार करे कि ज्ञान–दर्शन–वीर्य का सर्वथा अभाव हो जावे – ऐसा नहीं हो सकता; इसलिए आस्रवभाव, मर्यादा में ही आता है; अत: 'मर्यादापूर्वक आना', उसे भावआस्रव कहते हैं।

प्रश्न 14– द्रव्यआस्रव में आस्रव की यह दोनों परिभाषाएँ किस प्रकार घटित होती हैं ?

उत्तर – (1) कर्म नये–नये आते हैं; इसलिए 'नया–नया आना' यह द्रव्यआस्रव है। (2) जीव, विकार करे और सर्व

कार्माणवर्गणा, द्रव्यकर्मरूप परिणमन कर जावे – ऐसा नहीं होता है, क्योंकि कार्माणवर्गणा भी मर्यादापूर्वक ही आती हैं; इसलिए 'मर्यादापूर्वक आना' यह द्रव्यआस्रव है।

प्रश्न 15– भावबन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा का अज्ञान, राग–द्वेष, पुण्य–पापरूप विभाव में रुक जाना, वह भावबन्ध है।

प्रश्न 16– भावआस्रव, भावबन्ध का अभाव और भाव-संवर–भावनिर्जरा की प्राप्ति किसमें होती है ?

उत्तर – जीव में होती है; इसलिए जीवतत्त्व की जानकारी भी आवश्यक है।

प्रश्न 17– जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीव, अर्थात् आत्मा। वह सदैव ज्ञातास्वरूप, पर से भिन्न और त्रिकाली / स्थायी है।

प्रश्न 18– भावआस्रव, भावबन्ध किसके निमित्त से होते हैं ?

उत्तर – अजीव के निमित्त से होते हैं; अत: अजीव की जानकारी भी आवश्यक है।

प्रश्न 19– अजीव किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिनमें चेतना–ज्ञातृत्व नहीं, वे अजीव हैं – ऐसे द्रव्य पाँच हैं। उनमें धर्म, अधर्म, आकाश और काल, चार अरूपी हैं और पुद्गल, रूपी हैं।

प्रश्न 20– सात तत्त्वों में द्रव्य कौन हैं और पर्याय कौन हैं ?

उत्तर – सात तत्त्वों में प्रथम दो तत्त्व 'जीव' और 'अजीव', द्रव्य हैं और पाँच तत्त्व, जीव और अजीव की संयोगी और वियोगी

पर्यायें हैं। आस्रव और बन्ध, जीव-अजीव की संयोगी पर्यायें तथा संवर, निर्जरा और मोक्ष, ये जीव-अजीव की वियोगी पर्यायें हैं।

प्रश्न 21- भावसंवर और भावनिर्जरा में कितने समय का अन्तर है?

उत्तर - दोनों का समय एक ही है, परन्तु शुद्धि प्रगट हुई, इस अपेक्षा भावसंवर है और शुद्धि की वृद्धि हुई, इस अपेक्षा भावनिर्जरा है।

प्रश्न 22- भावसंवर और भावनिर्जरा होने पर, भावमोक्ष होने में कितना समय लगेगा?

उत्तर - असंख्यात समय ही लगेंगे, संख्यात् या अनन्त समय नहीं लगेंगे।

प्रश्न 23- जिस समय संवर-निर्जरा प्रगट हो, उसी समय मोक्ष प्रगट हो तो हम संवर-निर्जरा होना माने - कोई ऐसा कहे, तो क्या नुकसान है?

उत्तर - (1) चौथा गुणस्थान और सिद्धदशा ही रहेगी और पाँचवें से चौदहवें गुणस्थान तक के अभाव का प्रसंग उपस्थित होवेगा। (2) श्रावकदशा, मुनिदशा, श्रेणी एवं अरहन्तदशा का अभाव हो जावेगा। (3) गुणस्थानों में क्रम के अभाव का प्रसंग उपस्थित होवेगा। (4) कोई उपदेशक नहीं रहेगा, यद्यपि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में सम्यग्ज्ञानी का ही उपदेश निमित्त होता है; अत: सम्यग्दर्शन का भी अभाव हो जावेगा।

प्रश्न 24- संवरपूर्वक निर्जरा किसको होती है और किसको नहीं होती है?

उत्तर - (1) सम्यग्दर्शन होने पर ही संवरपूर्वक निर्जरा ज्ञानियों को ही होती है; मिथ्यादृष्टियों को नहीं। (2) अनिवृत्तिकरण और अपूर्वकरण में अकेली निर्जरा होती है, संवरपूर्वक नहीं।

प्रश्न 25- संवर-निर्जरापूर्वक, मोक्ष की प्राप्ति के लिये क्या करें और निगोद की प्राप्ति क्यों होती है ?

उत्तर - अपने सामान्य द्रव्यस्वभाव को देखने से, अपने विशेष में संवर-निर्जरा की प्राप्ति होकर क्रम से मोक्ष होता है और मात्र विशेष को देखने से, आस्रव-बन्ध की प्राप्ति होकर निगोद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 26- स्वभाव के आश्रय से पुरुषार्थ करने का क्या फल है ?

उत्तर - (1) पञ्च परावर्तन का अभाव हो जाता है; (2) मिथ्यात्व-अविरति आदि संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है; (3) पञ्च परमेष्ठियों में उसकी गिनती होने लगती है; (4) पञ्चम गति मोक्ष की प्राप्ति होती है; (5) पञ्चम पारिणामिक -भाव का महत्व आ जाता है; (6) आठ कर्मों का अभाव हो जाता है; (7) 14 गुणस्थान, 14 मार्गणा और 14 जीवसमास का अभाव होकर, सिद्धदशा की प्राप्ति होना स्वभाव के आश्रय से पुरुषार्थ करने का फल है।

प्रश्न 27- अजीव की संयोगी-वियोगी पर्यायों की परिभाषा क्या हैं ?

उत्तर - द्रव्यआस्रव=नवीन कर्मों का आना। द्रव्यबन्ध=नवीन कर्मों का स्वयं स्वतः बंधना। द्रव्यसंवर=कर्मों का आना, स्वयं स्वतः रुक जाना। द्रव्यनिर्जरा=जड़कर्म का अंशतः खिर जाना। द्रव्यमोक्ष = द्रव्यकर्मों का आत्म प्रदेशों से अत्यन्त अभाव होना।

प्रश्न 28- जीव और अजीव की पर्यायों में कैसा-कैसा सम्बन्ध है ?

उत्तर – निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है। निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध परस्पर परतन्त्रता का सूचक नहीं है, परन्तु नैमित्तिक के साथ कौन निमित्तरूप पदार्थ है, उसका ज्ञान कराता है क्योंकि जहाँ उपादान होता है, वहाँ निमित्त नियम से होता ही है – ऐसा वस्तु स्वभाव है। बनारसीदासजी ने कहा है – 'उपादान निजगुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय; भेदज्ञान प्रमाण विधि, बिरला बूझे कोय॥'

प्रश्न 29– जीव का प्रयोजन क्या है?

उत्तर – जिसके द्वारा सुख उत्पन्न हो और दुःख का नाश हो, उस कार्य का नाम प्रयोजन है। इस जीव का प्रयोजन तो एक यही है कि दुःख ना हो और सुख हो। किसी जीव के अन्य कुछ भी प्रयोजन नहीं है।

प्रश्न 30– दुःख का नाश और सुख की उत्पत्ति किसके द्वारा हो सकती है?

उत्तर – सात तत्त्वों के सच्चे श्रद्धान से ही दुःख का नाश और सुख की प्राप्ति हो सकती है।

प्रश्न 31– सात तत्त्वों के सच्चे श्रद्धान से ही दुःख का अभाव सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

उत्तर – प्रथम तो दुःख दूर करने में अपना और पर का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। (अ) यदि अपना और पर का ज्ञान नहीं हो तो अपने को पहिचाने बिना, अपना दुःख कैसे दूर करे। (आ) अपने को और पर को एक जानकर अपना दुःख दुर करने के अर्थ पर का उपचार करे तो अपना दुःख कैसे दूर हो? (इ) आप (स्व है) और पर भिन्न है, परन्तु यह पर में अहंकार-ममकार करे तो इससे दुःख दूर नहीं होता है तथा अपना और पर का ज्ञान, जीव-अजीव का ज्ञान होने पर ही होता है, क्योंकि आप स्वयं जीव है, शरीरादिक अजीव हैं।

यदि लक्षणादि द्वारा जीव-अजीव की पहचान हो तो अपनी और पर की भिन्नता भासित हो; इसलिए जीव-अजीव को जानना। इस प्रकार जीव-अजीव का यथार्थ ज्ञान करने पर ही, स्व-पर का श्रद्धान होता है और पर से भिन्न अपने को पहचानकर निज आत्मा के हित के अर्थ, मोक्ष का उपाय करता है; उससे सुख उत्पन्न होता है। जीव -अजीव का यथार्थ ज्ञान न करने पर, स्व-पर का श्रद्धान नहीं होता। अपने से भिन्न परद्रव्य को न जानने से, पर से उदासीन होकर मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं होती; अतः उससे दुःख उत्पन्न होता है। इसलिए आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्षसहित जीव-अजीव तत्त्व प्रयोजनभूत समझने चाहिए। आस्रव और बन्ध, दुःख के कारण हैं तथा संवर, निर्जरा और मोक्ष, सुख के कारण हैं; इसलिए जीवादि सात तत्त्वों का श्रद्धान करना आवश्यक है। इन सात तत्त्वों की सच्ची श्रद्धा के बिना, दुःख का अभाव और सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

प्रश्न 32- जीव-अजीवतत्त्व का सच्चा श्रद्धान क्या है ?

उत्तर - अपने को आपरूप जानकर, पर का अंश भी अपने में न मिलाना और अपना अंश भी पर में न मिलाना, यह जीव-अजीव तत्त्व का सच्चा श्रद्धान है।

प्रश्न 33- आस्रवतत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान क्या है ?

उत्तर - परमार्थतः पुण्य-पाप (शुभाशुभभाव) आत्मा को अहितकर हैं। आत्मा की क्षणिक अशुद्ध अवस्था हैं। द्रव्य पुण्य -पाप, आत्मा का हित-अहित नहीं कर सकते हैं। मिथ्यात्व राग -द्वेषादि भाव आत्मा को प्रगटरूप से दुःख के देनेवाले हैं - यह आस्रवतत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान है।

प्रश्न 34- बन्धतत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान क्या है ?

उत्तर - जैसे - सोने की बेड़ी, वैसे ही लोहे की बेड़ी है क्योंकि

दोनों बन्धन कारक हैं; इसी प्रकार पुण्य-पाप दोनों जीव को बन्धन कारक हैं – यह बन्धतत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान है।

प्रश्न 35- संवरतत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान क्या है?

उत्तर – निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही जीव के लिए हितकारी है – यह संवरतत्त्व का सच्चा श्रद्धान है।

प्रश्न 36- निर्जरातत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान क्या है?

उत्तर – आत्मा में एकाग्र होने पर शुभाशुभ इच्छाएँ उत्पन्न ना होने से, निज आत्मा की शुद्धि का बढ़ना सो तप है। उस तप से निर्जरा होती है। ऐसा तप, सुखदायक है – यह निर्जरातत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान है।

प्रश्न 37- मोक्षतत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान क्या है?

उत्तर – मोक्षदशा में सम्पूर्ण आकुलता का अभाव है। पूर्ण स्वाधीन निराकुलतारूप सुख है – यह मोक्षतत्त्व का ज्यों का त्यों श्रद्धान है।

प्रश्न 38- जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है?

उत्तर – बाह्य अनुकूल संयोगों से मैं सुखी और प्रतिकूल संयोगों से मैं दुःखी; निर्धन होने से मैं दुःखी, धन होने से मैं सुखी इत्यादि मिथ्या अभिप्राय, यह जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न 39- अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है?

उत्तर – शरीर का संयोग होने से मैं उत्पन्न हुआ और शरीर का वियोग होने से मैं मर जाऊँगा। धन, शरीरादि जड़पदार्थों में परिवर्तन होने से अपने में इष्ट-अनिष्ट परिवर्तन मानना, अर्थात् जो अजीव की अवस्थाएँ हैं, उन्हें अपनी मानना, यह अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न 40- आस्त्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है ?

उत्तर - मिथ्यात्व रागादि प्रगट दु:ख देनेवाले हैं तथापि उनका सेवन करने में सुख मानना - यह आस्त्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न 41- बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है ?

उत्तर - शुभ को लाभदायक तथा अशुभ को हानिकारक मानना - यह बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न 42- संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है ?

उत्तर - सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग्ज्ञानसहित वैराग्य को कष्टदायक मानना - यह संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न 43- निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है ?

उत्तर - शुभाशुभ इच्छाओं को न रोककर, इन्द्रिय विषयों की इच्छा करना - यह निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न 44- मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल क्या है ?

उत्तर - सम्यग्दर्शनपूर्वक ही पूर्ण निराकुलता प्रगट होती है और वही सच्चा सुख है, ऐसा न मानकर, बाह्य सुविधाओं में सुख मानना - यह मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल है।

प्रश्न 45- मोक्ष प्राप्त करने के लिए किस पर अधिकार मानना चाहिए ?

उत्तर - एकमात्र 'सकल निरावरण-अखण्ड-एक स्वरूप प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर-शुद्ध पारिणामिकपरमभाव लक्षण, निज परमात्मस्वरूप पर अधिकार मानने से ही तुरन्त संवर, निर्जरा, और क्रम से मोक्ष की प्राप्ति होती है।'

प्रश्न 46- अनादिकाल से अज्ञानीजीव ने किस-किस पर

अपना अधिकार माना, जिससे उसे संवर-निर्जरा-मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई है ?

उत्तर - (1) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों पर अपना अधिकार माना; (2) आँख, नाक, कानरूप औदारिकशरीर पर अपना अधिकार माना; (3) तैजस-कार्माणशरीरों पर अपना अधिकार माना; (4) भाषा और मन पर अपना अधिकार माना; (5) शुभाशुभ विकारीभावों में अपना अधिकार माना; (6) अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्यायों पर अपना अधिकार माना; (7) भेदनय के पक्ष पर अपना अधिकार माना; (8) अभेदनय के पक्ष पर अपना अधिकार माना; (9) भेदाभेदनय के पक्ष पर अपना अधिकार माना; इसलिए संवर निर्जरा और मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई।

प्रश्न 47- नौ प्रकार के पक्षों पर अधिकार मानने से क्या होता है ?

उत्तर - अनादिकाल से एक-एक समय करके चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद की सैर करता है और प्रत्येक समय महादुःखी होता है।

प्रश्न 48- आत्मा का अधिकार किसमें है और किसमें नहीं है ?

उत्तर - आत्मा का अधिकार अपने अनन्त गुणों के पिण्ड ज्ञायकभाव में ही है और नौ प्रकार के पक्षों पर, आत्मा को अधिकार नहीं है।

प्रश्न 49- शरीर में बीमारी आ जावे, लड़का मर जावे, धन नष्ट हो जावे, तो हम क्या करें, जिससे शान्ति की प्राप्ति हो ?

उत्तर - जो सिद्धभगवान करते हैं, वही हम करें तो शान्ति की प्राप्ति हो। जैसे - हॉस्पिटल में 50 मरीज मर जावें, तो क्या

डॉक्टर रोवेगा? बस जानेगा और देखेगा, क्योंकि इन पर उसका अधिकार नहीं है; उसी प्रकार शरीर में बीमारी आवे, स्त्री मर जावे, धन नष्ट हो जावे, तो जानना चाहिए कि शरीरादि पुद्गलों की इन अवस्थाओं पर चैतन्यस्वरूप आत्मा का अधिकार नहीं है; तुरन्त शान्ति आ जावेगी। शरीरादि पुद्गलों की अवस्थाओं पर आत्मा का अधिकार मानेगा तो दुःखी होकर चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद में चला जावेगा।

प्रश्न 50– पूर्ण–अपूर्ण शुद्धपर्याय पर भी अपना अधिकार माने तो चारों गतियों में घूमकर निगोद में चला जावेगा–ऐसा आपने कहा है। जबकि ज्ञानी तो शुद्धपर्याय पर ही अपना अधिकार मानते हैं?

उत्तर – चौथे गुणस्थान से लेकर सब ज्ञानी, एकमात्र अपने त्रिकाली भगवान पर ही अधिकार मानते हैं। अपूर्ण–पूर्ण शुद्धपर्याय पर भी ज्ञानी अपना अधिकार नहीं मानते हैं। पर और विकारीभावों की तो बात ही नहीं है।

प्रश्न 51– पूर्ण–अपूर्ण शुद्धपर्याय के आश्रय से मेरा भला हो, ऐसा माननेवाला कौन है?

उत्तर – मिथ्यादृष्टि है और वह चारों गतियों में घूमकर निगोद का पात्र है।

प्रश्न 52– ज्ञानियों को औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव जो धर्मरूप हैं, क्या उनकी भावना नहीं होती है?

उत्तर – ज्ञानियों को एकमात्र परमपारिणामिकभाव की ही भावना होती है। उसके फलस्वरूप औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिकभाव पर्याय में उत्पन्न होते हैं परन्तु उनकी भावना नहीं होती है।

प्रश्न 53– ज्ञानियों की पर्याय में तो औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव होते हैं और औदयिकभाव भी होते हैं तो क्या ज्ञानियों को उन सब भावों की भावना नहीं है ?

उत्तर – अरे भाई, पर्याय में औपशमिकादिक भावों का होना अलग बात है और उनकी भावना करना अलग बात है क्योंकि ज्ञानी, श्रद्धा में एकमात्र अपने परमपरिणामिक ज्ञायकभाव को ही स्वीकार करते हैं; निमित्त भंगभेद, अपूर्ण–पूर्ण शुद्धपर्याय को स्वीकार नहीं करते हैं। (2) ज्ञानी अपने सम्यग्ज्ञान में परमपारिणामिकभावरूप निज जीव को आश्रय करने योग्य जानता है। औपशमिकभाव, धर्म का क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव, अर्थात् संवर, निर्जरा और मोक्ष को प्रगट करने योग्य जानता है। औदयिकभाव, अर्थात् आस्रव –बन्ध को हेयरूप जानता है। इस प्रकार ज्ञानियों को तो मात्र निज ज्ञायक की ही भावना वर्तती हैं, और की नहीं।

प्रश्न 54– मोक्षमार्ग शब्द में 'मार्ग' का क्या अर्थ है ?

उत्तर – मार्ग, अर्थात् रास्ता।

प्रश्न 55– अज्ञानी, मोक्षमार्ग, अर्थात् मोक्ष का रास्ता कहाँ खोजता है ?

उत्तर – जैसे, हिरन की नाभि में कस्तूरी है परन्तु वह बाहर खोजता है; उसी प्रकार अज्ञानी, शरीर की क्रियाओं में व शुभभावों में मोक्षमार्ग खोजता है।

प्रश्न 56– बाहरी क्रियाओं में और शुभभावों में जो मोक्षमार्ग मानता है, उसे जिनवाणी में क्या-क्या कहा है ?

उत्तर – (1) श्री समयसार में नपुंसक, व्यभिचारी, मिथ्यादृष्टि, असंयमी, पापी, अन्य मतवाला तथा आत्मावलोकन में हरामजादीपना आदि कहा है। (2) पञ्चास्तिकाय, गाथा 168 में मिथ्यादृष्टि का

शुभराग सर्व अनर्थ सन्तति का मूल कहा है और रत्नकरण्डश्रावकाचार, गाथा 33 में 'संसार' परिभ्रमण ही बताया है।

प्रश्न 57- मोक्षमार्ग, अर्थात् मोक्ष का रास्ता क्या है ?

उत्तर - निज परमपारिणामिक ज्ञायक भगवान का आश्रय लेकर, सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति करना ही मोक्ष का रास्ता है।

प्रश्न 58- सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्ग है, इसमें अनेकान्त क्या है ?

उत्तर - सम्यग्दर्शनादि ही मोक्षमार्ग है; व्यवहाररत्नत्रयादि मोक्षमार्ग नहीं है - यह अनेकान्त है।

प्रश्न 59- व्यवहाररत्नत्रयादि मोक्षमार्ग नहीं है, वह किस जीव की बात है ?

उत्तर - जिस जीव को सम्यग्दर्शनादि प्रगट हुआ है, उस जीव के भूमिकानसार राग को उपचार से मोक्षमार्ग कहते हैं; वास्तव में वह राग, मोक्षमार्ग नहीं है तथा जो शुद्धि प्रगटी है, वह ही मोक्षमार्ग है। मिथ्यादृष्टि के शुभभावों को तो व्यवहार भी नहीं कहा जाता है, क्योंकि अनुपचार हुए बिना, उपचार का आरोप नहीं आता है।

प्रश्न 60- द्रव्यपुण्य-पाप और शुभाशुभभावों के सम्बन्ध में क्या-क्या जानना चाहिए ?

उत्तर - (1) परमार्थतः पुण्य-पाप (शुभाशुभभाव) आत्मा को अहितकर ही हैं और यह आत्मा की क्षणिक अशुद्ध अवस्था है। (2) सम्यग्दृष्टि के शुभभावों से संवर निर्जरा होती है, यह मान्यता खोटी है, क्योंकि शुभभाव चाहे ज्ञानी के हो या मिथ्यादृष्टि के हो, दोनों ही बंध के कारण हैं *[श्री समयसार कलश टीका, कलश 110]* (3) पुण्य छोड़कर, पापरूप प्रवर्तन ना करे और पुण्य को मोक्षमार्ग

ना माने, यह पुण्य–पाप को जानने का लाभ है। *[मोक्षमार्गप्रकाशक]*
(4) द्रव्यपुण्य–पाप, आत्मा का हित अहित नहीं करते हैं।

प्रश्न 61– पूर्ण विकार किसे होता है?

उत्तर – किसी को भी नहीं; क्योंकि यदि पूर्ण विकार हो जावे तो जीव के नाश का प्रसंग उपस्थित हो जावेगा, सो ऐसा होता ही नहीं।

प्रश्न 62– भावास्त्रव अमर्यादित हो तो क्या हो?

उत्तर – जो मर्यादित हो, उसका अभाव हो सकता है – ऐसा जानकर पात्र जीव, निज स्वभाव का आश्रय लेकर भावास्त्रव का अभाव करके, धर्म की शुरुआत करके क्रम से परमदशा को प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न 63– द्रव्यास्त्रव मर्यादित है या अमर्यादित?

उत्तर – मर्यादित है, क्योंकि यदि अमर्यादित हो तो सम्पूर्ण कार्माणवर्गणा को द्रव्यकर्मरूप परिणमित होने का प्रसंग उपस्थित होवेगा, सो ऐसा होता नहीं।

प्रश्न 64– पञ्चाध्यायीकार ने आस्त्रव को क्या कहा है?

उत्तर – 'आगन्तुकभाव' कहा है।

प्रश्न 65– संसार का बीज क्या है?

उत्तर – पर वस्तुओं में और शुभाशुभभावों में एकत्वबुद्धि ही संसार का बीज है। *[पुरुषार्थसिद्धियुपाय, गाथा 14]*

प्रश्न 66– पञ्चाध्यायी में संसार का बीज, अर्थात मिथ्यात्व किसे किसे बताया है?

उत्तर – (1) आत्मा को मात्र कर्मचेतना (राग–द्वेष, मोहरूप) और कर्मफलचेतना (सुख–दुखरूप) ही अनुभव करना, मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 972 से 974]*

(2) आत्मा को नो तत्त्वरूप (पर्याय के भेदरूप) अनुभव करना और सामान्य (अन्त:तत्त्वरूप) अनुभव नहीं करना, यह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 983 से 996]*

(3)[1] आत्मा का, [2] कर्म का, [3] कर्ता-भोक्तापने का, [4] पाप का, [5] पुण्य-पाप के कारण का, [6] पुण्य-पाप के फल का, [7] सामान्य-विशेषस्वरूप का, [8] राग से भिन्न अपने स्वरूप का श्रद्धान-ज्ञान न होना, वह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 1233]*

(4) सात भययुक्त रहना, वह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 1264]*

(5) इष्ट का नाश न हो जाए, अनिष्ट की प्राप्ति न हो जावे, धन नाश होकर दरिद्रता न आ जावे, यह इस लोक का भय है। यह मिथ्यादर्शन है। विश्व से भिन्न होने पर भी, अपने को विश्वरूप समझना, यह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 1274 से 1278]*

(6) मेरा जन्म दुर्गति में न हो जाए, ऐसा परलोक का भय, यह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 1292 से 1294]*

(7) रोग से डरते रहना या रोग आने पर घबराना या उससे (रोग से) अपनी हानि मानना, यह वेदनाभय मिथ्यादर्शन से होता है। *[गाथा 1292 से 1294 तक]*

(8) शरीर के नाश से अपना नाश मानना, यह अत्राणभय (वेदनाभय) मिथ्यादृष्टियों को होता है। *[गाथा 1299 से 1301]*

(9) शरीर की पर्याय के जन्म से, अपना जन्म और शरीर की पर्याय के नाश से, अपना नाश मानना, यह अगुप्तिभय मिथ्यादर्शन से होता है। *[गाथा 1604 से 1605]*

(10) दस प्राणों के नाश से डरना या उनके नाश से अपना नाश मानना, यह मरणभय मिथ्यादर्शन से होता है। *[1307 से 1308]*

(11) बिजली गिरने से या और किसी कारण से मेरी बुरी अवस्था ना हो जाए, ऐसा अकस्मात्‌भय मिथ्यादर्शन से होता है।

[गाथा 1311 से 1313]

(12) लोकमूढ़ता, देवमूढ़ता, गुरुमूढ़ता और धर्ममूढ़ता, यह मिथ्यादर्शन के चिह्न हैं। *[गाथा 1361 से 1369]*

(13) नौ तत्त्वों में अश्रद्धा, अर्थात् विपरीत श्रद्धा का होना, यह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 1792 से 1809]*

(14) अन्य मतियों के बताये हुए पदार्थों में श्रद्धा का होना, यह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 1997]*

(15) आत्मस्वरूप की अनुपलब्धि होना, यह मिथ्यादर्शन है।

(16) सूक्ष्म अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थों का विश्वास ना होना, यह मिथ्यादर्शन है। जैसे – (अ) जो पदार्थ केवलीगम्य हैं, वे छदमस्थ को आगम आधार से जानने योग्य हैं। (आ) धर्म-अधर्म -आकाश-काल-परमाणु आदि को सूक्ष्म पदार्थ कहते हैं क्योंकि ये इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होते हैं। (इ) राम-रावण आदि को, अर्थात् जिन पदार्थों में भूतकाल के बहुत समय का अन्तर हो या आगे बहुत समय बाद होनेवाला हो। जैसे – राजा श्रेणिक, प्रथम तीर्थङ्कर होंगे तथा दूरवर्ती पदार्थों में मेरुपर्वत, स्वर्ग, नदी, द्वीप, समुद्र इत्यादिक जिनका छद्मस्थ वहाँ पहुँचकर दर्शन नहीं कर सकता है, उनका विश्वास नहीं करना, यह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 1810]*

(17) मोक्ष के अस्तित्व का और उसमें पाये जानेवाले अतीन्द्रिय सुख और अतीन्द्रिय ज्ञान के प्रति रुचि न होना, यह मिथ्यादर्शन है।

[गाथा 1812]

(18) जाति अपेक्षा छह द्रव्य का स्वत:सिद्ध अनादिअनन्त स्वतन्त्र परिणमन न मानना, यह मिथ्यादर्शन है। *[1813]*

(19) प्रत्येक द्रव्य को नित्य-अनित्य, एक-अनेक, अस्ति-नास्ति, तत्-अतत् आदि अनेकान्तात्मकस्वरूप न मानना, किन्तु एकान्तरूप मानना, यह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 1814]*

(20) नोकर्म (शरीर-मन-वाणी), भावकर्म (क्रोधादिशुभाशुभ-भाव) और धन-धान्यादि जो अनात्मीय वस्तुएँ हैं, उनको आत्मीय मानना, यह मिथ्यादर्शन है।

(21) झूठे देव-गुरु-धर्म को सच्चेवत् समझना, अर्थात् सच्चे देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा न होना, यह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 1816]*

(22) धन, धान्य, सुता आदि की प्राप्ति के लिए देवी आदि को पूजना या अनेक कुकर्म करना, यह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 1817]*

प्रश्न 67- मिथ्यात्व के उक्त 22 लक्षण क्या और किसी शास्त्र में भी है ?

उत्तर - भाई! चारों अनुयोगों के सब शास्त्रों में यही लक्षण बताये हैं।

प्रश्न 68- श्री प्रवचनसार में मिथ्यात्व का क्या लक्षण बताया है ?

उत्तर - (1) (आ) पदार्थों का अयथाग्रहण, (आ) तिर्यञ्च-मनुष्यों के प्रति करुणाभाव, (इ) विषयों की संगति, अर्थात् इष्ट विषयों में प्रीति और अनिष्ट विषयों में अप्रीति, यह सब मोह के चिह्न (लक्षण) हैं। *[गाथा 85]*

(2) (अ) जीव के द्रव्य-गुण-पर्याय सम्बन्धी मूढ़भाव, वह मोहभाव है। (आ) उससे आच्छादित वर्तता हुआ जीव, राग-द्वेष को प्राप्त करके क्षुब्ध होता है। *[गाथा 83]*

(3) जो श्रमण अवस्था में इन अस्तित्ववाले विशेषसहित

पदार्थों की श्रद्धा नहीं करता, वह श्रमण नहीं है, उसे धर्म प्राप्त नहीं होता है। *[गाथा 91]*

(4) आगमहीन श्रमण, निज और पर को नहीं जानता, वह जीवादि पदार्थों को नहीं जानता हुआ भिक्षु, द्रव्य-भावकर्मों को कैसे क्षय करें? *[गाथा 233]*

(5) द्रव्यलिंगी मुनि को संसार तत्त्व कहा है। *[गाथा 271]*

(6) सूत्र, संयम और तप से संयुक्त होने पर भी (जो जीव), जिनोक्त आत्म प्रधान पदार्थों का श्रद्धान नहीं करता तो वह श्रमण नहीं है। *[गाथा 264]*

(7)असमानजातीय द्रव्यपर्याय में एकत्वबुद्धि, यह मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 94]*

प्रश्न 69- क्या मिथ्यादर्शन का स्वरूप श्रीसमयसार में भी आया है?

उत्तर - (1) द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म में एकत्वबुद्धि मिथ्यादर्शन है। *[गाथा 19]*

(2) जब तक यह आत्मा, प्रकृति के निमित्त से उपजना-विनशना नहीं छोड़ता, तब तक अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, असंयत है। *[गाथा 314]*

(3) (1) शुभाशुभभावों में और ज्ञप्तिक्रिया में, (2) देव -नारकी और ज्ञायक आत्मा में, (3) ज्ञेय और ज्ञान में एकत्वबुद्धि मिथ्यादर्शन है, एकत्व का ज्ञान मिथ्याज्ञान है और एकत्व का आचरण मिथ्याचारित्र है। *[गाथा 270]*

(4) जो बहुत प्रकार के मुनिलिङ्गों में अथवा गृहस्थी लिङ्गों में ममता करते हैं, अर्थात् यह मानते है कि द्रव्यलिङ्ग ही मोक्ष का दाता

है, उन्होंने समयसार को नहीं जाना। उसे [अ] 'अनादिरूढ़' [आ] 'व्यवहारमूढ' [इ] और 'निश्चय पर अनारूढ़' कहा है, यह सब मिथ्यात्व का प्रभाव है। *[गाथा 413]*

प्रश्न 70- छहढाला में अगृहीत मिथ्यादर्शन किसे कहा है ?

उत्तर - (1) आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शन है, इसको भूलकर शरीर को आत्मा मान लेना, शरीर आश्रित उपवास और उपदेशादि में अपनेपने की बुद्धि होना, यह अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (2) शरीर की उत्पत्ति में अपनी उत्पत्ति और शरीर के बिछुड़ने पर अपना मरण मानना, अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (3) शुभाशुभभाव प्रगट दुःख के देनेवाले हैं, उन्हें सुखकर मानना, अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (4) शुभाशुभभाव एक रूप ही हैं और बुरे ही हैं परन्तु आत्मा का अनुभव ना होने से, अशुभकर्मों के फल में द्वेष और शुभकर्मों के फल में राग करना, यह अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (5) निश्चय -सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीव को हितकारी हैं, स्वरूप स्थिरता द्वारा राग का जितना अभाव, वह वैराग्य है और सुख का कारण है परन्तु निश्चयसम्यग्दर्शनादि को कष्टदायक मानना, यह अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (6) सम्यग्ज्ञानपूर्वक इच्छाओं का अभाव ही निर्जरा है और वही आनन्दरूप है परन्तु अपनी शक्ति को भूलकर, इच्छाओं की पूर्ति में सुख मानना, अगृहीत मिथ्यादर्शन है। (7) मुक्ति में पूर्ण निराकुलतारूप सच्चा सुख है, उसके बदले भोगसम्बन्धी सुख को ही सुख मानना, यह अगृहीत मिथ्यादर्शन है।

प्रश्न 71- भावदीपिका में अगृहीत मिथ्यात्व कितने प्रकार का बताया है ?

उत्तर - आठ प्रकार का बताया है। (1) परद्रव्य में अहंबुद्धि - यह मिथ्यात्वभाव है। (2) परगुण में अहंबुद्धि - यह मिथ्यात्वभाव

है। (4) परद्रव्य में ममकारबुद्धि – यह मिथ्यात्वभाव है। (5) परगुण में ममकारबुद्धि – यह मिथ्याभाव है। (6) परपर्याय में ममकारबुद्धि – यह मिथ्यात्वभाव है। (7) दृष्टिगोचर पुद्गलपर्यायों में द्रव्यरूप बुद्धि – यह मिथ्यात्वभाव है। (8) अदृष्टिगोचर द्रव्य–गुण–पर्यायों में अभावरूपबुद्धि – यह मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न 72– परद्रव्य में अहंबुद्धिरूप मिथ्यात्व क्या है?

उत्तर – परद्रव्य जो शरीर पुद्गल पिण्ड, उसमें अहंबुद्धि 'यह मैं हूँ' यह परद्रव्य में अहंबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न 73– परगुण में अहंबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है?

उत्तर – पुद्गल के स्पर्शादिगुणों में अहंबुद्धि होना। जैसे – मैं गरम, मैं ठण्डा, मैं कोमल, मैं कठोर, मैं हल्का, मैं भारी, मैं रूखा, मैं खट्टा, मैं मीठा, मैं कडुवा, मैं चरपरा, मैं कषायला, मैं दुर्गन्धीवाला, मैं काला, मैं गोरा, मैं लाल, मैं पीला इत्यादि – यह पर गुणों में अहंबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न 74– परपर्याय में अहंबुद्धिरूप मिथ्यात्व क्या है?

उत्तर – मैं देव, मैं नारकी, मैं मनुष्य, मैं तिर्यञ्च, और इनके एकेन्द्रिय आदि अवान्तर भेद–प्रभेद में अहंबुद्धि होना – यह पर्यायों में अहंबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न 75– परद्रव्य में ममकारबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है?

उत्तर – मेरा धन, मेरा मकान, मेरे आभूषण, मेरे कपड़े, मेरा बक्सा, मेरा पलंग, मेरा बाग, मेरी घड़ी, मेरे दस हजार के नोट, मेरा पुस्तकालय, मेरा भोजन – इस प्रकार पर वस्तुओं में ममकारपना, यह परद्रव्यों में ममकारबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न 76- पर गुण में ममकारबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है ?

उत्तर - मेरे शरीर का बल ऐसा है कि अनेक पराक्रम करूँ, यह मेरा शब्द, ये मेरी चाल, यह मेरी अंगुलियाँ, यह मेरा मुँह, ये मेरा नाम, यह मेरे कान, यह मेरे दाँत इत्यादिरूप प्रवृत्ति होना - यह पर गुणों में ममकारबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न 77- पर पर्याय में ममकारबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है ?

उत्तर - मेरे पुत्र, मेरी स्त्री, मेरी माता, मेरे पिता, मेरे भाई, मेरी बहिन, मेरे नौकर, मेरी प्रजा, मेरे हाथी, मेरे घोड़े, मेरी गाय-भैंस, इस प्रकार में ममकारबुद्धि होना, यह पर पर्यायों में ममकारबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न 78- दृष्टिगोचर पुद्गलपर्यायों में द्रव्यबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है ?

उत्तर - दृष्टि में जितनी पुद्गल की पर्याय आती हैं, उनको जुदा जुदा द्रव्य मानता है। जैसे, ये घट है, यह स्वर्ण है, यह पाषाण है, ये पर्वत है, ये वृक्ष है, यह मनुष्य है, यह हार्थी है, यह घोड़ा है, यह चिड़िया है, यह स्यार है, यह सिंह है, यह सूर्य है, यह चन्द्रमा है, यह लड़का है, यह लड़की है, यह जयपुर नरेश है, यह राष्ट्रपति है, यह बहु है, इत्यादि समानजातीय और असमानजातीय द्रव्य-पर्यायों में द्रव्यबुद्धि को धारण करता है, उनका पृथक्-पृथक् सत्त्व मानता है, अर्थात् वर्तमान क्षणिकपर्यायों को ही द्रव्य मानता है। त्रैकालिक सत्तासहित गुण-पर्यायरूप द्रव्य नहीं मानता है, यह दृष्टिगोचर पुद्गलपर्यायों में द्रव्यबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न 79- अदृष्टिगोचर द्रव्य-गुण-पर्यायों में अभाव बुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव क्या है?

उत्तर - (1) जो दृष्टिगोचर नहीं, ऐसे जो दूर क्षेत्रवर्ती, (2) हो कर नाश हो गयी, (3) अनागत में होगी, (4) इन्द्रियों से अगोचर सूक्ष्म पर्याय इत्यादि जो अपनी और पर की हैं, उनको अभावरूप मानता है। इनका सत्त्व हो चुका, होयेगा, या वर्तमान में है, ऐसा नहीं मानता है इत्यादि सब मिथ्यात्वभाव है।

प्रश्न 80- यह आठ प्रकार का मिथ्यात्वभाव कैसा है और क्यों है?

उत्तर - यह अगृहीतमिथ्यात्व है। बिना सिखाये अनादि से एक-एक समय करके चला आ रहा है। सदा काल, सर्व क्षेत्र में, मिथ्यादृष्टियों के प्रर्वतता है। किसी के द्वारा कदाचित् उपदेशित नहीं; इस कारण इसे अगृहीतमिथ्यात्व कहा है।

प्रश्न 81- गृहीतमिथ्यात्व क्या है?

उत्तर - (1) देव, (2) गुरु, (3) धर्म, (4) आप्त (हितउपदेशक), (5) आगम, (6) नौ पदार्थ - इनका उल्टा श्रद्धान, गृहीतमिथ्यात्व है।

प्रश्न 82- जीव का प्रयोजन क्या है?

उत्तर - दु:ख का अभाव और सुख की प्राप्ति, यह ही एकमात्र जीव का प्रयोजन है।

प्रश्न 83- दु:ख का अभाव और सुख की प्राप्ति के लिये निमित्तकारण किसको माने तो कल्याण का अवकाश है?

उत्तर - (1) देव-गुरु-धर्म, आप्त, आगम और नौ पदार्थों का आज्ञानुसार प्रवर्तन करे, तो कल्याण का अवकाश है।

प्रश्न 84- देव किसे कहते हैं ?

उत्तर - (1) निज स्वभाव के साधन द्वारा जिन्होंने अनन्त चतुष्टय प्राप्त किया है; 18 दोष जिसमें नहीं हैं और जिनके वचन से धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति होती है, जिससे अनेक पात्र जीवों का कल्याण होता है; श्री गणधर, इन्द्रादिक उत्तम जीव जिनका अपने हित के अर्थ सेवन करते हैं, वे अरहन्त और सिद्धदेव है। ऐसे देव की आज्ञानुसार प्रवर्तन करने से धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होती है; अतः इन्हीं देव को मानना चाहिए। आयुध अम्बरादि व अङ्ग विकारादि जो काम-क्रोधादि निद्यभावों के चिह्न हैं, ऐसे लक्षणों से युक्त कुदेवों को नहीं मानना चाहिए।

प्रश्न 85- गुरु किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो विरागी होकर समस्त परिग्रह को छोड़कर, शुद्धोपयोगरूप परिणमित हुए हैं, ऐसे आचार्य-उपाध्याय और सर्व साधु, गुरु हैं; बाकी सब गुरु नहीं हैं। इसलिए ऐसे गुरु को ही मानना चाहिए; अन्य को नहीं।

प्रश्न 86- धर्म किसे कहते है ?

उत्तर - (1) निश्चयधर्म तो वस्तु स्वभाव है।

(2) राग-द्वेष रहित अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव में स्थिर होना, वह निश्चयधर्म है, अर्थात् चारों गतियों के अभावरूप अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त करावे, वह धर्म है।

(3) पूर्ण धर्म ना होने पर मोक्षमार्ग, अर्थात् संवर-निर्जरारूप धर्म होता है। उसमें निश्चय-व्यवहार का जैसा स्वरूप है, वैसा समझना चाहिए। इससे विरुद्ध जो शरीर की क्रिया से व विकार से धर्म बताये, उससे बचना चाहिए।

प्रश्न 87– आप्त किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीव का परम हित, मोक्ष है; उसके उपदेष्टा, वह आप्त हैं। आप्त दो प्रकार का है – (1) मूलआप्त अरहन्तदेव हैं और (2) उत्तर आप्त, गणधरादिक मुनि हैं। श्रावक और सम्यग्दृष्टि भी उत्तर आप्त में आते हैं क्योंकि वे भी आप्त के अनुसार वीतराग, सर्वज्ञ और हित का उपदेश देते हैं। इसलिए पात्र जीवों को ज्ञानियों का सत्संग करना चाहिए; अज्ञानियों का नहीं। [भावदीपिका]

प्रश्न 88– आगम किसे कहते हैं ?

उत्तर – आप्त का वचन आगम है, अर्थात् दिव्यध्वनि, जिनवाणी है। जो परम्परा या साक्षात् एकमात्र वीतरागभाव का पोषण करे, वह आगम है; क्योंकि आगम का तात्पर्य दुःख का अभाव, सुख की प्राप्ति है। अब कलिकाल के दोष से कषायी पुरुषों द्वारा शास्त्रों में अन्यथा अर्थ का मेल हो गया है; इसलिए जैनन्याय के शास्त्रों की ऐसी आज्ञा है कि

(1) आगम का सेवन,

(2) युक्ति का अवलम्बन,

(3) पर और अपर गुरु का उपदेश, और

(4) स्वानुभव; इन चार विशेषों का आश्रय करके अर्थ की सिद्धि करके ग्रहण करना, क्योंकि अन्यथा अर्थ के ग्रहण से जीव का बुरा होता है।

प्रश्न 89– पदार्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर – पद का जो अर्थ, अर्थात् प्रयोजन, उसको पदार्थ कहते हैं। नौ प्रकार के पदार्थों का स्वरूप जैसा जिनागम में है, वैसे ही स्वरूपसहित ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि यह प्रयोजनभूत

पदार्थ है। जैसा स्वरूप कहा है, उस ही स्वरूपसहित ग्रहण करना मोक्ष का कारण है। अन्यथा स्वरूप का ग्रहण करने से संसार परिभ्रमण होता है।

प्रश्न 90- देव, गुरु, धर्म, आप्त, आगम और पदार्थों को मोक्ष के कारण (निमित्त) क्यों बताये हैं ?

उत्तर - इन छह निमित्तों में से एक की भी हानि हो जावे तो मोक्षमार्ग की हानि हो जाती है क्योंकि :- (1) देव न होय तो धर्म किसके आश्रय प्रवर्ते ?

(2) गुरु न होय तो धर्म का ग्रहण कौन करावे ?

(3) धर्म का ग्रहण न करे तो मोक्ष की सिद्धि किसके द्वारा की जाय ?

(4) आप्त का ग्रहण न होय तो सत्यधर्म का उपदेश कौन दे ?

(5) आगम का ग्रहण न होय तो मोक्षमार्ग में अवलम्बन किसका करे ?

(6) पदार्थों का ज्ञान न कीजिए तो [अ]आप का और पर का, [आ] अपने भावों का और पर भावों का, [इ] हेयभावों का और उपादेयभावों का, [ई] अहित का और अपने परमहित का कैसे भान होवे। इसलिए इन छह निमित्तों को मोक्षमार्ग में बताया है।

प्रश्न 91- इन छह निमित्तों को गृहीतमिथ्यात्व क्यों कहा है ?

उत्तर - इन छह निमित्तों को गृहीतमिथ्यात्व नहीं कहा है परन्तु उनके उल्टे श्रद्धान को गृहीतमिथ्यात्व कहा है। उल्टे निमित्तों के मानने से, जीव का बहुत बुरा होता है।

प्रश्न 92- जिन उल्टे निमित्तों के मानने से जीव का बहुत बुरा होता है, वे निमित्त क्या-क्या हैं ?

उत्तर – सर्व प्रकार से धर्म को जानता हुआ मिथ्यादृष्टि जीव किसी धर्म के अंग को मुख्य करके, अन्य धर्मों को गौण करता है। जैसे, (1) कई जीव, दया–धर्म को मुख्य करके, पूजा–प्रभावनादि कार्य का उत्थापन करते हैं।

(2) कितने ही पूजा–प्रभावनादि धर्म को मुख्य करके, हिंसादिक का भय नहीं रखते।

(3) कितने ही तप की मुख्यता से, आर्तध्यानादिक करके भी उपवासादि करते हैं तथा अपने को तपस्वी मानकर निःशंक क्रोधादि करते हैं।

(4) कितने ही दान की मुख्यता से, बहुत पाप करके भी धन उपार्जन करके दान देते हैं।

(5) कितने ही आरम्भ त्याग की मुख्यता से, याचना आदि करते हैं; इत्यादि प्रकार से किसी धर्म को मुख्य करके, अन्य धर्म को नहीं गिनते तथा उसके आश्रय से पाप का आचरण करते हैं। [मोक्षमार्ग –प्रकाशक]

प्रश्न 93– क्या उनका यह कार्य ठीक नहीं है और ठीक क्या है ?

उत्तर – उनका यह कार्य ऐसा हुआ जैसे – अविवेकी व्यापारी को किसी व्यापार में नफे के अर्थ, अन्य प्रकार से बहुत टोटा पड़ता है। चाहिए तो ऐसा कि – जैसे व्यापारी का प्रयोजन नफा है, सर्व विचार कर जैसे नफा बहुत हो, वैसा करें; उसी प्रकार ज्ञानी का प्रयोजन वीतरागभाव है, सर्व विचार कर जैसे वीतरागभाव बहुत हो वैसा करें; क्योंकि मूलधर्म वीतरागभाव है। [मोक्षमार्गप्रकाशक]

प्रश्न 94– सम्यग्दर्शन के बिना कितने ही जीव, जिनवर कथित अणुव्रत, महाव्रतादि का पालन करतें हैं, क्या वे जीव भी उल्टे निमित्तों में आते हैं ?

उत्तर - हाँ भाई, वे भी उल्टे निमित्तों में ही आते हैं क्योंकि कुन्दकुन्द भगवान ने प्रवचनसार में उन्हें संसारतत्त्व कहा है।

प्रश्न 95- सम्यग्दर्शन के बिना, महाव्रतादिरूप आचरण से क्या साधते हैं ?

उत्तर - कितने ही जीव, अणुव्रत-महाव्रतादिरूप यथार्थ आचरण करते हैं और आचरण के अनुसार ही परिणाम है; कोई माया -लोभादिक का अभिप्राय नहीं; अणुव्रत महाव्रतादि को धर्म जानकर मोक्ष के अर्थ उनका साधन करते हैं, किन्हीं स्वर्गादिक के भोगों की भी इच्छा नहीं रखते, परन्तु तत्त्वज्ञान पहले नहीं हुआ है; इसलिए आप तो जानते हैं कि मैं मोक्ष का साधन कर रहा हूँ, परन्तु जो मोक्ष का साधन है, उसे जानते भी नहीं; केवल स्वर्गादिक ही का साधन करते हैं। (मोक्षमार्गप्रकाशक)

प्रश्न 96- कुन्दकुन्दादि आचार्यों का क्या आदेश है ?

उत्तर - प्रथम तत्त्वज्ञान हो और पश्चात् चारित्र हो तो सम्यक् चारित्र नाम पाता है। जैसे-कोई किसान, बीज बोये नहीं और अन्य साधन करे तो अन्न प्राप्ति कैसे हो ? घास-फूस ही होगा; उसी प्रकार अज्ञानी तत्त्वज्ञान का तो अभ्यास करें नहीं और अन्य साधन करें, तो मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो ? देवपद आदि ही होंगे। इसलिए पात्र जीवों को प्रथम जिनवरकथित तत्त्व का यथार्थ अभ्यास करके, सम्यग्दर्शनादिक की प्राप्ति करने का आचार्यों का आदेश है।

प्रश्न 97- कोई जीव, छह द्रव्य, सात तत्त्वों के नाम लक्षणादि भी नहीं जानते और व्रतादि में प्रवर्तते हैं, क्या वे आत्महित साध सकते हैं ?

उत्तर - वे जीव, आत्महित नहीं साध सकते हैं। शास्त्रों में आया है कि कितने ही जीव तो ऐसे हैं जो तत्त्वादिक के भली भाँति

नाम भी नहीं जानते, केवल व्रतादिक में ही प्रवर्तते हैं। कितने ही जीव ऐसे हैं जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान का अयथार्थ साधन करके, व्रतादि में प्रवर्तते हैं। यद्यपि वे व्रतादि का यथार्थ आचरण करते हैं तथापि यथार्थ श्रद्धान-ज्ञान बिना सर्व आचरण मिथ्याचारित्र ही है।

प्रश्न 98- सम्यग्दर्शन के बिना, व्रतादि में प्रवर्तते हैं, वह मोक्ष का साधन नहीं है, ऐसा कहीं श्रीसमयसार में कहा है?

उत्तर - श्रीसमयसार, कलश 142 में पण्डित राजमलजी ने लिखा है कि 'विशुद्ध शुभोपयोगरूप परिणाम, जैनोक्तसूत्र का अध्ययन, जीवादि द्रव्यों के स्वरूप का बारम्बार स्मरण, पञ्च परमेष्ठि की भक्ति इत्यादि हैं जो अनेक क्रियाभेद, उनके द्वारा घटाटोप करते हैं तो करो, तथापि शुद्धस्वरूप की प्राप्ति होगी सो तो शुद्धज्ञान (ज्ञायकस्वभाव) द्वारा होगी। ...तथा महाव्रतादि की परम्परा-आगे मोक्ष का कारण होगी, ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है, सो झूठा है। महा परीषहों का सहना, उनका बहुत बोझ उसके द्वारा बहुत कालपर्यन्त मरके चूरा होते हुए बहुत कष्ट करते हैं तो करो, तथापि ऐसा करते हुए कर्मक्षय तो नहीं।'

प्रश्न 99- पञ्चास्तिकाय, गाथा 172 में क्या बताया है?

उत्तर - तेरह प्रकार का चारित्र होने पर भी उसका मोक्षमार्ग में निषेध किया है।

प्रश्न 100- प्रवचनसार में क्या बताया है?

उत्तर - आत्मा के अनुभव बिना, संयमभाव को अनर्थकारी कहा है। क्योंकि तत्त्वज्ञान होने पर ही आचरण कार्यकारी कहा जाता है।

प्रश्न 101- सम्यग्दर्शन के बिना, अणुव्रत-महाव्रतादि साधन को क्या बताया है?

उत्तर - अन्तरङ्ग परिणाम नहीं है और स्वर्गादिक की वांछा से

साधते हैं, सो इस प्रकार साधने से तो पाप बन्ध होता है। (मोक्षमार्ग -प्रकाशक)

प्रश्न 102- आपने छह निमित्तों की अन्यथारूप प्रवृत्ति को गृहीतमिथ्यात्व कहा है परन्तु शास्त्रों में तो (1) एकान्त, (2) विनय, (3) संयम, (4) विपरीत, और (5) अज्ञान को गृहीतमिथ्यात्व कहा है, ऐसा क्यों ?

उत्तर - गृहीतमिथ्यात्वभाव इन छह निमित्तों के अन्यथा ग्रहण में पाँच प्रकार प्रवर्तता है। अत: गृहीतमिथ्यात्व में प्रवृत्ति के मूलभेद पाँच प्रकार किये हैं; उत्तरभेद असंख्यात लोकप्रमाण हैं।

प्रश्न 103- स्व क्या है और पर क्या है ?

उत्तर - (1) अमूर्तिक प्रदेशों का पुँज; प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारी; अनादिनिधन; वस्तु स्व है।

(2) मूर्तिक पुद्‌गलद्रव्यों का पिण्ड; प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों से रहित; नवीन जिसका संयोग हुआ है, ऐसे शरीरादिक पुद्‌गल पर हैं। जैसा स्व का स्वरूप है, वैसा माने तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है। परन्तु अज्ञानी अनादि से पर को स्व मानता है और स्व को पर मानता है; इसलिए चारों गतियों में घूमता है। अब पात्र जीव को स्व को स्व, और पर को पर जानकर, मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बनना चाहिए।

प्रश्न 104- आपने इतने विस्तार से गृहीतमिथ्यात्व और अगृहीतमिथ्यात्व का स्वरूप क्यों समझाया है ?

उत्तर - ऊपर कहे गये अनुसार मिथ्यात्व का स्वरूप जानकर, सब जीवों को गृहीत तथा अगृहीतमिथ्यात्व छोड़ना चाहिए, क्योंकि सब प्रकार के बन्ध का मूलकारण मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व को नष्ट किये बिना, अविरति, प्रमाद, कषाय आदि कभी दूर नहीं होते; इसलिए सबसे पहले मिथ्यात्व को दूर करना चाहिए।

प्रश्न 105– मिथ्यात्व को सबसे पहले क्यों दूर करना चाहिए ?

उत्तर – मिथ्यात्व, सात व्यसनों से भी बढ़कर भयंकर महापाप है; इसलिए जैनधर्म सर्व प्रथम मिथ्यात्व को छोड़ने का उपदेश देता है।

प्रश्न 106– आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने मिथ्यात्व के विषय में क्या कहा है ?

उत्तर – हे भव्यों! किञ्चित्मात्र लोभ से व भय से, कुदेवादिक का सेवन करके, जिससे अनन्त काल पर्यन्त महादुःख सहना होता है, ऐसा मिथ्यात्वभाव करना योग्य नहीं है। जिनधर्म में तो यह आम्नाय है कि पहले बड़ा पाप छुड़ाकर, फिर छोटा पाप छुड़ाया है; इसलिए इस मिथ्यात्व को सप्त व्यसनादिक से भी बड़ा पाप जानकर, पहले छुड़ाया है। इसलिए जो पाप के फल से डरते हैं, अपने आत्मा को दुःख समुद्र में डुबाना नहीं चाहते, वे जीव इस मिथ्यात्व को अवश्य छोड़ो। (मोक्षमार्गप्रकाशक)

प्रश्न 107– जो जीव, मिथ्यात्व के प्रकारों को जानकर दूसरे का दोष देखते हैं; अपना नहीं देखते, उनके लिए आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने क्या कहा है ?

उत्तर – मिथ्यात्व के प्रकारों को पहिचानकर, अपने में ऐसा दोष हो, तो उसे दूर करके सम्यक् श्रद्धानी होना, औरों के ही ऐसे दोष देख-देखकर कषायी नहीं होना, क्योंकि अपना भला तो अपने परिणामों से है। औरों को रुचिवान देखें, तो कुछ उपदेश देकर उनका भी भला करें। इसलिये अपने परिणाम सुधारने का उपाय करना योग्य है; सब प्रकार के मिथ्यात्व छोड़कर, सम्यग्दृष्टि होना योग्य है क्योंकि संसार का मूल, मिथ्यात्व है और मोक्ष का मूल, सम्यक्त्व है और मिथ्यात्व के समान अन्य पाप नहीं है; इसलिए

जिस-तिस उपाय से सर्व प्रकार से मिथ्यात्व का नाश करना योग्य है। (मोक्षमार्गप्रकाशक)

प्रश्न 108- मोक्ष के प्रयत्न में कितनी बातें एक साथ होती हैं, और कौन-कौन सी होती हैं ?

उत्तर - मोक्ष के प्रयत्न में पाँच बातें एक साथ होती हैं - (1) ज्ञायक स्वभाव, (2) पुरुषार्थ, (3) काललब्धि, (4) भवितव्य, और (5) कर्म के उपशमादि। यह पाँच बातें एक साथ होती हैं।

प्रश्न 109- स्वभाव आदि पाँच बातें, कारण हैं या कार्य हैं ?

उत्तर - कारण हैं; कार्य नहीं हैं।

प्रश्न 110- स्वभाव क्या है ?

उत्तर - अनन्त गुणों का अभेद पिण्ड ज्ञायक भगवान आत्मा, अपना स्वभाव है।

प्रश्न 111- पुरुषार्थ क्या है ?

उत्तर - अपने ज्ञानगुण की पर्याय जो पर सन्मुख है, उसे अपने स्वभाव के सन्मुख करना, यह पुरुषार्थ है। यह क्षणिकउपादान कारण है।

प्रश्न 112- काललब्धि क्या है ?

उत्तर - (1) वह कोई वस्तु नहीं, किन्तु जिस काल में कार्य बने, वही काललब्धि है।

(2) यहाँ कालादि लब्धि में काललब्धि का अर्थ, स्वकाल की प्राप्ति होता है।

(3) भगवान श्री जयसेनाचार्य ने श्रीसमयसार, गाथा 71 में काललब्धि को धर्म पाने के समय 'श्री धर्मकाललब्धि' के नाम से सम्बोधन किया है।

प्रश्न 113– भवितव्य क्या है ?

उत्तर – (1) भवितव्य अथवा नियति, उस समय पर्याय की योग्यता है, यह भी क्षणिकउपादानकारण है।

(2) जो कार्य होना था, सो हुआ इसको भवितव्य कहते हैं।

प्रश्न 114– कर्म के उपशमादि क्या हैं ?

उत्तर – पुद्‌गलद्रव्य की अवस्था है।

प्रश्न 115– कर्म के उपशमादि का कर्ता कौन है और कौन नहीं है ?

उत्तर – कर्म के उपशमादिक तो पुद्‌गल की पर्यायें हैं। उनका कर्ता, कार्माणवर्गणा है; जीव और अन्य वर्गणाएँ इनका कर्ता नहीं है।

प्रश्न 116– कर्म के उपशमादिक का और आत्मा का कैसा सम्बन्ध है ?

उत्तर – जब आत्मा, यथार्थ पुरुषार्थ करता है, तब कर्म के उपशमादिक स्वयं स्वत: हो जाते हैं। इनका स्वतन्त्ररूप से निमित्त –नैमित्तिकसम्बन्ध है। जो स्वतन्त्रता का सूचक है; परतन्त्रता का सूचक नहीं है।

प्रश्न 117– इन पाँच कारणों में से किसके द्वारा मोक्ष का उपाय बनता है ?

उत्तर – जब जीव अपने ज्ञायकस्वभाव के सन्मुख होकर यथार्थ पुरुषार्थ करता है, तब काललब्धि, भवितव्य और कर्म के उपशमादिक स्वयमेव हो जाते हैं।

प्रश्न 118– समवाय किसे कहते हैं ?

उत्तर – मिलाप, समूह को समवाय कहते हैं।

प्रश्न 119– मोक्ष में किसकी मुख्यता है ?

उत्तर - पुरुषार्थ की मुख्यता है।

प्रश्न 120- जीव का कर्तव्य क्या है ?

उत्तर - जीव का कर्तव्य तो तत्त्वनिर्णय का अभ्यास (अपने स्वभाव का आश्रय) ही है। वह करे तब दर्शनमोह का उपशम स्वयमेव होता है, किन्तु द्रव्यकर्म में जीव का कुछ भी कर्तव्य नहीं है।

प्रश्न 121- मोक्ष के उपाय के लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर - जिनेश्वरदेव के उपदेशानुसार पुरुषार्थपूर्वक उपाय करना चाहिए। इसमें निमित्त और उपादान, दोनों आ जाते हैं।

प्रश्न 122- जिनेश्वरदेव ने मोक्ष के लिए क्या उपाय बताया है ?

उत्तर - जो जीव, पुरुषार्थपूर्वक मोक्ष का उपाय करता है, उसे तो सर्व कारण मिलते हैं, और अवश्य मोक्ष की प्राप्ति होती है। काललब्धि, भवितव्य, कर्म के उपशमादिक कारण मिलाना नहीं पड़ते, किन्तु जो जीव पुरुषार्थपूर्वक मोक्ष का उपाय करता है, उसे तो सब कारण मिल जाते हैं और जो उपाय नहीं करता, उसे कोई कारण नहीं मिलते और न उसे धर्म की प्राप्ति होती है - ऐसा निश्चय करना। (मोक्षमार्गप्रकाशक)

प्रश्न 123- क्या जीव को काललब्धि, भवितव्य और कर्म के उपशमादिक जुटाने नहीं पड़ते हैं ?

उत्तर - जुटाने नहीं पड़ते हैं। वास्तव में जब जीव, स्वभाव सन्मुख यथार्थ पुरुषार्थ करता है, तब वे कारण स्वयं होते हैं।

प्रश्न 124- रागादिक कैसे दूर हो ?

उत्तर - जैसे - पुत्र का अर्थी विवाहादि का तो उद्यम करे और भवितव्य स्वयमेव हो, तब पुत्र होगा; उसी प्रकार विभाव दूर करने

का कारण बुद्धिपूर्वक तो तत्त्वविचारादि (रुचि और लीनता) है और अबुद्धिपूर्वक मोहकर्म के उपशमादिक हैं। सो तत्त्व का अर्थी (सच्चा सुख पाने का अर्थी) तत्त्व विचारादिक का तो उद्यम करे और मोहकर्म के उपशमादिक स्वयमेव हों, तब रागादिक दूर होते हैं।

प्रश्न 125- श्रीसमयसार-नाटक में 'शिवमार्ग' किसे कहा है?

उत्तर - स्वभाव आदि पाँचों को सर्वांगी मानना, उसे शिवमार्ग कहा है। और किसी एक को ही मानना, यह पक्षपात होने से मिथ्या-मार्ग कहा है।

प्रश्न 126- कोई कहे काललब्धि पकेगी, तभी धर्म होगा, क्या यह मान्यता बराबर है?

उत्तर - यह मान्यता खोटी है, क्योंकि ऐसी मान्यतावाले ने पाँचों समवायों को एक साथ नहीं माना, मात्र एक काललब्धि को ही माना; इसलिए एकान्तकालवादी गृहीतमिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न 127- जगत में सब भवितव्य के आधीन हैं, जब धर्म होना होगा तब होगा, क्या यह मान्यता बराबर है?

उत्तर - बिल्कुल नहीं, क्योंकि इस मान्यतावाले ने पाँचों समवायों को एक साथ नहीं माना है, मात्र एक भवितव्य को ही माना; इसलिए वह एकान्तनियतिवादी गृहीतमिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न 128- कोई मात्र द्रव्यकर्म को ही माने तो क्या ठीक है?

उत्तर - यह भी मिथ्या है, क्योंकि इस मान्यतावाले ने पाँचों समवायों को एक साथ नहीं माना, मात्र एक द्रव्यकर्म के उपशमादिक को ही माना; इसलिए वह एकान्तकर्मवादी गृहीतमिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न 129- कोई मात्र स्वभाव को ही माने, क्या ठीक है?

उत्तर -बिल्कुल नहीं, क्योंकि इस मान्यतावाले ने पाँचों समवायों

को एक साथ नहीं माना, मात्र स्वभाव को ही माना; इसलिए यह स्वभाववादी गृहीतमिथ्यादृष्टि है और वेदान्त की मान्यतावाला है।

प्रश्न 130- कोई मात्र पुरुषार्थ ही चिल्लाये और बाकी स्वभाव आदि को न माने तो क्या ठीक है?

उत्तर – बिल्कुल गलत है, इस मान्यतावाले ने भी पाँचों समवायों को एक साथ नहीं माना, मात्र पुरुषार्थ को ही माना; इसलिए यह बौद्ध-मतावलम्बी गृहीतमिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न 131- पाँचों समवायों में द्रव्य-गुण-पर्याय, कौन -कौन हैं?

उत्तर – सामान्य ज्ञायकस्वभाव, वह द्रव्य है; शेष चार पर्यायें हैं।

प्रश्न 132- कोई तत्त्वनिर्णय ना होने में कर्म का ही दोष माने, तो क्या ठीक है?

उत्तर – तत्त्वनिर्णय न करने में कर्म का कोई दोष नहीं है, किन्तु जीव का ही दोष है। जो जीव, कर्म का दोष निकालता है, वह अपना दोष होने पर भी कर्म पर दोष डालता है, यह अनीति है। जो सर्वज्ञ भगवान की आज्ञा माने उसके ऐसी अनीति नहीं हो सकती है। जिसे धर्म नहीं करना है, विषय कषाय ही करते रहना है, वह ऐसा झूठ बोलता है। जिसे मोक्षसुख की सच्ची अभिलाषा हो, वह ऐसी झूठी युक्ति नहीं बनायेगा। (मोक्षमार्गप्रकाशक)

प्रश्न 133- सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, नियम से मोक्ष के लिए क्या करें?

उत्तर – (1) जीव का कर्तव्य तो तत्त्वज्ञान का अभ्यास ही है और उस ही से स्वमेव दर्शनमोह का उपशम होता है। दर्शनमोह के उपशमादिक में जीव का कर्तव्य कुछ भी नहीं है।

(2) तत्पश्चात् ज्यों-ज्यों जीव, स्वसन्मुखता द्वारा वीतरागता में वृद्धि करता है, त्यों-त्यों श्रावकदशा, मुनिदशा प्रगट होती है।

(3) उस दशा में भी जीव अपने ज्ञायकस्वभाव में पूर्ण रमणता द्वारा सर्वथा शुद्ध होने पर, केवलज्ञान, केवलदर्शन और मोक्षदशारूप सिद्धपद प्राप्त करता है।

प्रश्न 134- स्वभाव, पुरुषार्थ आदि पाँचों समवाय, किसमें लगते हैं?

उत्तर - संसार में जितने भी कार्य हैं, उन सब में ये पाँचों समवाय एक साथ लगते हैं, लेकिन यहाँ पर मोक्ष की बात है।

प्रश्न 135- संसार में जो कार्य हम करते हैं, क्या वह सब पुरुषार्थ से करते हैं?

उत्तर - बिल्कुल नहीं, क्योंकि - (1) धनादिक की प्राप्ति में आत्मा का वर्तमान पुरुषार्थ किञ्चित्मात्र भी कार्यकारी नहीं है।

(2) लौकिकज्ञान की प्राप्ति में भी वर्तमान पुरुषार्थ किञ्चित् -मात्र कार्यकारी नहीं है।

प्रश्न 136- पैसा कमाने का भाव करें, तभी पैसों की प्राप्ति होती है ना?

उत्तर - अरे भाई बिल्कुल नहीं, क्योंकि पैसा कमाने का भाव, पापभाव है। पाप करे और पैसा मिले, ऐसा कभी भी नहीं हो सकता है।

प्रश्न 137- आज कल जमाने में झूठ ना बोले, चोरी न करे तो भूखे मर जावे?

उत्तर - बिल्कुल नहीं! क्योंकि झूठ और चोरी कारण हो और पैसा मिले, यह कार्य, ऐसा कभी नही हो सकता है।

प्रश्न 138- झूठ बोलकर, चोरी करने से पैसा आता हुआ तो दिखता है ?

उत्तर - पहले जन्म में कोई शुभभाव या अशुभभाव किया तो उसके निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध की अपेक्षा साता-असाता का संयोग देखने में आता है। उसमें (रुपया-पैसा कमाने में) जीव का पुरुषार्थ किञ्चित्मात्र भी कार्यकारी नहीं है।

प्रश्न 139- क्या लौकिकज्ञान की प्राप्ति में भी वर्तमान पुरुषार्थ किञ्चित्मात्र कार्यकारी नहीं है ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं है क्योंकि विचारों, मेंढक चीरा तो ज्ञान बढ़ा, क्या वह ठीक है ? आप कहेंगे - ऐसा ही देखते हैं। तो भाई एक मेंढक चीरने से ज्ञान बढ़ता हो, तो सौ मेंढक चीरने से ज्यादा ज्ञान बढ़ना चाहिए, सो ऐसा होता नहीं है।

प्रश्न 140- किसी के कम ज्ञान, किसी को ज्यादा ज्ञान, ऐसा क्यों देखनें में आता है ?

उत्तर - पूर्व भव में ज्ञान के विकास सम्बन्धी मन्द / तीव्र कषाय किया तो ज्ञानावरणीय का मन्द / तीव्र रस होने से ज्ञान का उघाड़ देखने में आता है।

प्रश्न 141- अज्ञानियों को प्रयत्न करने पर भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति क्यों नहीं होती है ?

उत्तर - अज्ञानी का उल्टा प्रयत्न होने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है क्योंकि सम्यग्दर्शन, आत्मा के आश्रय से श्रद्धागुण में से आता है। अज्ञानी ढूँढता है दर्शनमोहनीय के उपशमादि में और देव-गुरु शास्त्र में।

प्रश्न 142- अज्ञानियों को सुख की प्राप्ति क्यों नहीं होती है ?

उत्तर - आत्मा के आश्रय से सुखगुण में से सुखदशा प्रगट होती

है; अज्ञानी पाँचों इन्द्रियों के विषयों में से सुख मानता है। इसलिए सुख की प्राप्ति नहीं होती है।

प्रश्न 143- अज्ञानियों को सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं होती है?

उत्तर - आत्मा के आश्रय से ज्ञानगुण में से सम्यग्ज्ञान आता है और अज्ञानी, देव-शास्त्र-गुरु के आश्रय से, ज्ञेयों के आश्रय से, ज्ञानावरणीय के क्षयोपशमादि से मानता है; इसलिए सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती है।

प्रश्न 144- अज्ञानी को सम्यक्चारित्र की प्राप्ति क्यों नहीं होती है?

उत्तर - आत्मा के आश्रय से चारित्रगुण में से सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होती है। अज्ञानी, अणुव्रतादि, महाव्रतादि के आश्रय से तथा बाहरी क्रियाओं से मानता है; इसलिए सम्यक्चारित्र की प्राप्ति नहीं होती है।

प्रश्न 145- जिनके जानने से मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति हो, वे अवश्य जाननेयोग्य-प्रयोजनभूत क्या-क्या हैं?

उत्तर - (1) हेय-उपादेय तत्त्वों की परीक्षा करना।

(2) जीवादि द्रव्य, सात तत्त्व, स्व-पर को पहिचानना तथा देव-गुरु-धर्म को पहिचानना।

(3) त्यागनेयोग्य मिथ्यात्व-रागादिक, तथा ग्रहण करनेयोग्य सम्यग्दर्शन-ज्ञानादिक का स्वरूप पहिचानना।

(4) निमित्त-नैमित्तिक, निश्चय-व्यवहार, उपादान-उपादेय, छह कारक, चार अभाव, छह सामान्यगुण आदि को जैसे हैं, वैसे ही जानना; इत्यादि जिनके जानने से मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति हो, उन्हें अवश्य जानना चाहिए, क्योंकि ये सब मोक्षमार्ग में प्रयोजनभूत हैं।

प्रश्न 146- प्रयोजनभूत तत्त्वों को यथार्थ जानने-मानने से क्या लाभ होता है ?

उत्तर - यदि उन्हें यथार्थरूप से जाने-श्रद्धान करे तो सम्यग्दर्शन प्रगट होकर, क्रम से मोक्षदशा की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न 147- जीव को धर्म समझने का क्रम क्या है ?

उत्तर - (1) प्रथम तो परीक्षा द्वारा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की मान्यता छोड़कर, अरहन्त देवादि का श्रद्धान करना चाहिए, क्योंकि उनका श्रद्धान करने से गृहीतमिथ्यात्व का अभाव होता है।

(2) फिर जिनमत में कहे हुए जीवादि तत्त्वों का विचार करना चाहिए; उनके नाम लक्षणादि सीखना चाहिए, क्योंकि उस अभ्यास से तत्त्वश्रद्धान की प्राप्ति होती है।

(3) फिर जिनसे स्व-पर का भिन्नत्व भासित हो, वैसे विचार करते रहना चाहिए, क्योंकि उस अभ्यास से भेदज्ञान होता है।

(4) तत्पश्चात् एक स्व में स्व-पना मानने के हेतु, स्वरूप का विचार करने रहना चाहिए, क्योंकि उस अभ्यास से आत्मानुभव की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार अनुक्रम से उन्हें अङ्गीकार करके फिर उसी में से, किसी समय देवादि के विचार में, कभी तत्त्वविचार में, कभी स्व-पर के विचार में, तथा कभी आत्मविचार में उपयोग को लगाना चाहिये। यदि पात्रजीव पुरुषार्थ चालू रक्खे तो इसी अनुक्रम से उसे सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति हो जाती है। [मोक्षमार्गप्रकाशक]

प्रश्न 148- जिनदेव के सर्व उपदेश का क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - मोक्ष को हितरूप जानकर, एक मोक्ष का उपाय करना ही सर्व उपदेश का तात्पर्य है।

प्रश्न 149– चारित्र का लक्षण (स्वरूप) क्या है ?

उत्तर – (1) मोह और क्षोभरहित आत्मा का परिणाम, वह चारित्र है।

(2) स्वरूप में चरना, वह चारित्र है।

(3) अपने स्वभाव में प्रवर्तन करना, शुद्धचैतन्य का प्रकाशित होना, वह चारित्र है।

(4) वही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। जो धर्म है, वह चारित्र है।

(5) यही यथास्थित आत्मा का गुण होने से (अर्थात्, विषमता रहित सुस्थित आत्मा का गुण होने से) साम्य है।

(6) मोह-क्षोभ के अभाव के कारण, अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीव का परिणाम है। *[श्रीप्रवचनसार, गाथा 7 तथा टीका से]*

प्रश्न 150– व्यवहारसम्यक्त्व किस गुण की पर्याय है ?

उत्तर – सच्चे देव-गुरु-शास्त्र, छह द्रव्य और सात तत्त्वों की श्रद्धा का राग होने से, यह चारित्रगुण की अशुद्धपर्याय है, किन्तु व्यवहारसम्यक्त्व, श्रद्धागुण की पर्याय नहीं है।

प्रश्न 151– जिसको सच्चे देव-गुरु-धर्म का निमित्त बने, वह अपना कल्याण ना करे, उसके विषय में भगवान की क्या आज्ञा है ?

उत्तर – (1) जैसे – किसी महान दरिद्री को अवलोकनमात्र चिन्तामणि की प्राप्ति हो और वह अवलोकन न करे, तथा जैसे – किसी कोढ़ी को अमृतपान करायें और वह न करे; उसी प्रकार संसारपीड़ित जीव को सुगम मोक्षमार्ग के उपदेश का निमित्त बनने पर भी, वह अभ्यास ना करे, तो उसके अभाग्य की महिमा हमसे तो नहीं हो सकती।

(2) वर्तमान में सतगुरु का योग मिलने पर भी, तत्त्वनिर्णय करने का पुरुषार्थ ना करे, प्रमाद से काल गँवाये, या मन्दरागादिसहित विषयकषायों में ही प्रवर्ते या व्यवहार धर्मकार्यों में प्रवर्ते तो अवसर चला जायेगा और संसार में ही भ्रमण रहेगा।

(3) यह अवसर चूकना योग्य नहीं, अब सर्व प्रकार से अवसर आया है, ऐसा अवसर पाना कठिन है। इसलिए वर्तमान में श्रीसत्गुरु दयालु होकर, मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं; भव्यजीवों को उसमें प्रवृत्ति करनी चाहिए। [मोक्षमार्गप्रकाशक]

प्रश्न 152- सम्यग्दर्शन का लक्षण प. टोडरमलजी ने क्या कहा है और सम्यग्दर्शन क्या है ?

उत्तर - विपरीताभिनिवेशरहित जीवादिक तत्त्वार्थ श्रद्धान, वह सम्यग्दर्शन का लक्षण है और सम्यग्दर्शन, आत्मा के श्रद्धागुण की स्वभाव अर्थपर्याय है।

प्रश्न 153- सम्यग्दर्शन सविकल्प है या निर्विकल्प है ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन निर्विकल्प शुद्धभावरूप परिणमन है और किसी भी प्रकार से सम्यग्दर्शन, सविकल्प नहीं है। यह चौथे गुणस्थान से सिद्धदशा तक एकरूप है।

प्रश्न 154- चौथे गुणस्थान से सिद्धदशा तक सम्यग्दर्शन एक समान है, इस विषय में पण्डित टोडरमलजी ने क्या कहा है ?

उत्तर - ज्ञानदिक की हीनता-अधिकता होने पर भी तिर्यञ्चादिक व केवली सिद्धभगवान के सम्यक्त्वगुण समान ही कहा है। तथा चिट्ठी में लिखा है कि 'चौथे गुणस्थान में सिद्धसमान क्षायिकसम्यक्त्व हो जाता है; इसलिए सम्यक्त्व तो यथार्थ श्रद्धानरूप ही है'। 'निश्चयसम्यक्त्व, प्रत्यक्ष है और व्यवहारसम्यक्त्व परोक्ष है' - ऐसा नहीं है; इसलिए सम्यक्त्व के प्रत्यक्ष-परोक्ष भेद नहीं मानना।

प्रश्न 155– क्या निश्चय और व्यवहार – ऐसे दो प्रकार के सम्यग्र्शन हैं ?

उत्तर – बिल्कुल नहीं; सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार का है, दो प्रकार का नहीं है किन्तु उसका कथन दो प्रकार से है।

प्रश्न 156– चारों अनुयोगों में प्रथम सम्यग्दर्शन का उपदेश क्यों किया ?

उत्तर – यम–नियमादि करने पर भी सम्यग्दर्शन के बिना, धर्म की शुरुआत, वृद्धि एवं पूर्णता नहीं होती; अतः चारों अनुयोगों में प्रथम सम्यग्दर्शन का ही उपदेश है।

प्रश्न 157– क्या सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना, व्यवहार नहीं होता है ?

उत्तर – नहीं होता है, क्योंकि सम्यग्दर्शन स्वयं व्यवहार है और त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव वह निश्चय है।

प्रश्न 158– सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना, व्यवहार नहीं होता है, ऐसा कहाँ कहा है ?

उत्तर – चारों अनुयोगों में कहा है। मुख्यरूप से श्रीप्रवचनसार, गाथा 94 में 'मात्र अचलित चेतना, वह ही मैं हूँ, ऐसा मानना –परिणमित होना, सो आत्मव्यवहार है' अर्थात्, आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रगट होता है, वह व्यवहार है।

प्रश्न 159– अज्ञानी, व्यवहार किसे कहते हैं और उसका फल क्या है ?

उत्तर – बाहरी क्रिया और शुभ विकारीभावों को व्यवहार कहता है और उसका फल, चारों गतियों का परिभ्रमण है।

प्रश्न 160– सम्यग्दर्शन होने पर, संसार का क्या होता है ?

उत्तर – जैसे –पत्थर पर बिजली पड़ने पर टूट जाने से वह फिर

जुड़ता नहीं है; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञानी, संसार में जुड़ता नहीं है, बल्कि संसार का नाश करके परम निर्वाण को प्राप्त करता है।

प्रश्न 161- आप प्रथम सम्यग्दर्शन की ही बात क्यों करते हो; व्रत-दान-पूजादि की बात तथा शास्त्र पढ़ने आदि की बात क्यों नहीं करते हो ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना व्रत, दान, पूजादि मिथ्या चारित्र है तथा शास्त्र पढ़ना आदि मिथ्याज्ञान है; इसलिए हम व्रत, दानादि की प्रथम बात नहीं करते, बल्कि सम्यग्दर्शन की बात करते हैं क्योंकि सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर जितना ज्ञान है, वह सम्यग्ज्ञान है और जो चारित्र है, वह सम्यक्चारित्र है। इसलिए प्रथम सम्यग्दर्शन की बात करते हैं। छहढाला में कहा है -

मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी, या बिना ज्ञान-चारित्रा;
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारों भव्य पवित्रा।
'दौल' समझ सुन, चेत, सयाने, काल वृथा मत खोवै,
यह नर भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै॥

प्रश्न 162- शुभभाव से मोक्षमार्ग क्यों नहीं है ?

उत्तर - (1) श्री प्रवचनसार, गाथा 11 की टीका में कहा है कि 'शुद्धोपयोग, उपादेय है और शुभोपयोग, हेय है।'

(2) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा 220 में कहा है 'शुभोपयोग अपराध है।' चारों अनुयोगों में एकमात्र निज भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही मोक्षमार्ग और मोक्ष, भगवान ने कहा है और शुभभाव किसी भी प्रकार का हो, वह तो संसार का ही कारण है। इसलिए शुभभाव से कभी भी मोक्षमार्ग और मोक्ष नहीं होता है।

प्रश्न 163- मिश्रदशा क्या है ?

उत्तर - जिसने अपने स्वभाव का आश्रय लिया, उसे मोक्ष तो नहीं हुआ, परन्तु मोक्षमार्ग हुआ।

(1) मोक्षमार्ग में कुछ वीतराग हुआ है, कुछ सराग रहा है।

(2) जो अंश वीतराग हुए, उनसे संवर-निर्जरा है और जो अंश सराग रहे, उनसे बन्ध है। ऐसे भाव को मिश्रदशा कहते हैं।

प्रश्न 164- मिश्रदशा में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर - जो शुद्धि प्रगटी, वह नैमित्तिक है और भूमिकानुसार राग, वह निमित्त है।

प्रश्न 165- क्या जाने तो धर्म की प्राप्ति हो ?

उत्तर - (1) मेरा स्वभाव अनादि-अनन्त एकरूप है।

(2) मेरी वर्तमान पर्याय में मेरे ही अपराध से एक समय की भूल है। उस भूल में निमित्तकारण द्रव्यकर्म-नोकर्म हैं; मैं नहीं हूँ। ऐसा जानकर, अपने अनादिअनन्त एकरूप स्वभाव का आश्रय ले, तो धर्म की प्राप्ति करके क्रम से मोक्ष का पथिक बने ?

जिन, जिनवर, जिनवरवृषभ कथित
मोक्षमार्ग अधिकार सम्पूर्ण

3

मोक्षमार्ग सम्बन्धी प्रश्नोत्तर

प्रश्न 1– अशुभकर्म बुरा; शुभकर्म अच्छा, यह मान्यता कैसी है ?

उत्तर – यह मान्यता अनन्त संसार का कारण है (1) क्योंकि 'जैसे अशुभकर्म जीव को दु:खी करता है; उसी प्रकार शुभकर्म भी जीव को दु:खी करता है। कर्म में तो भला कोई नहीं है। अपने मोह को लिए हुए मिथ्यादृष्टि जीव, कर्म को भला करके मानता है।'

(श्रीसमयसार कलश टीका, कलश 100)

(2) 'शुभ अशुभ बन्ध के फल मज्झार, रति अरति करै निजपद विसार' छहढाला में भी लिखा है कि जिसको अपना पता नहीं, ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव, शुभ के फल को अच्छा और अशुभ के फल को बुरा मानता है।

(3) जो शुभ-अशुभ में अन्तर मानता है, वह जीव, घोर-अपार संसार में भ्रमण करता है। *(श्रीप्रवचनसार, गाथा 77)*

(4) पुरुषार्थसिद्धियुपाय, गाथा 14 में ऐसी मान्यता को संसार का बीज कहा है

प्रश्न 2– शुभोपयोग से कर्म की निर्जरा होकर, मोक्ष की प्राप्ति होती है, यह मान्यता कैसी है ?

उत्तर – यह मान्यता श्वेताम्बरों की है और जो दिगम्बरधर्मी कहलाने पर भी, शुभोपयोग से संवर, निर्जरा और मोक्ष मानते हैं, वे

दिगम्बरधर्म की आड़ में श्वेताम्बरमत की पुष्टि करनेवाले, संसार के पात्र हैं।

(1) 'कोई जीव शुभोपयोगी होता हुआ यतिक्रिया में मग्न होता हुआ, शुद्धोपयोग को नहीं जानता, केवल यतिक्रियामात्र में मग्न है। वह जीव ऐसा मानता है मैं तो मुनीश्वर हूँ, हमको विषय-कषाय सामग्री निषिद्ध है। ऐसा जानकर, विषय-कषाय सामग्री को छोड़ता है, आपको धन्यपना मानता है, मोक्षमार्ग मानता है। सो विचार करने पर ऐसा जीव, मिथ्यादृष्टि है, कर्मबन्ध को करता है; कोई भलापन तो नहीं है। *[श्रीसमयसार, कलश टीका, कलश 101]*

(2) शुभभाव से संवर-निर्जरा माननेवाले को समयसार, गाथा 154 में 'नपुंसक' कहा है। गाथा 156 में अज्ञानी लोग व्रत-तपादि को मोक्ष का हेतु मानते हैं, उसका निषेध किया है।

प्रश्न 3- शुभ-अशुभक्रिया आदि बन्ध का ही कारण है, मोक्ष का कारण नहीं है, ऐसा श्री राजमलजी ने कहीं कहा है ?

उत्तर - (1) 'जो शुभ-अशुभक्रिया, सूक्ष्म-स्थूल अन्तर्जल्प-बहिर्जल्परूप जितना विकल्परूप आचरण है, वह सब कर्म का उदयरूप परिणमन है; जीव का शुद्ध परिणमन नहीं है; इसलिए समस्त ही आचरण, मोक्ष का कारण नहीं है; बन्ध का कारण है।'

(2) 'यहाँ कोई जानेगा कि शुभ-अशुभक्रियारूप जो आचरणरूप चारित्र है, सो करने योग्य नहीं है; उसी प्रकार वर्जन करने योग्य भी नहीं है ? उत्तर दिया है - वर्जन करने योग्य है। कारण कि व्यवहारचारित्र होता हुआ दुष्ट है, अनिष्ट है, घातक है; इसलिए विषय-कषाय के समान, क्रियारूपचारित्र निषिद्ध है।'

[श्रीसमयसार-कलश-टीका, कलश 107 तथा 108]

प्रश्न 4- श्री राजमलजी ने कलश-टीका, कलश 102 में

ऐसा क्यों कहा है कि 'शुभकर्म के उदय में उत्तम पर्याय होती है, वहाँ धर्म की सामग्री मिलती है; उस धर्म की सामग्री से जीव, मोक्ष जाता है; इसलिए मोक्ष की परिपाटी शुभकर्म है'?

उत्तर – अरे भाई तुमने कलश–टीका में श्री राजमलजी के प्रश्न को भी अच्छी तरह नहीं पढ़ा, ऐसा लगता है क्योंकि प्रश्न को पूरा करने से पहले लिखा है 'ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है और उसको उत्तर दिया है। कोई कर्म, शुभरूप, कोई कर्म, अशुभरूप ऐसा भेद तो नहीं है ....ऐसा अर्थ निश्चित हुआ कि कोई कर्म भला, कोई कर्म बुरा – ऐसा तो नहीं; सब ही कार्य दुःखरूप हैं।'

प्रश्न 5– क्या मोक्षार्थी को अल्प भी राग नहीं करना चाहिए?

उत्तर – (1) 'मोक्षाभिलाषी जीव, सर्वत्र किञ्चित् भी राग नहीं करो' – ऐसा करने से 'वह भव्य जीव, वीतराग होकर भवसागर को तरता है।' *[श्रीपञ्चास्तिकाय, गाथा 172]*

(2) राग कैसा भी हो, त्याज्य ही है क्योंकि अनर्थ सन्तति का मूल, रागरूप क्लेश का विलास ही है। *[श्रीपञ्चास्तिकाय, गाथा 168]*

(3) ज्ञानी का अस्थिरता सम्बन्धी राग भी मोक्ष का घातक, दुष्ट, अनिष्ट और बन्ध का कारण है।

(4) मिथ्यादृष्टि अणुव्रत–महाव्रतादि को उपादेय मानता है, इसलिए उसका शुभभाव परम्परा निगोद का कारण है।

(5) ज्ञानी का राग, पुण्य बन्ध का कारण है और मिथ्यादृष्टि का शुभराग, पापबन्ध का कारण है।

[श्रीपरमात्मप्रकाश, अध्याय प्रथम, गाथा 98]

प्रश्न 6– व्यवहार बढ़े तो निश्चय बढ़े, क्या यह कहना ठीक है?

उत्तर – बिल्कुल गलत है, क्योंकि : (1) द्रव्यलिङ्गी को व्यवहाराभास जिनागम अनुसार होता है, परन्तु निश्चय होता ही नहीं है।

(2) 8, 9, 10 गुणस्थानों में निश्चय है; वहाँ पर देव-गुरु -शास्त्र का राग, अणुव्रत, महाव्रतादि का राग नहीं है।

(3) केवली भगवान को निश्चय है और व्यवहार है ही नहीं। इसलिए व्यवहार हो, तो निश्चय बढ़े – यह अन्य मिथ्यादृष्टियों की मान्यताएँ हैं; जिन-जिनवर-जिनवर-वृषभों की मान्यता नहीं है।

प्रश्न 7- जो जीव, जैनधर्म का सेवन आजीविका के लिए करते हैं, उन्हें भगवान ने क्या-क्या कहा है ?

उत्तर – (1) जैनधर्म का सेवन तो संसार के नाश के लिए किया जाता है, जो उसके द्वारा सांसारिक प्रयोजन साधना चाहते हैं, वह बड़ा अन्याय करते हैं; इसलिए वे तो मिथ्यादृष्टि हैं ही।

(2) सांसारिक प्रयोजनसहित जो धर्म साधते हैं, वे पापी भी हैं और मिथ्यादृष्टि तो हैं ही।

(3) जो जीव प्रथम से ही सांसारिक प्रयोजनसहित भक्ति करता है, उसके पाप का ही अभिप्राय हुआ।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 219 से 222]

(4) इस प्रयोजन के हेतु अरहन्तादिक की भक्ति करने से भी तीव्र कषाय होने के कारण, पापबन्ध ही होता है।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 8]

(5) शास्त्र बाँचकर, पूजा करके, आजीविका आदि लौकिक -कार्य साधना, अनन्त संसार का कारण है।

प्रश्न 8- क्या बाह्य सामग्री से सुख-दुःख होता है ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं, क्योंकि आकुलता का घटना-बढ़ना रागादिक कषाय घटने-बढ़ने के अनुसार है; इसलिए बाह्य सामग्री से सुख-दु:ख मानना, मात्र भ्रम ही है।

प्रश्न 9- क्रोधादिक क्यों उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर - पदार्थ अनिष्ट-इष्ट भासित होने से, अज्ञानियों को क्रोधादिक उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न 10- क्रोधादिक के अभाव के लिए क्या करें ?

उत्तर - जब तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट भासित ना हो, तब स्वयमेव ही क्रोधादि उत्पन्न नहीं होते, तब सच्चे धर्म की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 11- क्या शुभभाव, परम्परा मोक्ष का कारण है ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं; क्योंकि शुभभाव किसी का भी हो, वह बन्ध का ही कारण है।

(अ) जैसे-सातवें गुणस्थान की दशा, साक्षात् मोक्ष का कारण हो तो इसकी अपेक्षा छठे गुणस्थान में जो तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप शुद्धपरिणति है, वह परम्परा मोक्ष का कारण है।

(आ) शुद्धपरिणति अकेली नहीं होती, उसके साथ भुमिकानुसार शुभभाव भी होता है, उसमें शुद्धपरिणति, संवर-निर्जरारूप है और राग, बन्धरूप है। ज्ञानी उस शुभभाव को हेयरूप श्रद्धा करता है और नियम से उसका अभाव करके शुद्धदशा में आ जाता है; इसलिए शास्त्रों में कहीं-कहीं ज्ञानी के शुभभावों के अभाव को परम्परा मोक्ष का कारण कहा है। कहने के लिए मोक्ष का कारण है, वास्तव में बन्धरूप ही है।

प्रश्न 12- ज्ञानियों को बीच में व्यवहार क्यों आता है ?

उत्तर - (अ) जैसे - देहली जाते हुए रास्ते में स्टेशन पड़ते हैं, वे छोड़ने के लिए हैं।

(आ) बादाम में जो छिलका है और गन्ने में जो छिलका है, वह फेंकने के लिए है; उसी प्रकार ज्ञानियों को जो व्यवहार बीच में आता है, वह फेंकने के लिए है क्योंकि ज्ञानी उसे हलाहल जहर, अर्थात् मोक्ष का घातक मानते हैं; इसलिए सम्पूर्ण व्यवहार अभूतार्थ है।

प्रश्न 13- सिद्धभगवान में जितनी शक्तियाँ हैं, उतनी ही प्रत्येक आत्मा में भी हैं, परन्तु पहिचान बिना उनकी कोई कीमत नहीं है, ऐसा क्यों कहा जाता है?

उत्तर - भगवान की वाणी में आया है कि प्रत्येक आत्मा, सिद्धभगवान के समान चैतन्यरत्नाकर है। प्रत्येक के पास अनन्त गुणों का भण्डार है। उसकी एक-एक निर्मलपर्याय की अपार कीमत है। दुनिया के वैभव से उसकी बराबरी नहीं हो सकती, परन्तु अज्ञानी अपने को हीन मानकर, पुण्य से भीख माँगता है। अज्ञानी के पास भी कीमती गुणों का भण्डार है, परन्तु उसकी पहिचान ना होने से चारों गतियों में घूमता हुआ, अनन्त बार निगोद में चला गया।

जैसे - कोई मनुष्य अपने को गरीब मानकर, सेठ के पास भीख माँगने गया। सेठ उसके पास रखे हुए रत्न का प्रकाश देखकर आश्चर्यचकित हुआ और बोला, अरे भाई! तू भीख क्यों माँगता है, तू तो गरीब नहीं है। देख, तेरे पास जो यह रत्न है, यह महान कीमत का है। मेरे पास एक हजार सोने की मोहरें हैं। तू उन सब मोहरों को ले ले और मुझे यह रत्न दे दे। वह गरीब मनुष्य आश्चर्यचकित हुआ कि मेरे पास इतना कीमती रत्न है? सुनकर आनन्दित हुआ। सेठ का उपकार मानकर बोला, सेठजी यह रत्न तो हमारे घर में बहुत समय से पड़ा था, परन्तु मुझे इसकी खबर नहीं थी; इसी प्रकार वर्तमान में

सच्चा दिगम्बर-धर्म मिलने पर भी अज्ञानी जीव, संयोग और संयोगीभावों में पागल होकर दौड़ा-दौड़ा फिर रहा है। महाभाग्य से वर्तमान में पूज्य गुरुदेवश्री का समागम मिला। उन्होंने कहा, अरे जीव! तू क्यों संयोग और संयोगीभावों में पागल हो रहा है। तेरे पास अनन्त गुणों का अभेद पिण्ड चैतन्यरत्नाकर है। तेरे चैतन्यरत्नाकर के सामने, संसार का वैभव, तृणसमान है, तेरे चैतन्यरत्नाकर की अपार कीमत है। तू अपने चैतन्यरत्नाकर के सन्मुख हो, तो तुझे अपने वैभव की पहिचान हो। इतना सुनते ही अनादिकाल का अज्ञानी आश्चर्यचकित हो, स्वसन्मुख हुआ। अपनी आत्मा में अमूल्य वैभव है, उसे जानकर आनन्दित हुआ। तब पूज्य गुरुदेव के प्रति बहुमान आया और बोला, हे पूज्य गुरुदेव! ऐसा आत्मस्वभाव तो अनादिकाल से मेरे पास ही था, परन्तु मुझे इसकी खबर नहीं थी। इसलिए मैं संयोग और संयोगीभावों में पागल हो रहा था। अब आपकी परमकृपा से मुझे अपने चैतन्यरत्नाकर का भान हुआ, अनन्त संसार मिटा, आप धन्य हैं! धन्य हैं! यद्यपि आत्मा में अनन्त शक्तियाँ हैं फिर भी उसकी पहिचान ना होने से, उनकी कोई कीमत नहीं है - ऐसा भगवान की वाणी में आया है।

प्रश्न 14- सिद्धसमान स्वयं चैतन्य रत्नाकर होने पर भी, जो स्वयं की पहिचान नहीं करता, और संसार के कार्यों में अपनी चतुराई को लगाता है - वह जीव किसके योग्य है?

उत्तर - जैसे- एक बार राजा के दरबार में कोई परदेशी एक हीरा लेकर आया और राजा से कहा, आप अपने जौहरियों से इस हीरे की कीमत कराओ। शहर के तमाम जौहरी इकट्ठे हुए, परन्तु उस हीरे की कीमत ना बता सके। राजा को बड़ी चिन्ता हुई कि इससे तो हमारे राज्य की बदनामी होगी। आखिरकार एक अनुभवी वृद्ध

जौहरी को बुलाया। उस जौहरी ने हीरे को देखकर उसका सही मूल्य बता दिया। तब राजा ने परदेशी से पूछा, क्या तुम्हारे हीरे की कीमत ठीक बतायी है? उसने कहा, महाराज बिल्कुल ठीक बतायी है। राजा ने प्रसन्न होकर दिवान को हुक्म दिया कि जौहरी को इनाम दो। दिवान, धर्म को जाननेवाला था। उसने सोचा कि अब वृद्ध के लिए हित का अवकाश है। दिवान ने जौहरी से कहा, जौहरी जी! तमाम जिन्दगी हीरे परखने में ही बितायी, अब आखिरी वक्त आया है, तब भी तुम्हें यह नहीं सूझता कि मैं अपने चैतन्य हीरे की पहिचान कर लूँ! इतना सुनते ही जौहरी की आत्मा जाग उठी और दिवानजी का उपकार माना। जब दिवानजी ने इनाम माँगने को कहा तो जौहरी ने कहा, कल मागूँगा। अगले दिन जौहरी ने राजा से कहा, मैं इनाम के लायक नहीं हूँ। यदि आप इनाम देना ही चाहते हैं तो मेरे सिर पर सात जूते लगवाओ, क्योंकि मैंने अपने चैतन्य हीरे की पहिचान नहीं की और तमाम उम्र हीरों की पहिचान में ही बितायी। उसी प्रकार सर्वज्ञ राजा के दिवान के रूप में पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि अरे जीव! बाहर के पदार्थों के जानने में अनन्त काल गंवाया है और अनन्त शक्तिसम्पन्न अपने चैतन्य हीरे की पहिचान नहीं की, तो जौहरी की भाँति तू सात जूतों के लायक है। इसलिए हे भव्य! तू जाग और अपने चैतन्य हीरे की अमूल्य महिमा है, ऐसा जानकर तत्काल धर्म की प्राप्ति कर।

प्रश्न 15– हमें तो ज्ञान का अल्प उघाड़ है। इस कम ज्ञान के उघाड़ में चैतन्य हीरे की पहिचान कैसे हो सकती है, हमें तो ऐसा उपाय बताओ जिससे कम उघाड़ में चैतन्य हीरे की पहिचान हो जावे?

उत्तर – भगवान की वाणी में आया है कि प्रत्येक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव को इतना ज्ञान का उघाड़ तो है ही कि उस ज्ञान के सम्पूर्ण

उघाड़ को यदि अपने चैतन्य हीरे की तरफ लगा दे, तो तत्काल सम्यग्दर्शनादिक की प्राप्ति होकर, क्रम से मोक्ष का पथिक बने। जैसे – बम्बई के बाजार में एक होलसेल खिलौनों की दुकान थी। उस खिलौनों की दुकान के सामने एक लड़का एक खिलौने को देख-देखकर प्रसन्न हो रहा था। व्यापारी ने लड़के से पूछा, क्या चाहिए? लड़के ने खिलौने के लिए इशारा किया। व्यापारी ने कहा, इसकी कीमत पाँच रुपया है। लड़के ने कहा, मेरे पास तो कुल दस पैसे हैं। दुकानदार ने प्रसन्न होकर दस पैसे लेकर खिलौना दे दिया। लड़का बहुत प्रसन्न हुआ और खिलौना लेकर घर पहुँचा। उसके पिता ने पूछा, यह खिलौना कितने का है और कहाँ से लाया है? उसने बता दिया। लड़के का पिता उस दुकानदार के पास गया और दो सौ खिलौनों का आर्डर लिखा दिया। दुकानदार ने तुरन्त एक हजार का बिल बनाकर उसके हाथ में दे दिया। उसने कहा, अभी-अभी तुमने हमारे लड़के को यह खिलौना दस पैसे का दिया है और हमसे पाँच रुपया क्यों माँगते हो? व्यापारी ने कहा, अरे भाई! उसके पास कुल जमा पूँजी दस पैसा ही थी, उसने सब जमापूँजी इस खिलौने को खरीदने में लगा दी। तुम तो बेचने को ले जा रहे हो और तुम्हारे पास तो लाखों रुपया है, क्या तुम हमें सब रुपया दे दोगे? उसी प्रकार वर्तमान में पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि यदि जीव, अपने मति-श्रुतज्ञान के सम्पूर्ण उघाड़ को अपने चैतन्यरत्नाकर की ओर लगा दे तो उसे तत्काल धर्म की प्राप्ति हो। परन्तु जो जीव अपने मति-श्रुतज्ञान के उघाड़ को घर के कार्यों में, लौकिक पढ़ाई में, व्यापार-धन्धे इत्यादि अशुभभावों में और व्रत-शील-संयम-अणुव्रत-महाव्रतादि शुभभावों में ही लगा देता है, वह आत्मधर्म की प्राप्ति नहीं कर सकता।

प्रश्न 16- निर्जरा किसे कहते हैं?

उत्तर – अखण्डानन्द शुद्ध आत्मस्वभाव के बल से आँशिक शुद्धि की वृद्धि और अशुद्ध (शुभाशुभ इच्छारूप) अवस्था की आँशिक हानि करना, वह भावनिर्जरा है और उसका निमित्त पाकर जड़कर्म का अंशतः खिर जाना, वह द्रव्यनिर्जरा है।

प्रश्न 17– निर्जरा कितने प्रकार की है ?

उत्तर – चार प्रकार की है : सकामनिर्जरा, अकामनिर्जरा, सविपाकनिर्जरा और अविपाकनिर्जरा।

प्रश्न 18– सकामनिर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा, शुद्ध चिदानन्द भगवान है, सत्य पुरुषार्थपूर्वक उसके सन्मुख होकर शुद्धि की वृद्धि होना, सकामनिर्जरा है।

प्रश्न 19– अकामनिर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर – बाह्य प्रतिकूल संयोग होने के समय मन्दकषायरूप भाव का होना, अकामनिर्जरा है। जैसे – छोटी उम्र में कोई विधवा हो जावे, तब मन्दकषाय रक्खे, ब्रह्मचर्य से रहे; खाने को अनाज ना मिले, उस समय तीव्र आकुलता ना करे, किन्तु कषाय मन्द रक्खे; किसी को जेल हो जावे, वहाँ तीव्र आकुलता न करे, किन्तु कषाय मन्द रक्खे, इत्यादि यह सब अकामनिर्जरा है। इससे पाप की निर्जरा होती है और देवादि पुण्य का बन्ध होता है।

प्रश्न 20– सविपाकनिर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर – संसारी जीवों को कर्म के उदयकाल में समय-समय अपनी स्थिति पूर्ण होने पर जो कर्म के परमाणु खिर जाते हैं, उसे सविपाकनिर्जरा कहते हैं।

प्रश्न 21– अविपाकनिर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर – सच्ची दृष्टि होने पर, आत्मा के पुरुषार्थ द्वारा उदयकाल

प्राप्त होने के पहले कर्मों का खिर जाना, अविपाकनिर्जरा है।

प्रश्न 22- अज्ञानी को कौन-कौन सी निर्जरा हो सकती है ?

उत्तर - अज्ञानी को चाहे वह द्रव्यलिङ्गी मुनि हो, उसे सविपाक -निर्जरा और अकामनिर्जरा ही हो सकती है।

प्रश्न 23- ज्ञानी को कितने प्रकार की निर्जरा हो सकती है ?

उत्तर - ज्ञानी को चारों प्रकार की निर्जरा हो सकती है।

प्रश्न 24- मिथ्यादृष्टि को कुछ नहीं करना हो, तब वह अपने को और दूसरों को धोखा देने के लिए श्रद्धान-ज्ञान और चारित्र की अपेक्षा किस-किस को याद करता है ?

उत्तर - (1) तत्त्वश्रद्धान की बात आवे, तब तिर्यञ्चों को याद करता है।

(2) ज्ञान की बात आवे, तब शिवभूति मुनि को याद करता है,

(3) चारित्र की बात आवे, तब भरतजी को याद करता है - यह सब स्वच्छन्दता की बातें हैं।

प्रश्न 25- श्रद्धा किसको स्वीकार करती है और किसको स्वीकार नहीं करती ?

उत्तर - श्रद्धा, एकमात्र त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव को ही स्वीकारती है; परको, द्रव्यकर्मों को, विकारीभावों को, अपूर्ण और पूर्ण शुद्धपर्याय को तथा गुणभेद को स्वीकार नहीं करती है, अर्थात् इनका आश्रय नहीं लेती है। साधक ज्ञानी को राग-द्वेष है ही नहीं; ऐसा जो कहा जाता है, वह श्रद्धा की अपेक्षा जानना चाहिए।

प्रश्न 26- सम्यग्दर्शन होने पर सम्यग्ज्ञान क्या जानता है ?

उत्तर - जैसे - दौज का चन्द्रमा, दौज के प्रकाश को बताता है, जितना प्रकाश बाकी है, उसे बताता है; पूर्ण प्रकाश कितना है,

उसको बताता है, और त्रिकाल पूर्ण प्रकाशमय चन्द्रमा कैसा होना चाहिए, उसे भी बताता है; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि का ज्ञान, जितनी शुद्धि प्रगटी है, उसे जानता है; जितनी अशुद्धि बाकी है, उसे जानता है; शुद्धि की पूर्णता किस प्रकार की होती है, उसे जानता है, और त्रिकाली शुद्ध आत्मा जिसके आश्रय से शुद्धि आती है, उसे भी जानता है।

प्रश्न 27– चारित्र की अपेक्षा सम्यग्दृष्टि क्या जानता है ?

उत्तर – जितनी शुद्धि प्रगटी है, वह मोक्षमार्गरूप है और जितनी अशुद्धि है, वह सब बन्धरूप है; अल्पबन्ध का कारण है; ज्ञान का ज्ञेय है; हेय है।

प्रश्न 28– चारों अनुयोगों का तात्पर्य क्या है, इसका दृष्टान्त देकर समझाओ ?

उत्तर – अरे भाई! चारों अनुयोगों की कथनशैली में फेर होने पर भी, सबका आशय एक है, अर्थात् वीतरागता की प्राप्ति कराना है।

(1) प्रथमानुयोग कहता है –'ऐसा था';

(2) चरणानुयोग कहता है – 'उसे छोड़ो';

(3) करणानुयोग कहता है – 'ऐसा है तो ऐसा है';

(4) द्रव्यानुयोग कहता है – 'ऐसा ही है।' दृष्टान्त के रूप में उपवास को चारों अनुयोगों पर घटाना है और उसका फल, वीतरागता है। विचारिये – (1) द्रव्यानुयोग, उपवास किसे कहता है ? उप=नजदीक; वास=रहना; अर्थात् ज्ञायकस्वभावी आत्मा के नजदीक में रहना, वह उपवास है।

(2) करणानुयोग उपवास किसे कहता है ? खाने का राग छोड़ा, उसे उपवास कहता है ? जो अपने में वास करेगा, क्या उस समय उसे खाने का राग होगा ? कभी नहीं।

(3) चरणानुयोग उपवास किसे कहता है? आहार के त्याग को उपवास कहता है। जब आत्मा में लीन होगा, तो क्या रोटी खाता हुआ दीखेगा? कभी भी नहीं। चरणानुयोग में कहा जाता है कि आहार का त्याग किया।

(4) इतना शुभभाव किया तो ऐसा पुण्यबन्ध हुआ और उसका फल अच्छा संयोग है, यह प्रथमानुयोग बताता है।

प्रश्न 29- सुभाषितरत्न-सन्दोह में उपवास किसे कहा है?

उत्तर - 'कषायविषयाहारो त्यागो तत्र विधीयते।
उपवासः सः विज्ञेयः शेषं लंघनकं विदुः।'

अर्थात्, जहाँ कषाय, विषय और आहार का त्याग किया जाता है, उसे उपवास जानना। शेष को श्रीगुरु लंघन कहते हैं।

प्रश्न 30- उपयोग शब्द कितने अर्थों में किस-किस प्रकार प्रयुक्त होता है?

उत्तर - (1) चैतन्यानुविधायी आत्मपरिणाम, अर्थात् चैतन्य-गुण के साथ सम्बन्ध रखनेवाले जीव के परिणाम को उपयोग कहते हैं;

(2) ज्ञान-दर्शनगुण को भी उपयोग कहते हैं;

(3) ज्ञान-दर्शनगुण की पर्याय को भी उपयोग कहते हैं;

(4) आत्मा के चारित्रगुण के अशुभ-शुभ और शुद्धभाव को भी उपयोग कहते हैं।

प्रश्न 31- क्या-क्या जाने तो अनन्त संसार का परिभ्रमण क्षण भर में अभाव हो जाये?

उत्तर - (1) वस्तु के स्वभाव की व्यवस्था।

(2) सर्वज्ञ का स्वीकार।

(3) प्रत्येक कार्य का सच्चा कारण, उस समय पर्याय की योग्यता ही है।

प्रश्न 32– आकुलता की उत्पत्ति क्यों होती है और क्या माने तो अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति हो?

उत्तर – अपनी इच्छानुसार पर पदार्थों का परिणमन हो जाये तो हर्ष होता है, वह तो राग है और उससे आकुलता की वृद्धि होती है। ज्ञान के अनुसार सब पदार्थों का परिणमन बने तो अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 33– सिद्धान्त किसे कहते हैं?

उत्तर – तीन काल और तीन लोक में जिसमें जरा भी हेर-फेर ना हो सके, उसे सिद्धान्त कहते हैं। जैसे, एक और एक दो होते हैं। आप रूस जाओ, अमेरिका जाओ, चीन जाओ, सब जगह पर एक और एक दो ही होंगे।

प्रश्न 34– जिनेन्द्रभगवान के सिद्धान्त क्या-क्या हैं, जिसमें कभी भी जरा भी हेर-फेर नहीं हो सकता है?

उत्तर – (1) एक द्रव्य का, दूसरे द्रव्य से कर्ता-भोक्ता का सम्बन्ध किसी भी अपेक्षा नहीं है।

(2) आत्मा का सर्व पदार्थों के साथ व्यवहार से ज्ञेय-ज्ञायक-सम्बन्ध है।

(3) एकमात्र अपने भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धदशा तक की प्राप्ति होती है; पर के, विकार के और एक समय की पर्याय के आश्रय से नहीं।

(4) कार्य हमेशा उपादान से ही होता है; निमित्त से नहीं होता। परन्तु जब-जब उपादान में कार्य होता है, वहाँ उचित निमित्त की सन्निधि होती है – ऐसा वस्तु का स्वभाव है।

प्रश्न 35- छह द्रव्यों का स्वभाव क्या है, इनको यथार्थ -स्वरूप समझने से हमें क्या बोधपाठ मिलता है और शान्ति की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

उत्तर - जाति अपेक्षा छह द्रव्यों में तीन जोड़े बनते हैं -

(1) जीव का स्वभाव जानने का है, पुद्गल का स्वभाव नहीं जानने का है; दोनों का स्वभाव एक-दूसरे के विरुद्ध है।

(2) धर्मद्रव्य, जीव-पुद्गल को चलने में निमित्त है; अधर्मद्रव्य, उनको ठहरने में निमित्त है; दोनों का स्वभाव एक-दूसरे के विरुद्ध है।

(3) आकाश का स्वभाव, तिर्यक प्रचय है; काल का स्वभाव, ऊर्ध्व प्रचय है; दोनों का स्वभाव एक-दूसरे से विरुद्ध है।

इन छह द्रव्यों का अनादि-अनन्त विरुद्ध स्वभाव होते हुए भी, एक साथ रह सकते हैं। अपने घर में यदि छह आदमी हैं, परमार्थ से सब ज्ञानस्वभावी हैं; व्यवहार से रागी हैं। अल्प काल के लिए कभी उनके साथ विरोध भी हो और यदि तू उनके साथ सुमेल से रहना नहीं जानता, तो वीतरागी कैसे बन सकेगा ? विचार करो - कि अनादि-अनन्त विरुद्धस्वभावी द्रव्य, एक साथ रह सकते हैं, सो समान स्वभावी हमें रहने में क्या आपत्ति हो सकती है ? ऐसा समझे तो जीवन में शान्ति आवे।

प्रश्न 36- 'कारणशुद्धपर्याय' का विषय कैसा है ?

उत्तर - कारणशुद्धपर्याय का विषय बहुत सूक्ष्म और सरल है, परन्तु प्रत्यक्षज्ञानियों के सत्समागम से समझने योग्य है।

प्रश्न 37- अपेक्षितभाव कौन-कौन से हैं और क्या ये भाव, सम्यग्दर्शन के कारण नहीं हैं ?

उत्तर - औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायोपशमिकभाव,

क्षायिकभाव – सापेक्ष हैं; उत्पाद–व्ययवाली पर्यायरूप हैं। जैसे – समुद्र में तरङ्गें उठती हैं; उसी प्रकार आत्मा में रागादि विकारीभाव हैं अथवा उनके अभाव से प्रगट होनेवाली निर्मलपर्यायें हैं। ये सब अपेक्षितभाव हैं; क्षणिक उत्पाद–व्ययरूप हैं; इसलिए ये चारों भाव, सम्यग्दर्शन के आश्रयभूत नहीं हैं।

प्रश्न 38– कारणशुद्धपर्याय क्या है ?

उत्तर – कारणशुद्धपर्याय, अर्थात् विशेष पारिणामिकभाव, वह निरपेक्ष है। इसमें औदयिक आदि चार भावों की अपेक्षा नहीं है। अत: इसे निरपेक्षपर्याय, अर्थात् ध्रुवपर्याय भी कहते हैं। जैसे – समुद्र में पानी के दल की सपाटी एक स्वभाव है; उसी प्रकार आत्मा में 'कारणशुद्धपर्याय' है। वह सदा एक समान है। उसको औदयिक आदि चार भावों की अपेक्षा नहीं लगती है। यह आत्मा में हमेशा सदृशपने वर्तती है। यह कारणशुद्धपर्याय, प्रत्येक गुण में भी है।

प्रश्न 39– पारिणामिकभाव की पूर्णता किससे है और सम्यग्दर्शन का कारण कौन है ?

उत्तर – सामान्य पारिणामिकभाव और विशेष पारिणामिकभाव, दोनों मिलकर पारिणामिकभाव की पूर्णता है। इसे निरपेक्ष–स्वभाव, अर्थात् शुद्ध निरञ्जन एक स्वभाव, अनादिनिधनभाव भी कहते हैं। जैसे–समुद्र में पानी का दल, पानी का शीतल स्वभाव और पानी की सपाटी ये तीनों अभेदरूप वह समुद्र हैं। ये तीनों हमेशा 'ऐसे के ऐसे' ही रहते हैं; उसी प्रकार आत्मा में आत्मद्रव्य, उसके ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण और उसका सदृशरूप–ध्रुव–वर्तमान, अर्थात् कारणशुद्धपर्याय ये तीनों मिलकर वस्तुस्वरूप की पूर्णता है। यही परमपारिणामिकभाव है और यही सम्यग्दर्शन का आश्रयभूत है।

प्रश्न 40- क्या द्रव्य, गुण और कारणशुद्धपर्याय भिन्न -भिन्न हैं ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं; परन्तु जैसे - 'समुद्र की सपाटी' - ऐसा बोलने में आता है। फिर भी समुद्र का पानी, उसकी शीतलता और उसकी वर्तमान एकरूप सपाटी, ये तीनों भिन्न-भिन्न नहीं हैं; उसी प्रकार आत्मा में द्रव्य, गुण जो कि सामान्य पारिणामिकभाव है और उसकी कारणशुद्धपर्याय वह विशेष पारिणामिकभाव है, फिर भी द्रव्य, गुण और उसका ध्रुवरूप वर्तमान, ये तीनों, अर्थात् सामान्य पारिणामिकभाव और विशेष पारिणामिकभाव वास्तव में भिन्न-भिन्न नहीं हैं; अभेद ही है, यही वस्तुस्वभाव की पूर्णता है। इसी के आश्रय से सम्यग्दर्शन, श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना, अरहन्तपना और सिद्धपने की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 41- द्रव्य-गुण, अर्थात् सामान्य पारिणामिकभाव और कारणशुद्धपर्याय, अर्थात् विशेष पारिणामिकभाव का स्पष्टीकरण करिये ?

उत्तर - (1) द्रव्य-गुण-पर्याय में संज्ञा, लक्षणादि भेद दिखते हैं परन्तु वस्तुस्वरूप से भिन्न नहीं हैं।

(2) जो द्रव्य-गुण तथा निरपेक्ष कारणशुद्धपर्याय है, वह त्रिकाल एकरूप है। उसमें हमेशा सदृश परिणमन है। अपेक्षित-पर्यायों में उत्पाद-व्ययरूप विसदृश परिणमन है। याद रहे, संसार और मोक्ष, दोनों पर्यायों को अपेक्षितपर्यायों में गिना है।

(3) जब अपेक्षितपर्याय का झुकाव ध्रुववस्तु की तरफ-परम पारिणामिकभाव की तरफ जाता है, तब वह ध्रुववस्तु एकरूप सम्पूर्ण होने से, वहाँ उस पर्याय का उपयोग स्थिर रह सकता है, वही

धर्म की प्राप्ति है और फिर जैसे-जैसे स्थिरता बढ़ती जाती है, वैसे -वैसे उस पर्याय की निर्मलता बढ़ती जाती है।

(4) परमपारिणामिक के स्वरूप को श्रद्धा में लेना, वही सम्यग्दर्शन है।

(5) सम्यग्दर्शन के ध्येयरूप परमपारिणामिकभाव ध्रुव है और उसके साथ त्रिकाल अभेदरूप रही हुई कारणशुद्धपर्याय है, उसको 'पूजित पञ्चमभावपरिणति' कहने में आता है।

(6) द्रव्यदृष्टि में जो पर्याय गौण करने की बात आती है, वह तो औदयिक आदि चार भावों की पर्याय समझना चाहिए। पञ्चमभाव-परिणति, अर्थात् कारणशुद्धपर्याय गौण हो नहीं सकती है, क्योंकि वह तो वस्तु के साथ में त्रिकाल अभेद है। सम्यग्दर्शनादि निर्मल-पर्यायों को, द्रव्य-गुण और कारणशुद्धपर्याय - तीनों की अभेदता का ही अवलम्बन है। तीनों का भिन्न-भिन्न अवलम्बन नहीं है।

(7) धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्यों की पर्याय सदा एकरूप पारिणामिकभाव से ही वर्तती है। उसका ज्ञाता, जीव है। जीव की प्रगट पर्याय में तो संसार, मोक्ष आदि विसदृशता है परन्तु उसके अलावा एकरूप, एक सदृश निरपेक्ष 'कारण शुद्धपर्याय' हमेशा पारिणामिकभाव से वर्तती है। वह सब प्रकार की उपाधि से रहित है और सभी निर्मलपर्याय प्रगट होने का कारण है। द्रव्य के साथ में सदैव अभेदरूप वर्तती है। इस कारणशुद्धपर्याय को 'परमपारिणामिक भाव की परिणति' कह करके, ऐसा बताया है कि जैसी त्रिकाल सामान्यवस्तु है, वैसी ही विशेष भी सदृशपने वर्तती है।

(8) इस कारणशुद्धपर्याय का व्यक्तपने का भोगना होता नहीं है क्योंकि भोगना कार्य तो पर्याय में होता है। संसार-मोक्ष दोनों पर्यायें हैं।

(9) जगत में संसारपर्याय, साधकपर्याय और सिद्धपर्याय,

सामान्यरूप से अनादि-अनन्त हैं। वैसे यह कारणशुद्धपर्याय एक-एक जीव में अनादि-अनन्त सदृशरूप से है, उसका विरह नहीं है। कारणशुद्धपर्याय नयी प्रगट नहीं होती है परन्तु कारणशुद्धपर्याय की समझ करनेवाले जीव को सम्यग्दर्शनादिक कार्य, नया प्रगट होता है।

प्रश्न 42- प्रवचनसार में वर्णित 47 नयों का सच्चा ज्ञान किसको होता है और किसको नहीं होता है?

उत्तर - ज्ञानियों को ही होता है; अज्ञानियों को नहीं होता है। क्योंकि नय, श्रुतज्ञानप्रमाण का अंश है। प्रमाणज्ञान को प्रमाणता तभी प्राप्त होती है, जब अन्तरदृष्टि में विभाव तथा पर्यायभेदों से रहित अपने शुद्धात्मरूप ध्रुवज्ञायक की श्रद्धा के अवलम्बन का जोर सतत वर्तता हो। ध्रुवज्ञायकस्वभाव के अवलम्बन का बल, ज्ञानी को सदैव वर्तता होने के कारण उसका ज्ञान, सम्यक्प्रमाण है और ज्ञानी को ही क्रियानय, ज्ञाननय, व्यवहारनय तथा निश्चयनयादि नयों द्वारा वर्णित धर्मों का सच्चा ज्ञान होता है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों को नहीं होता है क्योंकि अज्ञानी को निज शुद्धात्मरूप ध्रुवज्ञायक-स्वभाव की प्रतीति ना होने से, उसका ज्ञान अप्रमाण है, मिथ्या है।

प्रश्न 43- ज्ञानी की दशा कैसी होती है?

उत्तर - (1) ज्ञानी की परिणति सहजरूप होती है। समय-समय भेदज्ञान को याद करना नहीं पड़ता। परन्तु ज्ञानी को तो सहजरूप परिणमन हो गया है, जिससे आत्मा में एक धारा परिणमन हुआ ही करता है।

(2) जिसको अपना अनुभव हो जाता है, वह सब जीवों को चैतन्यमयी भगवान ही देखता है।

(3) ज्ञानी की दृष्टि अपने स्वभाव पर ही होती है। स्वानुभूति के समय या सविकल्पदशा के समय उपयोग बाहर हो तो भी दृष्टि, स्वभाव से छूटती नहीं है।

(4) जैसे – वृक्ष का मूल पकड़ने से सब हाथों में आ जाता है; वैसे ही ज्ञायक पर दृष्टि जाते ही सब हाथ में आ जाता है। जिसने मूलस्वभाव को दृष्टि में ले लिया, उसे हर प्रसङ्ग में ही शान्ति वर्तेगी और ज्ञाता-दृष्टारूप ही रहेगा।

(5) जैसे – आकाश में पतङ्ग उड़ती है, परन्तु डोरा हाथ में ही रहता है; उसी प्रकार विकल्प आते हैं, परन्तु ज्ञानी की दृष्टि अपने एक चैतन्यस्वभाव पर ही रहती है।

(6) ज्ञानियों को अस्थिरता सम्बन्धी राग, काले सर्प जैसा लगता है क्योंकि ज्ञानी, विभावभावों में होने पर भी विभावभावों को अपने से पृथक जानता है।

(7) वर्तमान काल में कोई सम्यक्त्व प्राप्त करता है, यह 'अचम्भा है' क्योंकि वर्तमान में कोई बलवान योग देखने में नहीं आता है। एकमात्र कहीं-कहीं ही सम्यक्‌दृष्टि का योग है।

[परमात्मप्रकाश, अध्याय दूसरा, श्लोक 139]

(8) सम्यग्दृष्टि को ज्ञान-वैराग्य की शक्ति प्रगट हुई है। वह गृहस्थाश्रम में होने पर भी संसार के कार्यों में खड़ा हुआ दिखे, परन्तु उसमें लिप्त नहीं होता है, निर्लेप रहता है क्योंकि ज्ञानधारा और उदयधारा का परिणमन पृथक्-पृथक् है। अस्थिरता के राग का ज्ञानी, ज्ञाता रहता है।

(9) जैसे-मुसाफिर एक नगर से, दूसरे नगर जाता है। बीच के नगर छोड़ता जाता है, उनमें रुकता नहीं है। उसी प्रकार साधकदशा

में शुभाशुभभाव बीच में आते हैं, ज्ञानी उन्हें छोड़ता जाता है, उनमें रुकता नहीं है।

(10) ज्ञानी की दृष्टि एक समय भी स्वभाव से हटती नहीं है। यदि एक समयमात्र भी स्वभाव से दृष्टि हट जावे तो अज्ञानी हो जाता है।

प्रश्न 44- अरि-रज-रहस का क्या अर्थ है और किस शास्त्र में यह अर्थ किया है?

उत्तर - अरि=मोहनीयकर्म। रज=ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय। रहस=अन्तराय। यह अर्थ वृहद् द्रव्यसंग्रह, गाथा 50 की टीका में तथा चारित्र पाहुड़, गाथा 1-2 की टीका में किया है।

प्रश्न 45- परमात्मप्रकाश, प्रथम अधिकार, गाथा 7 में किसको उपादेय और किसको त्यागनेयोग्य कहा है?

उत्तर - (1) पाँच अस्तिकायों में निजशुद्ध जीवास्तिकाय को;

(2) षट्द्रव्यों में, निज शुद्धद्रव्य को;

(3) सप्त तत्त्वों में, निज शुद्धजीवतत्त्व को;

(4) नव पदार्थों में, निज शुद्धजीवपदार्थ को उपादेय कहा है; अन्य सब त्यागने योग्य है - ऐसा कहा है।

प्रश्न 46- परमात्मप्रकाश, 12वीं गाथा की टीका में क्या बताया है?

उत्तर - स्व-संवेदनज्ञान, प्रथम अवस्था में चौथे-पाँचवें गुणस्थानवाले गृहस्थ को भी होता है।

प्रश्न 47- परमात्मप्रकाश, 23 वें श्लोक में क्या बताया है?

उत्तर - केवली की दिव्यध्वनि, महामुनियों के वचनों तथा इन्द्रिय-मन से भी शुद्धात्मा जाना नहीं जाता है।

प्रश्न 48– परमात्मप्रकाश, 34 वें श्लोक में क्या बताया है ?

उत्तर – इस देह में रहता हुआ भी, देह को स्पर्श नहीं करता, उसी को तू परमात्मा जान।

प्रश्न 49– परमात्म प्रकाश, 68 वें श्लोक में क्या बताया है ?

उत्तर – प्रत्येक भगवान आत्मा, उत्पाद–व्ययरहित, बन्ध –मोक्ष की पर्याय से रहित और बन्ध–मोक्ष के कारण से रहित है। शुद्ध निश्चयनय से नित्यानन्द ध्रुव आत्मा है। वह भगवान आत्मा, उत्पन्न नहीं होता, अर्थात् उत्पाद की पर्याय में नहीं आता; मरता नहीं, अर्थात् व्यय में भी नहीं आता। एकेन्द्रिय की पर्याय हो या सिद्ध की पर्याय हो, ध्रुव भगवान तो सदा ज्ञानानन्दरूप ही रहता है।

प्रश्न 50– परमात्मप्रकाश, अध्याय दो, गाथा 63 में क्या बताया है ?

उत्तर – यह जीव, पाप के उदय से नरकगति और तिर्यञ्चगति पाता है; पुण्य से देव होता है, पुण्य और पाप दोनों के मेल से मनुष्यगति को पाता है और पुण्य–पाप दोनों के ही नाश होने से मोक्ष पाता है – ऐसा जानो।

प्रश्न 51– मुमुक्षु को क्या जानना आवश्यक है ?

उत्तर – (1) मुझ जीवतत्त्व का, दूसरे द्रव्यों से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है।

(2) मुझ जीवतत्त्व से विकार अत्यन्त भिन्न है।

(3) मुझ जीवतत्त्व से निर्मलपर्याय भी भिन्न है क्योंकि द्रव्य, पर्याय को स्पर्शता नहीं है और पर्याय, मुझ जीवतत्त्व को स्पर्शती नहीं है।

(4) द्रव्य का वेदन नहीं होता है; वेदन तो पर्याय का है।

प्रश्न 52– ज्ञानियों को पर की महिमा कैसे उड़ जाती है ?

उत्तर - जैसे-गाय-भैंस आदि जानवरों का गोबर मिलने पर, गरीब स्त्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं और धन-वैभव मिलने पर सेठ प्रसन्न हो जाता है, परन्तु निश्चय से गोबर और धनादि में जरा भी अन्तर नहीं है; उसी प्रकार ज्ञानी को अपने चैतन्यनिधान को देखते ही, बाहर के कहे जानेवाले निधानों की और विकारीभावों की महिमा उड़ जाती है।

प्रश्न 53- ज्ञानी, दूसरे को अपना नाथ क्यों नहीं बनाता है ?

उत्तर - जिसे अपने चैतन्यस्वभाव के साथ प्रेम है, ऐसा सम्यग्दृष्टि पञ्च परमेष्ठी के साथ भी प्रेमगाँठ बाँधता नहीं है, क्योंकि अपनी आत्मा में अनन्त सिद्धदशा विराज रही हैं, अर्थात् अनन्त परमात्मादशा जिसके ध्रुवपद में पड़ी हैं, ऐसा ज्ञानी आत्मा, दूसरे को अपना नाथ क्यों बनावें ? कभी भी न बनावे।

प्रश्न 54- देव-गुरु-शास्त्र क्या बताते हैं ?

उत्तर - जिसे अपनी आत्मा की महिमा आयी, उसी में देव -शास्त्र-गुरु की महिमा आ जाती है और जिसे निज आत्मा की महिमा नहीं आयी, उसे देव-शास्त्र-गुरु की महिमा भी नहीं आ सकती है।

प्रश्न 55- जैन का सच्चा संस्कार क्या है ?

उत्तर - राग से भिन्न चैतन्य को मानना, वह ही जैन का सच्चा संस्कार है।

प्रश्न 56- नियमसार में आश्रय करनेयोग्य द्रव्य कैसा बताया है ?

उत्तर - (1) केवलज्ञानादि पूर्ण निर्मलपर्याय,

(2) मति-श्रुतज्ञानादि अपूर्णपर्याय,

(3) अगुरुलघुत्व की पर्याय,

(4) नर-नारकादि पर्यायसहित होने पर भी, इन चारों प्रकार की पर्यायों से रहित, ऐसे शुद्धजीवतत्त्व को - ज्ञायकतत्त्व को सकल अर्थ की सिद्धि के लिए, अर्थात् मोक्ष की सिद्धि के लिए नमस्कार करता हूँ-भजता हूँ, अर्थात् शुद्धजीवतत्त्व में एकाग्र होता हूँ।

प्रश्न 57- परमात्मप्रकाश, प्रथम अध्याय के श्लोक 43 में कैसा द्रव्य आश्रय करने योग्य बताया है?

उत्तर - 'यद्यपि पर्यायार्थिकनयकर उत्पाद-व्यय सहित है, तो भी द्रव्यार्थिकनयकर उत्पाद-व्यय रहित है; सदा ध्रुव (अविनाशी) ही है। वही परमात्मा, निर्विकल्प समाधि के बल से तीर्थङ्करदेवों ने देह में भी देख लिया है।'

प्रश्न 58- परमात्मप्रकाश, प्रथम अध्याय के सातवें श्लोक की टीका में कैसा द्रव्य आश्रय करने योग्य बताया है?

उत्तर - 'अनुपचरित, अर्थात् जो उपचरित नहीं है, इसी से अनादि सम्बन्ध है परन्तु असद्भूत (मिथ्या) है, ऐसा व्यवहारनयकर द्रव्यकर्म, नोकर्म का सम्बन्ध होता है, उससे रहित और अशुद्ध निश्चयकर रागादि का सम्बन्ध है, उससे तथा मतिज्ञानादि विभावगुण के सम्बन्ध से रहित और नर-नारकादि चतुर्गतिरूप विभावपर्यायों से रहित, ऐसा जो चिदानन्दचिद्रूप एक अखण्डस्वभाव शुद्धात्मतत्त्व है, वही सत्य है। उसी को परमार्थरूप समयसार कहना चाहिए। वही सर्व प्रकार से आराधनेयोग्य है।'

प्रश्न 59- परमात्मप्रकाश, अध्याय एक के श्लोक 65 वें में कैसा द्रव्य आश्रय करने योग्य बताया है?

उत्तर - 'यहाँ जो शुद्ध निश्चयकर बन्ध-मोक्ष का कर्ता नहीं है, वही शुद्धात्मा आराधनेयोग्य है।'

प्रश्न 60- शास्त्रों में श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है, आप प्रत्यक्ष कैसे कहते हो ?

उत्तर - (1) श्रुतज्ञानप्रमाण परोक्ष है, नय भी परोक्ष है। स्वानुभूति में मन की, राग की अथवा पर की अपेक्षा नहीं होती है; इसलिए स्वानुभूतिप्रत्यक्ष है।

(2) असंख्य प्रदेशी सम्पूर्ण आत्मा जानने में नहीं आता; इसलिए मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है। अनुभव तो स्वयं स्वतः ही भोगता है, इस अपेक्षा प्रत्यक्ष ही है।

(3) केवलज्ञानी की तरह असंख्यात प्रदेशोंसहित सम्पूर्ण आत्मा को सीधा नहीं जानता होने की अपेक्षा, मति-श्रुतज्ञान को परोक्ष कहा है।

प्रश्न 61- शुद्धपर्याय को असत् क्यों कहा जाता है ?

उत्तर - (1) जैसे अपनी आत्मा की अपेक्षा, परद्रव्य अनात्मा है; वैसे ही त्रिकालीद्रव्य की अपेक्षा, पर्याय असत् है, क्योंकि त्रिकाली ध्रुवद्रव्य से क्षणिक प्रगट शुद्धपर्याय भिन्न है; इसलिए असत् है।

प्रश्न 62- शुद्धपर्याय असत् है, ऐसा कोई शास्त्र का प्रमाण है ?

उत्तर - (1) समयसार, गाथा 49 की टीका में लिखा है कि व्यक्तता (शुद्धपर्याय), अव्यक्तता (त्रिकाली द्रव्य) एकमेक मिश्रितरूप से प्रतिभासित होने पर भी, वह (द्रव्य) व्यक्तता को (शुद्धपर्याय को) स्पर्श नहीं करता है तथा प्रवचनसार, गाथा 172 में अलिङ्गग्रहण के 19 वें बोल में कहा है - 'पर्याय को, द्रव्य स्पर्शता नहीं है' यह प्रमाण है।

प्रश्न 63- ज्ञायकभाव तो स्वभाव की अपेक्षा अनादि से ऐसा का ऐसा ही है परन्तु 'विकल्प, वह मैं' ऐसे मिथ्याभाव की

आड़ में वह सहजस्वभाव दृष्टि में नहीं आता; इसलिए ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है। इस बात को दृष्टान्त द्वारा समझाइये?

उत्तर - जैसे - नजर के आगे टेढ़ी अंगुली करने पर, सम्पूर्ण समुद्र दिखता नहीं; इसलिए देखनेवाले के लिए समुद्र तिरोभूत हो गया है, ऐसा कहा जाता है। दृष्टि में नहीं आता; इसलिए तिरोभाव कहा, परन्तु समुद्र तो ऐसा का ऐसा ही पड़ा है; उसी प्रकार ज्ञायकभाव तो स्वभाव से पूर्णानन्द का नाथ त्रिकाली नित्यानन्दप्रभु अनन्त गुण का पिण्ड, अनादि का ऐसा का ऐसा ही है; वह कोई तिरोभूत नहीं हुआ है परन्तु जाननेवाले की दृष्टि में 'रागादि, वह मैं' - ऐसे मिथ्याभाव की एकत्वबुद्धि होने से ज्ञायकभाव दृष्टि में नहीं आने की अपेक्षा, तिरोभूत हुआ कहा जाता है।

प्रश्न 64- द्रव्यसंग्रह, गाथा 47 में क्या बताया है?

उत्तर - निश्चयमोक्षमार्ग और व्यवहारमोक्षमार्ग, दोनों एक साथ त्रैकालिक आत्मा में एकाग्रतारूप निश्चयधर्मध्यान से प्रगट होते हैं।

प्रश्न 65- अज्ञानी को ज्ञेयों के साथ मैत्री क्यों वर्तती है?

उत्तर - त्रैकालिक आत्मा, ज्ञानस्वरूप है; जानना-देखना उसका त्रिकाल स्वभाव है लेकिन अज्ञानी को अपने ज्ञानस्वरूप का पता नहीं है। ज्ञान की अनेक प्रकार की भिन्न-भिन्न जानने की पर्यायें होती हैं, उसमें ज्ञेयपदार्थ निमित्तमात्र हैं परन्तु अज्ञानी को ऐसा लगता है कि निमित्त के कारण, ज्ञान की भिन्न-भिन्न पर्यायें होती हैं, जबकि ज्ञान की भिन्न-भिन्न पर्यायें, अपने कारण से हुई हैं; ज्ञेय से नहीं हुई हैं। ऐसा न मानने से अज्ञानियों के ज्ञेय के (निमित्त पर पदार्थों के) साथ मैत्री वर्तती है।

प्रश्न 66- सम्यग्दर्शन को मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी क्यों कहा है?

उत्तर - (1) सम्यग्दर्शन होने पर एक चैतन्यचमत्कारमात्र प्रकाश प्रगटरूप है, वह स्पष्ट प्रतीति में आता है।

(2) सम्यग्दर्शन होने पर, जन्म-मरण के दु:खों का अन्त आ जाता है।

(3) अतीन्द्रियसुख की प्राप्ति होती है; इसलिए सम्यग्दर्शन को मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी कहा है।

प्रश्न 67- संसारचक्र का मूलकारण कौन है और क्यों है ?

उत्तर - संसारचक्र का मूलकारण एकमात्र मिथ्यात्व और राग-द्वेष ही है, क्योंकि मिथ्यात्व, राग-द्वेष के निमित्त से कर्मबन्ध होता है। कर्मबन्ध से गतियों की प्राप्ति होती है। गतियों की प्राप्ति से शरीर का सम्बन्ध होता है। शरीर के सम्बन्ध से इन्द्रियों का सम्बन्ध होता है। इन्द्रियों के सम्बन्ध से विषयग्रहण की इच्छा होती है। विषयग्रहण की इच्छा से राग-द्वेष होता है और फिर राग-द्वेष से कर्मबन्ध होता है। इस प्रकार संसारचक्र चलता ही रहता है।

प्रश्न 68- संसारचक्र का अभाव कैसे हो ?

उत्तर - राग-द्वेष रहित अपने ज्ञायकस्वभाव का आश्रय करे तो कर्मबन्ध नहीं होगा। कर्मबन्ध न होने से गति की प्राप्ति नहीं होगी। गति की प्राप्ति न होने से शरीर का संयोग नहीं होगा। शरीर का संयोग न होने से इन्द्रियों का संयोग नहीं बनेगा। इन्द्रियों का संयोग न होने से विषयग्रहण की इच्छा न रहेगी। जब विषयग्रहण की इच्छा नहीं रहेगी तो संसारचक्र का अभाव हो जावेगा।

जिन-जिनवर और जिनवर वृषभों से कहा हुआ मोक्षमार्ग सम्बन्धी प्रकरण समाप्त हुआ।

॥ जय महावीर-जय महावीर ॥

४

जीव के असाधारण पाँच भाव

नहिं स्थान क्षायिक भाव के, क्षायोपशमिक तथा नहीं
नहिं स्थान उपशम भाव के, होते उदय के स्थान नहीं ॥41॥

प्रश्न 1– अपने आत्मा का हित चाहनेवालों को क्या करना चाहिए ?

उत्तर – अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों से, औदारिक–तैजस–कार्माण–शरीरों से, भाषा से और मन से तो मुझ आत्मा का किसी भी प्रकार का किसी भी अपेक्षा कर्ता–भोक्ता का सम्बन्ध नहीं है। ऐसा जानकर पात्र जीवों को अपने निजभावों की पहचान करनी चाहिए।

प्रश्न 2– अपने निजभावों की पहिचान क्यों करनी चाहिए ?

उत्तर – (1) कौन सा निजभाव, आश्रय करने योग्य है।

(2) कौन सा भाव, छोड़ने योग्य है।

(3) कौन सा भाव, प्रगट करने योग्य है – इन प्रयोजनभूत बातों का निर्णय करने के लिए पाँच असाधारण भावों का स्वरूप जानना आवश्यक है।

प्रश्न 3– पण्डित टोडरमलजी ने इस विषय में क्या कहा है ?

उत्तर – जीव को तत्त्वादिक का निश्चय करने का उद्यम करना चाहिए, क्योंकि इससे औपशमिकादि सम्यक्त्व स्वयमेव होता है। द्रव्यकर्म के उपशमादि, पुद्गल की पर्यायें हैं। जीव उसका कर्ता –हर्ता नहीं है।

प्रश्न 4- जीव के असाधारणभावों के लिए आचार्यों ने कोई सूत्र कहा है?

उत्तर - 'औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्व मौदयिक पारिणामिकौ च' [तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय दूसरा, सूत्र प्रथम]

प्रश्न 5- जीव के असाधारणभाव कितने हैं?

उत्तर - पाँच हैं; (1) औपशमिक, (2) क्षायिक, (3) क्षायोपशमिक, (4) औदयिक, और (5) पारिणामिक - ये पाँच भाव, जीवों के निजभाव है। जीव के अतिरिक्त अन्य किसी में नहीं होते हैं।

प्रश्न 6- इन पाँचों भावों का यह क्रम होने का क्या कारण है?

उत्तर - (1) सबसे कम संख्या औपशमिकभाववाले जीवों की है।

(2) औपशमिकभाववालों से अधिक संख्या, क्षायिकभाव वाले जीवों की है।

(3) क्षायिकभाव वालों से अधिक संख्या, क्षायोपशमिकभाव वाले जीवों की है।

(4) क्षायोपशमिकभाव वालों से भी अधिक संख्या औदयिकभाव वाले जीवों की है।

(5) सबसे अधिक संख्या पारिणामिकभाववाले जीवों की है। इसी क्रम को लक्ष्य में रखकर भावों का क्रम रखा गया है।

प्रश्न 7- कौन-कौन से भाव में, कौन-कौन से जीव आये और कौन-कौन से निकल गये?

उत्तर - (1) पारिणामिकभाव में निगोद से लगाकर सिद्ध तक सब जीव आ गये।

(2) औदयिकभाव में सिद्ध निकल गये।

(3) क्षायोपशमिकभाव में अरहन्त और निकल गये।

(4) क्षायिकभाव में छदमस्थ निकल गये, मात्र अरहन्त – सिद्ध रह गये। (क्षायिकसम्यक्त्वी और क्षायिकचारित्र वाले जीव गौण हैं।)

(5) औपशमिकभाव में मात्र औपशमिक सम्यग्दृष्टि तथा औपशमिकचारित्र वाले जीव रहे।

प्रश्न 8– औपशमिकभाव को प्रथम लेने का क्या कारण है?

उत्तर – तत्त्वार्थसूत्र में भगवान उमास्वामी ने प्रथम अध्याय में प्रथम सम्यग्दर्शन की बात की है क्योंकि इसके बिना, धर्म की शुरुआत नहीं होती है। उसी प्रकार दूसरे अध्याय के प्रथम सूत्र में औपशमिकभाव की बात की है क्योंकि औपशमिकभाव के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता है। इसलिए प्रथम औपशमिकभाव को लिया है।

प्रश्न 9– इन पाँचों भावों से क्या सिद्ध हुआ?

उत्तर – (1) पारिणामिकभाव के बिना, कोई जीव नहीं है।

(2) औदयिकभाव के बिना, कोई संसारी नहीं।

(3) क्षायोपशमिकभाव के बिना, कोई छदमस्थ नहीं।

(4) क्षायिकभाव के बिना अरहंत ओर सिद्ध नहीं, अर्थात् क्षायिकभाव के बिना, केवलज्ञान और मोक्ष नहीं।

(5) औपशमिकभाव के बिना, धर्म की शुरुआत नहीं।

प्रश्न 10– असाधारणभाव किसे कहते हैं?

उत्तर – (1) असाधारण का अर्थ तो यह है कि ये भाव, आत्मा में ही पाये जाते हैं; अन्य पाँच द्रव्यों में नहीं पाये जाते हैं।

(2) आत्मा में किस-किस जाति के भाव (परिणाम) पाये जाते हैं और इनके द्वारा जीव को स्वयं का स्पष्ट ज्ञान, सम्पूर्ण द्रव्य -गुण-पर्याय सहित हो जाता है।

प्रश्न 11- इन भावों के जानने से ज्ञान में स्पष्टता कैसे हो जाती है ?

उत्तर - हानिकारक-लाभदायक परिणामों का ज्ञान हो जाता है जैसे - (1) औदयिकभाव हानिकारक और दु:खरूप है।

(2) औपशमिकभाव और धर्म का क्षायोपशमिकभाव, मोक्षमार्गरूप है।

(3) क्षायिकभाव, मोक्ष स्वरूप है।

(4) पारिणामिकभाव आश्रय करने योग्य ध्येयरूप है।

(5) क्षायिक ज्ञान-दर्शन, वीर्य जीव का पूर्ण स्वभाव, पर्याय में है और क्षायोपशमिक एकदेश स्वभाव भी पर्याय में है। मिथ्यादृष्टि का ज्ञान, मिथ्याज्ञान है; इस प्रकार अच्छे-बुरे परिणामों का ज्ञान हो सकता है।

प्रश्न 12- औपशमिकभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर - कर्मों के उपशम के साथ सम्बन्धवाला आत्मा का जो भाव होता है, उसे औपशमिकभाव कहते हैं।

प्रश्न 13- कर्म का उपशम क्या है ?

उत्तर - आत्मा के पुरुषार्थ का निमित्त पाकर, जड़कर्म का प्रगटरूप फल, जड़कर्मरूप में न आना, वह कर्म का उपशम है।

प्रश्न 14- औपशमिकभाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद है - औपशमिकसम्यक्त्व, औपशमिकचारित्र।

प्रश्न 15– औपशमिकसम्यक्त्व और औपशमिकचारित्र क्या है ?

उत्तर – औपशमिकसम्यक्त्व, श्रद्धागुण की क्षणिक स्वभाव-अर्थपर्याय है और औपशमिकचारित्र, चारित्रगुण की क्षणिक स्वभावअर्थपर्याय है। यह दोनों भाव, सादिसान्त हैं।

प्रश्न 16– औपशमिकसम्यक्त्व और औपशमिकचारित्र कौन-कौन से गुणस्थान में होता है ?

उत्तर – औपशमिकसम्यक्त्व, चौथे से सातवें गुणस्थान तक हो सकता है। और औपशमिकचारित्र, मात्र ग्यारहवें गुणस्थान में होता है।

प्रश्न 17– क्षायिकभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर – कर्मों के सर्वथा नाश के साथ सम्बन्धवाला आत्मा के जो अत्यन्त शुद्धभाव होता है, उसे क्षायिकभाव कहते हैं।

प्रश्न 18– कर्म का क्षय क्या है ?

उत्तर – आत्मा के पुरुषार्थ का निमित्त पाकर, कर्म आवरण का नाश होना, वह कर्म का क्षय है।

प्रश्न 19– क्षायिकभाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर – नौ भेद हैं :– (1) क्षायिकसम्यक्त्व, (2) क्षायिकचारित्र, (3) क्षायिकज्ञान, (4) क्षायिकदर्शन, (5) क्षायिकदान, (6) क्षायिकलाभ, (7) क्षायिकउपभोग, (8) क्षायिकभोग, (9) क्षायिकवीर्य। इनको क्षायिकलब्धि भी कहते हैं।

प्रश्न 20– ये नौ क्षायिकभाव क्या हैं ?

उत्तर – आत्मा के भिन्न-भिन्न अनुजीवी गुणों की क्षायिक स्वभावअर्थपर्यायें हैं।

प्रश्न 21- ये नौ क्षायिकभाव कब प्रगट होते हैं और कब तक रहते हैं ?

उत्तर - यह भाव तेरहवें गुणस्थान में प्रगट होकर, सिद्धदशा में अनन्त काल तक धाराप्रवाहरूप में सादि-अनन्त रहते हैं। क्षायिकसम्यक्त्व किसी-किसी को चौथे गुणस्थान में, किसी-किसी को पाँचवें में, किसी-किसी को छठवें में, किसी-किसी को सातवें गुणस्थान में हो जाता है। क्षायिकचारित्र बारहवें गुणस्थान में प्रकट हो जाता है और प्रगट होने पर सादि-अनन्त रहता है।

प्रश्न 22- क्षायोपशमिकभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर - कर्मों के क्षयोपशम के साथ सम्बन्धवाला आत्मा का जो भाव होता है, उसे क्षायोपशमिकभाव कहते हैं।

प्रश्न 23- कर्म का क्षयोपशम क्या है ?

उत्तर - आत्मा के पुरुषार्थ का निमित्त पाकर, कर्म का स्वयं अंशतः क्षय और अशतः उपशमरूप हो जाना, यह कर्म का क्षयोपशम है।

प्रश्न 24- क्षायोपशमिकभाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर - 18 भेद हैं - चार ज्ञान [मति, श्रुत अवधि, मनःपर्यय],

तीन अज्ञान [कुमति, कुश्रुत, कुअवधि], तीन दर्शन [चक्षु, अचक्षु, अवधि], पाँच क्षायोपशमिक [दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य], एक क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, एक क्षायोपशमिकचारित्र, एक संयमासंयम। ये सब भाव, सादि-सान्त हैं।

प्रश्न 25- 18 क्षायोपशमिकभाव किस-किस गुण की कौन-कौन सी पर्यायें हैं ?

उत्तर - चार ज्ञान = यह ज्ञानगुण की एकदेश स्वभाव अर्थपर्यायें हैं। तीन अज्ञान = यह ज्ञानगुण की विभाव अर्थपर्यायें हैं। तीन दर्शन

= यह दर्शनगुण की अर्थपर्यायें हैं। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य, यह आत्मा में पाँच स्वतन्त्र गुण हैं। ये पाँच स्वतन्त्र गुण, एक देश स्वभावअर्थपर्यायें हैं और अज्ञानी की विभावअर्थपर्यायें हैं। (1) क्षायोपशमिकसम्यक्त्व = श्रद्धागुण की क्षायोपशमिक स्वभाव अर्थपर्याय है। (2) क्षायोपशमिकसंयम और संयमासंयम=चारित्रगुण की एकदेश स्वभावअर्थपर्यायें हैं।

प्रश्न 26- यह क्षायोपशमिकभाव कौन-कौन से गुणस्थान में पाये जाते हैं?

उत्तर - (1) चार ज्ञान=चौथे से बारहवें गुणस्थानों तक पाये जाते हैं। (2) तीन अज्ञान=पहले तीन गुणस्थानों में पाये जाते हैं। (3) तीन दर्शन और पाँच दानादिक=पहले से बारहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं। (4) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व=चौथे से सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है। (5) संयमासंयम=पाँचवें गुणस्थान में पाया जाता है। (6) क्षायोपशमिकसंयम (चारित्र) छठे से दसवें गुणस्थान तक पाया जाता है।

प्रश्न 27- औदयिकभाव किसे कहते हैं?

उत्तर - कर्मों के उदय के साथ सम्बन्ध रखनेवाला आत्मा का जो विकारीभाव होता है, उसे औदयिकभाव कहते हैं।

प्रश्न 28- औदयिकभाव के कितने भेद हैं?

उत्तर - 21 भेद हैं ; चार गतिभाव; चार कषायभाव; तीन लिंगभाव; एक मिथ्यादर्शनभाव; एक अज्ञानभाव; एक असंयमभाव; एक असिद्धभाव; छह लेश्याभाव।

प्रश्न 29- गति नाम का औदयिकभाव कितने प्रकार का है?

उत्तर - दो प्रकार का है। (1) जीव के गति विषयक मोहभाव जो बन्ध का कारण है, वह औदयिकभाव है।

(2) जीव में सूक्ष्मत्व प्रतिजीवीगुण है उसका अशुद्धपरिणमन चौदहवें गुणस्थान तक है, वह नैमित्तिक है और अघातिकर्मों में नामकर्म और नामकर्म के अन्तर्गत गतिकर्म तथा अङ्गोपाङ्ग नामकर्म निमित्त है। यह गतिरूप औदयिकभाव जीव का उपादानपरिणाम है, जो बन्ध का कारण नहीं है।

गतिनामकर्म के सामने जीव की मनुष्य आकारादि विभाव-अर्थपर्याय और विभावव्यञ्जनपर्याय में स्थूलपने का व्यवहार संसारदशा तक चालू रहता है, यह गति औदयिकभाव जीव में है, जो चौदहवें गुणस्थान तक रहता है। याद रहे-अघाति के उदयवाला गति औदयिकभाव तो बन्ध का कारण नहीं है परन्तु मोहरूप गति औदयिकभाव, बन्ध का कारण होने से हानिकारक है।

प्रश्न 30- मोहरूप गति औदयिकभाव में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर - मिथ्यात्व-राग-द्वेषरूप गतिसम्बन्धी औदयिकभाव, नैमित्तिक है और दर्शनमोहनीय का उदय, निमित्त है।

प्रश्न 31- अघाति गति औदयिकभाव में, मोहज गति सम्बन्धी राग-द्वेष-मिथ्यात्व को क्यों मिला दिया ?

उत्तर - मोह के उदय को गति के उदय पर आरोप करके निरूपण करने की आगम की पद्धति है; इसलिए चारों गतियों में जो उस-उस गति के अनुसार मिथ्यात्व - राग-द्वेषरूप भाव हैं - वे ही उस गति के औदयिकभाव हैं।

प्रश्न 32- मोह-राग-द्वेष सम्बन्धी गति औदयिकभाव को जरा दृष्टान्त से समझाओ ?

उत्तर - जैसे - बिल्ली को चूहा पकड़ने का मोहज भाव है, वह उस तिर्यञ्चगति का गति औदयिकभाव के नाम से लोक तथा

आगम में प्रसिद्ध है। इसी प्रकार चारों गतियों में उस-उस प्रकार के गति औदयिकभाव हैं। जैसे - (1) स्त्री में स्त्री जैसा राग; पुरुष में पुरुष जैसा राग; देव में देव जैसा राग; बन्दर में बन्दर जैसा राग; कुत्तों में कुत्तों जैसा राग; यह गति औदयिकभावों का सार है।

प्रश्न 33- गति के अनुसार ऐसा औदयिकभाव क्यों है?

उत्तर - 'जैसी गति, वैसी मति' ऐसा निमित्त-नैमित्तिक -सम्बन्ध है।

प्रश्न 34- गति औदयिकभाव में निमित्त-नैमित्तिक क्या है?

उत्तर - (1) सूक्ष्मत्व प्रतिजीवीगुण की विकारीदशा, नैमित्तिक है और नामकर्म का उदय, निमित्त है परन्तु यह बन्ध का कारण नहीं है।

प्रश्न 35- मोहज गति औदयिकभाव में निमित्त-नैमित्तिक कौन है?

उत्तर - गतिसम्बन्धी मोह-राग-द्वेषभाव, नैमित्तिक है और दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय का उदय, निमित्त है।

प्रश्न 36- कषाय, लिंग, असंयम में निमित्त-नैमित्तिक क्या है?

उत्तर - चारित्रगुण की विकारीदशा, नैमित्तिक है और चारित्र -मोहनीय का उदय, निमित्त है।

प्रश्न 37- अज्ञान औदयिकभाव में निमित्त-नैमित्तिक क्या है?

उत्तर - आत्मा में जितना ज्ञान, सुज्ञानरूप से या कुमति आदि रूप से विद्यमान है, वह सब तो क्षायोपशमिक ज्ञानभाव है और जीव का पूर्ण स्वभाव, केवलज्ञान है।

जितना ज्ञान का प्रगटपना है, उतना क्षायोपशमिक ज्ञानभाव है और जितना ज्ञान का अप्रगटपना है, उसको अज्ञान औदयिकभाव कहते है; अत: अज्ञानभाव, नैमित्तिक है और ज्ञानावरणीय का उदय, निमित्त है। यह संक्लेशरूप तो नहीं है, क्योंकि संक्लेशरूप तो राग -द्वेष-मोहभाव है; इसीलिए यह बन्ध का कारण नहीं है किन्तु दु:खरूप अवश्य है क्योंकि इसके कारण स्वभाविकज्ञान और सुख का अभाव हो रहा है।

प्रश्न 38- मिथ्यादर्शन में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर - मिथ्यादर्शन, नैमित्तिक है और दर्शनमोहनीय का उदय, निमित्त है।

प्रश्न 39- असिद्धत्वभाव में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर - जैसे, सिद्धदशा को सिद्धत्वभाव कहते हैं; सिद्धत्वभाव, नैमित्तिक है और कर्मों का सर्वथा अभाव, निमित्त है; उसी प्रकार पहिले गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक असिद्धत्वभाव रहता है, वह नैमित्तिक है और आठों कर्मों का उदय, निमित्त है।

प्रश्न 40- आपने असिद्धत्वभाव को नैमित्तिक कहा और आठों कर्मों को निमित्त कहा, परन्तु असिद्धत्वभाव चौदहवें गुणस्थान तक होता है, वहाँ आठों कर्मों का निमित्त कहाँ है ?

उत्तर - जितनी मात्रा में भी आत्मा में संसारतत्त्व है, वह असिद्धत्वभाव है; किसी भी प्रकार हो, चाहे वह केवल योगजनित हो या प्रतिजीवीगुणों का ही विपरीत परिणमन हो, सब असिद्धत्वभाव है, वह नैमित्तिक है; जहाँ पर जैसा-जैसा कर्म का उदय हो, उतना निमित्त समझना। जैसे अरहन्तदशा में प्रतिजीवीगुणों का विकार, नैमित्तिक है और चार अघातियाकर्म, निमित्त हैं।

प्रश्न 41– लेश्या के भावों में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर – कषाय से अनुरञ्जित योग को लेश्या कहते हैं। अत: लेश्या का भाव, नैमित्तिक है जो योग सहचर है और मोहनीयकर्म का उदय, निमित्त है।

प्रश्न 42– औदयिकभावों से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – अज्ञान और असिद्धत्वभाव को छोड़कर, 19 औदयिकभाव तो मोहभाव के अवान्तर भेद हैं; बन्धसाधक हैं; जीव के लिए महा अनिष्टकारक हैं; अनन्त संसार का कारण हैं। वैसे वास्तव में तो मिथ्यात्व (मोह) ही अनन्त संसार है परन्तु मोह निमित्त होने से गति आदि को दु:ख का कारण कहा जाता है; है नहीं। अज्ञान औदयिकभाव, अभावरूप है, इसमें सीधा पुरुषार्थ नहीं चल सकता है किन्तु मोहभावों का अभाव होने पर, वह स्वयं ही नष्ट हो जाता है; इसलिए एक परमपारिणामिकभाव का आश्रय लेकर औदयिकभावों का अभाव करके, पात्र जीवों को स्वभाविक सिद्धत्वपना पर्याय में प्रगट कर लेना चाहिए – यह औदयिकभावों के जानने का सार है।

प्रश्न 43– क्या सर्व औदयिकभाव बन्ध के कारण हैं ?

उत्तर – ऐसा नहीं समझना चाहिए कि सर्व औदायिकभाव बन्ध के कारण हैं; मात्र मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग – ये चार, बन्ध के कारण हैं। *(धवला, पुस्तक 7, पृष्ठ 9)*

प्रश्न 44– क्या कर्म का उदय, बन्ध का कारण है ?

उत्तर – (1) यदि जीव, मोह के उदय में युक्त हो तो बन्ध होता है; द्रव्यमोह का उदय होने पर भी, यदि जीव शुद्धात्मभावना (एकाग्रता) के बल द्वारा, मोहभावरूप परिणमित न हो तो बन्ध नहीं होता।

(2) यदि जीव को कर्मोदय के कारण बन्ध होता हो तो संसारी को सर्वदा कर्म का उदय विद्यमान है; इसलिए उसे सर्वदा बन्ध ही होगा, कभी मोक्ष होगा ही नहीं।

(3) इसलिए ऐसा समझना कि कर्म का उदय, बन्ध का कारण नहीं है किन्तु जीव को मोहभावरूप परिणमन ही बन्ध का कारण है। *(श्री प्रवचनसार, हिन्दी, जयसेनाचार्य गाथा 45 की टीका से)*

प्रश्न 45- औदयिकभावों में जो अज्ञानभाव है और क्षायोपशमिकभावों में अज्ञानभाव है, उसमें क्या अन्तर है ?

उत्तर - 'औदयिकभावों में जो अज्ञानभाव है, वह अज्ञानरूप है और क्षायोपशमिकभाव में जो अज्ञानभाव है, वह मिथ्यादर्शन के कारण दूषित होता है।'

[मोक्षशास्त्र, हिन्दी, पण्डित फूलचन्दजी सम्पादित पृष्ठ 31 का फुटनोट]

प्रश्न 46- पारिणामिकभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर - (1) कर्मों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम अथवा उदय की अपेक्षा रखे बिना, जीव का जो स्वभावमात्र हो, उसे पारिणामिक -भाव कहते हैं।

(2) जिनका निरन्तर सद्भाव रहे, उसे पारिणामिकभाव कहते हैं। सर्व भेद जिसमें गर्भित हैं, ऐसा चैतन्यभाव ही जीव का पारिणामिक -भाव है। *[श्री मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 194]*

प्रश्न 47- पाँच भावों का कोई दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर - (1) जैसे - एक काँच के गिलास में पानी और मिट्टी एकमेक दिखती है; उसी प्रकार जीव के जिस भाव के साथ कर्म के उदय का सम्बन्ध है, वह औदयिकभाव है।

(2) कीचड़सहित पानी के गिलास में कतकफल डालने से कीचड़ नीचे बैठ गया, निर्मल पानी ऊपर आ गया; उसी प्रकार कर्म

के उपशम के साथ सम्बन्धवाले जीव के भाव को औपशमिकभाव कहते हैं।

(3) कीचड़ बैठे हुए पानी के गिलास में कंकड़ डाली तो कोई कोई मैल ऊपर आ गया; उसी प्रकार कर्म के क्षयोपशम के साथ सम्बन्धवाले जीव के भाव को क्षायोपशमिकभाव कहते हैं।

(4) कीचड़ अलग, पानी अलग किया; उसी प्रकार कर्म के क्षय के साथ सम्बन्धवाला भाव, क्षायिकभाव है।

(5) जिसमें कीचड़ आदि किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है; उसी प्रकार जिसमें कर्म के उदय, क्षय, क्षयोपशम और उपशम की कोई भी अपेक्षा नहीं है, ऐसा अनादि-अनन्त एकरूप चैतन्यभाव, वह पारिणामिकभाव है।

प्रश्न 48- पारिणामिकभाव के कितने भेद हैं?

उत्तर - (1) जीवत्व, (2) भव्यत्व, (3) अभव्यत्व।

प्रश्न 49- जीवत्वभाव के पर्यायवाची शब्द क्या -क्या हैं?

उत्तर - ज्ञायकभाव, पारिणामिकभाव, परमपारिणामिकभाव, परमपूज्य पञ्चम भाव, कारणशुद्धपर्याय आदि अनेक नाम हैं।

प्रश्न 50- पारिणामिकभाव क्या बताता है?

उत्तर - जीव का अनादिअनन्त शुद्ध चैतन्यस्वभाव है, अर्थात् भगवान बनने की शक्ति है, यह पारिणामिकभाव सिद्ध करता है।

प्रश्न 51- औदयिकभाव क्या बताता है?

उत्तर - (1) जीव में भगवान बनने की शक्ति होने पर भी, उसकी अवस्था में विकार है, ऐसा औदयिकभाव सिद्ध करता है।

(2) जड़कर्म के साथ जीव का अनादिकाल से एक-एक

समय का सम्बन्ध है, जीव उसके वश होता है; इसलिए विकार होता है किन्तु कर्म के कारण विकारभाव नहीं होता, ऐसा भी औदयिकभाव सिद्ध करता है।

प्रश्न 52- क्षायोपशमिकभाव क्या बताता है ?

उत्तर - (1) जीव, अनादि से विकार करता आ रहा है तथापि वह सर्वथा विकाररूप होकर जड़ नहीं हो जाता क्योंकि उसके ज्ञान, दर्शन तथा वीर्य का अंशतः विकास तो सदैव रहता है, ऐसा क्षायोपशमिकभाव सिद्ध करता है।

(2) सच्ची समझ के पश्चात् जीव ज्यों-ज्यों सत्य पुरुषार्थ बढ़ाता है, त्यों-त्यों मोह अंशतः दूर होता जाता है, ऐसा भी क्षायोपशमिकभाव सिद्ध करता है।

प्रश्न 53- औपशमिकभाव क्या बताता है ?

उत्तर - (1) आत्मा का स्वरूप यथार्थता समझकर जब जीव अपने पारिणामिकभाव का आश्रय करता है, तब औदयिकभाव दूर होता है, ऐसा औपशमिकभाव सिद्ध करता है।

(2) यदि जीव, प्रतिहतभाव से पुरुषार्थ में आगे बढ़े तो चारित्र -मोह स्वयं दब जाता है और औपशमिकचारित्र प्रगट होता है, ऐसा भी औपशमिकभाव सिद्ध करता है।

प्रश्न 54- क्षायिकभाव क्या सिद्ध करता है ?

उत्तर - (1) अप्रतिहत पुरुषार्थ द्वारा पारिणामिकभाव का आश्रय बढ़ने पर, विकार का नाश हो सकता है, ऐसा क्षायिकभाव सिद्ध करता है।

(2) यद्यपि कर्म के साथ का सम्बन्ध प्रवाहरूप से अनादिकालीन है, तथापि प्रति समय पुराने कर्म जाते हैं और नये

कर्मों का सम्बन्ध होता रहता है। इस अपेक्षा से उसमें प्रारम्भिकता रहने से (सादि होने से) कर्मों के साथ का सम्बन्ध सर्वथा दूर हो जाता है, ऐसा क्षायिकभाव सिद्ध करता है।

प्रश्न 55– औपशमिकभाव, साधकदशा का क्षायोपशमिक –भाव और क्षायिकभाव क्या सिद्ध करते हैं?

उत्तर – (1) कोई निमित्त, विकार नहीं कराता, किन्तु जीव स्वयं निमित्ताधीन होकर विकार करता है।

(2) जीव जब पारिणामिकभावरूप अपने स्वभाव की ओर लक्ष्य करके स्वाधीनता प्रगट करता है, तब निमित्त की आधीनता दूर होकर शुद्धता प्रगट होती है, ऐसा औपशमिकभाव, साधकदशा का क्षयोपशमभाव और क्षायिकभाव सिद्ध करता है।

प्रश्न 56– पाँच भावों में से किस भाव की ओर सन्मुखता से धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है?

उत्तर – (1) पारिणामिकभाव के अतिरिक्त चारों भाव क्षणिक हैं।

(2) क्षायिकभाव तो वर्तमान में है ही नहीं।

(3) औपशमिकभाव हो तो वह अल्पकाल टिकता है।

(4) औदयिकभाव और क्षायोपशमिकभाव भी प्रति समय बदलते रहते हैं।

(5) इसलिए इन चारों भावों पर लक्ष्य करे तो एकाग्रता नहीं हो सकती है और ना ही धर्म प्रगट हो सकता है।

(6) त्रिकाल स्वभावी पारिणामिकभाव का माहात्म्य जानकर, उस ओर जीव अपनी वृत्ति करे (झुकाव करे) तो धर्म का प्रारम्भ होता है और उस भाव की, एकाग्रता के बल से वृद्धि होकर धर्म की पूर्णता होती है।

प्रश्न 57- ज्ञान-दर्शन-वीर्यगुण में औपशमिकभाव क्यों नहीं होता है ?

उत्तर - इनका औपशमिक हो जावे तो केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि प्रगट हो जावे और कर्म सत्ता में पड़ा रहे, लेकिन ऐसा नहीं हो सकता है; इसलिए ज्ञान-दर्शन-वीर्यगुण में औपशमिकभाव नहीं होता है।

प्रश्न 58- क्या मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान, पारिणामिकभाव हैं ?

उत्तर - नहीं; ये तो ज्ञानगुण की पाँच पर्यायें हैं; पारिणामिकभाव नहीं है।

प्रश्न 59- जीव में विकार है, यह कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर - औदयिकभाव बताता है।

प्रश्न 60- विकार में कर्म का उदय निमित्त होने पर भी, कर्म विकार नहीं कराता है, यह कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर - औदयिकभाव बताता है।

प्रश्न 61- विकार होने पर भी ज्ञान, दर्शन, वीर्य का सर्वथा अभाव नहीं होता है, यह कौन सा भाव बताता है ?

उत्तर - क्षायोपशमिकभाव बताता है

प्रश्न 62- पात्रजीव अपने मानसिकज्ञान में (1) मैं आत्मा हूँ और मेरे में भगवान बनने की शक्ति है; (2) विकार एक समय का औदयिकभाव है; और (3) मैं अपने स्वभाव का आश्रय लूँ, तो कल्याण हो-ऐसा निर्णय कर सकता है, यह कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर - अज्ञानदशा में पात्र जीवों को ऐसा क्षायोपशमिकभाव बताता है।

प्रश्न 63– धर्म की शुरुआत कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर – औपशमिकभाव, धर्म का क्षायोपशमिकभाव और श्रद्धा का क्षायिकभाव बताता है।

प्रश्न 64– ग्यारहवें गुणस्थान में जो चारित्र है, वह कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर – चारित्र का औपशमिकभाव बताता है।

प्रश्न 65– परिपूर्णशुद्धि का प्रगट होना, कौनसा भाव बताता है ?

उत्तर – क्षायिकभाव बताता है।

प्रश्न 66– किस भाव के आश्रय से धर्म की शुरुआत होती है ?

उत्तर – एक मात्र पारिणामिकभाव के आश्रय से ही होती है।

प्रश्न 67– अज्ञानी का कुमति आदि ज्ञान, दुःखरूप है या सुखरूप है ?

उत्तर – अज्ञानी का ज्ञान, दुःखरूप नहीं है; उसके साथ मोह का जुड़ान होने के कारण, दुःख का कारण कहा जाता है क्योंकि वह अपने ज्ञान को प्रयोजनभूत कार्य में ना लगाकर, अप्रयोजनभूत कार्य में लगाता है।

प्रश्न 68– सिद्ध अवस्था में कितने भाव होते हैं ?

उत्तर – दो भाव होते हैं – पारिणामिकभाव और क्षायिकभाव।

प्रश्न 69– चौदहवें गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ?

उत्तर – तीन भाव होते हैं – पारिणामिक, क्षायिक और औदयिकभाव।

प्रश्न 70- तेरहवें गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ?

उत्तर - तीन भाव होते हैं - पारिणामिक, क्षायिक, और औदयिकभाव।

प्रश्न 71- बारहवें गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ?

उत्तर - चार भाव होते हैं - पारिणामिकभाव, श्रद्धा व चारित्र का क्षायिकभाव, औदायिकभाव और क्षायोपशमिकभाव।

प्रश्न 72- ग्यारहवें गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ?

उत्तर - (1) यदि क्षायिक सम्यदृष्टि जीव, उपशम श्रेणी माँडता है तो ग्यारहवें गुणस्थान में पाँचों भाव होते हैं।

(2) यदि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि, श्रेणी माँडता है तो ग्यारहवें गुणस्थान में क्षायिकभाव को छोड़कर, चार भाव होते हैं।

प्रश्न 73- दशवें गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ?

उत्तर - (1) क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव हैं तो औपशमिकभाव को छोड़कर, चार भाव हैं।

(2) यदि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव है तो क्षायिकभाव को छोड़कर, चार भाव होते हैं।

प्रश्न 74- आठवें और नवें गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ?

उत्तर - (1) यदि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव है तो औपशमिकभाव को छोड़कर, चार भाव हैं।

(2) यदि द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव है तो क्षायिकभाव को छोड़कर, चार भाव हैं।

प्रश्न 75- सातवें गुणस्थान में कितने भाव होते हैं ?

उत्तर - (1) क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो तो औपशमिकभाव को छोड़कर, चार होते हैं।

(2) औपशमिक सम्यग्दृष्टि हो तो क्षायिकभाव को छोड़कर, चार भाव होते हैं।

(3) क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि हो तो क्षायिक और औपशमिक को छोड़कर, तीन भाव होते हैं।

प्रश्न 76- छठे, पाँचवें, चौथे गुणस्थान में कितने भाव होते हैं?

उत्तर - (1) क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो तो औपशमिकभाव को छोड़कर, चार होते हैं।

(2) औपशमिक सम्यग्दृष्टि हो तो क्षायिकभाव को छोड़कर, चार होते हैं।

(3) क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि हो तो क्षायिकभाव और औपशमिक-भाव को छोड़कर, तीन भाव होते हैं।

प्रश्न 77- तीसरे गुणस्थान में कितने भाव होते हैं?

उत्तर - पारिणामिक, औदयिक और क्षायोपशमिकभाव तथा दर्शनमोहनीय की अपेक्षा से पारिणामिकभाव, इस प्रकार चार होते हैं।

प्रश्न 78- दूसरे गुणस्थान में कितने भाव होते हैं?

उत्तर - पारिणामिकभाव, औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव, तथा दर्शनमोहनीय की अपेक्षा से पारिणामिकभाव, इस प्रकार चार होते हैं।

प्रश्न 79- पहले गुणस्थान में कितने भाव होते हैं?

उत्तर - पारिणामिकभाव, औदयिकभाव, और क्षायोपशमिकभाव - ये तीन भाव होते हैं।

प्रश्न 80- चौथे से चोदहवें गुणस्थान तक कौन-सा भाव हो सकता है?

उत्तर - क्षायिकभाव हो सकता है।

प्रश्न 81- चौथे से ग्यारहवें तक कौन-सा भाव हो सकता है ?

उत्तर - औपशमिकभाव हो सकता है।

प्रश्न 82- पहले गुणस्थान से चोदहवें गुणस्थान तक कौन-सा भाव होता है ?

उत्तर - औदयिकभाव होता है।

प्रश्न 83- पहले गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक कौन-सा भाव होता है ?

उत्तर - क्षायोपशमिकभाव हो सकता है।

प्रश्न 84- सिद्ध और सब संसारियों में भी होवे, ऐसा कौन-सा भाव है ?

उत्तर - पारिणामिकभाव, सिद्ध और संसारी दोनों में है।

प्रश्न 85- सिद्धों में ना होवे, ऐसे कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर - औदयिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और औपशमिकभाव सिद्धों में नहीं है।

प्रश्न 86- संसारी में ना होवे, ऐसे कौन-कौन से भाव है ?

उत्तर - ऐसा कोई भी भाव नहीं है क्योंकि समुच्चयरूप से संसारियों में पाँचों भाव हो सकते हैं।

प्रश्न 87- सब संसारी जीवों में पाया जाये, वह कौन-सा भाव है ?

उत्तर - औदयिकभाव है, जो निगोद से लेकर चोदहवें गुणस्थान तक सब जीवों में है।

प्रश्न 88- निगोद से लगाकर सिद्ध तक के ज्यादा जीवों में होवे, वह कौन-सा भाव है ?

उत्तर - औदयिकभाव है।

प्रश्न 89– संसार में सबसे थोड़े जीवों में होवे, वह कौन –सा भाव है ?

उत्तर – औपशमिकभाव है।

प्रश्न 90– सम्पूर्ण छद्‌मस्थ जीवों को होवे, वह कौन सा भाव है ?

उत्तर – औदयिकभाव और क्षायोपशमिकभाव है।

प्रश्न 91– ज्ञानगुण, दर्शनगुण और वीर्यगुण की पर्याय के साथ कौन से भाव का सम्बन्ध नहीं है ?

उत्तर – औपशमिकभाव का सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न 92– जब जीव के प्रथम धर्म की शुरुआत होती है, तब कौन–कौन से भाव होते हैं ?

उत्तर – औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक–भाव।

प्रश्न 93– देवगति में कौन–कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर – देवगति में पाँचों भाव हो सकते हैं।

प्रश्न 94– मनुष्यगति में कौन–कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर – मनुष्यगति में पाँचों भाव हो सकते हैं

प्रश्न 95– नरकगति में कौन–कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर – नरकगति में पाँचों भाव हो सकते हैं

प्रश्न 96– तिर्यञ्चगति में कौन–कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर – तिर्यञ्चगति में पाँचों भाव हो सकते हैं

प्रश्न 97– श्रद्धा का क्षायिकभाव कौन–से गुणस्थान में और कहाँ तक हो सकता है ?

उत्तर - चौथे से चोदहवें गुणस्थान तक तथा सिद्धदशा में होता है।

प्रश्न 98- ज्ञानगुण का क्षायिकभाव, कौन-से गुणस्थान में होता है ?

उत्तर - तेरहवें गुणस्थान से लेकर, सिद्धदशा तक ज्ञान का क्षायिकभाव होता है।

प्रश्न 99- चारित्र का क्षायिकभाव, कौन-से गुणस्थान में होता है ?

उत्तर - बारहवें गुणस्थान से लेकर, सिद्धदशा तक होता है।

प्रश्न 100- पाँच भावों में से सबसे कम भाव, किस जीव में होते हैं ?

उत्तर - सिद्ध जीवों में पारिणामिक और क्षायिकभाव ही होते हैं।

प्रश्न 101- एक साथ पाँच भाव किस जीव में होते हैं ?

उत्तर - यदि क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणी माँडे तो ग्यारहवें गुणस्थान में पाँचों भाव हो सकते हैं।

प्रश्न 102- पंदरहवाँ गुणस्थान कौन-सा है ?

उत्तर - पंदरहवाँ गुणस्थान नहीं होता है परन्तु चोदहवें गुणस्थान से पार सिद्धदशा है, उसे किसी अपेक्षा पंदरहवाँ गुणस्थान कह देते हैं; है नहीं।

प्रश्न 103- औपशमिक सम्यक्त्वी जीव, क्षपकश्रेणी माँड सकता है ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं।

प्रश्न 104- क्या क्षायिकसम्यक्त्वी को उपशमश्रेणी हो सकती है ?

उत्तर - हाँ, हो सकती है।

प्रश्न 105– क्या क्षपकश्रेणीवाला जीव, स्वर्ग में जावे ?

उत्तर – कभी भी नहीं, क्योंकि वह नियम से मोक्ष ही जाता है।

प्रश्न 106– औपशमिकसम्यक्त्वी जीव, स्वर्ग में जावे ?

उत्तर – हाँ जावे।

प्रश्न 107– मनःपर्ययज्ञान, कौन–सा भाव है ?

उत्तर – क्षायोपशमिकभाव है।

प्रश्न 108– केवलज्ञान, कौन–सा भाव है ?

उत्तर – क्षायिकभाव है।

प्रश्न 109– सम्यग्दर्शन, कौन–सा भाव है ?

उत्तर – औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव तीनों हो सकते हैं, परन्तु एक समय में एक ही होगा; तीन या दो नहीं।

प्रश्न 110– पूर्ण वीतरागता कौन–सा भाव है ?

उत्तर – औपशमिक और क्षायिकभाव है।

प्रश्न 111– वर्तमान समय में भरतक्षेत्र में उत्पन्न जीवों को कौन–कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर – औपशमिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक–भाव हो सकते हैं परन्तु क्षायिकभाव नहीं हो सकता है।

प्रश्न 112– आठ कर्मों में से उदय, कितने कर्मों में होता है ?

उत्तर – उदय आठों में होता है।

प्रश्न 113– आठ कर्मों में से क्षय, कितने कर्मों में होता है ?

उत्तर – क्षय भी आठों में होता है।

प्रश्न 114– आठ कर्मों में से उपशम, कितने कर्मों में होता है ?

उत्तर – मात्र मोहनीयकर्म में ही होता है।

प्रश्न 115- आठों कर्मों में से क्षयोपशम, कितने कर्मों में होता है ?

उत्तर - क्षयोपशम, चार घातीकर्मों में होता है।

प्रश्न 116- अनादिअनन्त कौन-सा भाव है ?

उत्तर - पारिणामिकभाव है।

प्रश्न 117- सादिअनन्त कौन-सा भाव है ?

उत्तर - क्षायिकभाव है।

प्रश्न 118- अनादिसान्त कौन-सा भाव है ?

उत्तर - औदयिकभाव और क्षायोपशमिकभाव है।

प्रश्न 119- सादिसान्त कौन-सा भाव है ?

उत्तर - औपशमिकभाव है।

प्रश्न 120- द्रव्यलिङ्गी मुनि में कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर - औदयिक, पारिणामिक और क्षायोपशमिकभाव हैं।

प्रश्न 121- धर्मात्मा को कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर - धर्मात्मा को पाँचों भाव हो सकते हैं।

प्रश्न 122- कुन्दकुन्द भगवान को वर्तमान में कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर - क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिकभाव है।

प्रश्न 123- विदेहक्षेत्र के धर्मात्माओं को कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर - पाँचों भाव हो सकते हैं।

प्रश्न 124- पहले गुणस्थान में होवे और तेरहवें-चोदहवें गुणस्थान में ना होवे, ऐसा कौन सा भाव है ?

उत्तर - क्षायोपशमिकभाव है।

प्रश्न 125- पहले गुणस्थान में भी होवे और तेरहवें-चोदहवें गुणस्थान में भी होवे, परन्तु सिद्ध में ना होवे, वह कौन सा भाव है ?

उत्तर - औदयिकभाव है।

प्रश्न 126- पहले गुणस्थान में भी ना हो और बारहवें, तेरहवें तथा चोदहवें गुणस्थान में भी न हो, ऐसा कौन सा भाव है ?

उत्तर - औपशमिकभाव है।

प्रश्न 127- संसारदशा में बराबर रहनेवाला कौन-सा भाव है ?

उत्तर - औदयिकभाव है।

प्रश्न 128- एक बार प्राप्त होने पर, कभी भी अभाव न होवे, ऐसा कौन-सा भाव है ?

उत्तर - क्षायिकभाव है।

प्रश्न 129- ज्ञान का क्षायिकभाव कौनसी गति में हो सकता है ?

उत्तर - मात्र मनुष्यगति में हो सकता है, दूसरी गतियों में नहीं हो सकता है।

प्रश्न 130- श्रद्धा का क्षायिकभाव कौन-सी गति में हो सकता है ?

उत्तर - चारों गतियों में हो सकता है।

प्रश्न 131- चारित्र का क्षायिकभाव कौन-सी गति में हो सकता है ?

उत्तर - मात्र मनुष्यगति में हो सकता है, दूसरी गतियों में नहीं हो सकता है।

प्रश्न 132- श्रद्धा का क्षायोपशमिकभाव कौन-कौनसी गति में हो सकता है ?

उत्तर - चारों गतियों में हो सकता है।

प्रश्न 133- जो चारित्र नाम पावे, ऐसा चारित्र का क्षायोपशमिकभाव कौन-सी गति में हो सकता है ?

उत्तर - मनुष्य और तिर्यञ्च में ही हो सकता है।

प्रश्न 134- ज्ञान का क्षायोपशमिकभाव ना हो, तब क्या होता है ?

उत्तर - ज्ञान का क्षायिकभाव, अर्थात् केवलज्ञान होता है।

प्रश्न 135- दर्शन का क्षायोपशमिकभाव ना हो, तब क्या होता है ?

उत्तर - दर्शन का क्षायिकभाव, अर्थात् केवलदर्शन होता है।

प्रश्न 136- एक बार नाश होने पर, फिर न आ सके, ऐसा कौन-सा भाव है ?

उत्तर - औपशमिकभाव है।

प्रश्न 137- क्षायोपशमिकभाव का नाश होने पर, कौन -सा गुणस्थान होता है ?

उत्तर - तेरहवाँ और चोदहवाँ गुणस्थान होता है।

प्रश्न 138- एक बार नाश हो जावे, फिर कभी भी उत्पन्न ना हो, ऐसे भाव का क्या नाम है ?

उत्तर - औदयिकभाव है।

प्रश्न 139- राग, कौन-से भाव को बताता है ?

उत्तर - औदयिकभाव को बताता है।

प्रश्न 140– मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, कौन–सा भाव है ?

उत्तर – क्षायोपशमिकभाव है।

प्रश्न 141– मोक्ष, कौन–सा भाव है ?

उत्तर – पूर्ण क्षायिकभाव है।

प्रश्न 142– ज्ञानावरणीय द्रव्यकर्म का सम्पूर्ण नाश होने पर, कौन–सा भाव प्रगट होता है ?

उत्तर – ज्ञान का क्षायिकभाव, अर्थात् केवलज्ञान प्रगट होता है।

प्रश्न 143– औदयिकभाव के साथ सदा ही रहे, उस भाव का क्या नाम है ?

उत्तर – पारिणामिकभाव है।

प्रश्न 144– चौथे गुणस्थान से पहले न होवे, ऐसे कौन –कौन से भाव हैं ?

उत्तर – औपशमिकभाव, धर्म का क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव है।

प्रश्न 145– ग्यारहवें गुणस्थान के बाद ना होवे, ऐसा कौन–सा भाव है ?

उत्तर – औपशमिकभाव है।

प्रश्न 146– बारहवें गुणस्थान के बाद में ना होवे ऐसा कौन–सा भाव है ?

उत्तर – क्षायोपशमिकभाव है।

प्रश्न 147– सबसे कम समय रहनेवाला कौन–सा भाव है ?

उत्तर – औपशमिकभाव है।

प्रश्न 148– साधकभाव के कारणरूप, कौन–कौन से भाव होते हैं ?

उत्तर - औपशमिकभाव, श्रद्धा और चारित्र का क्षायिकभाव और धर्म का क्षायोपशमिकभाव है।

प्रश्न 149- साधकदशा की शुरुआत कौन से भाव से होती है ?

उत्तर - औपशमिकभाव से होती है।

प्रश्न 150- साधकदशा की पूर्णतावाला कौन-सा भाव है ?

उत्तर - क्षायिकभाव है।

प्रश्न 151- सीमन्धरभगवान को इस समय कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर - औदयिकभाव, क्षायिकभाव और पारिणामिकभाव हैं।

प्रश्न 152- महावीरभगवान को इस समय कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर - क्षायिकभाव और पारिणामिकभाव हैं।

प्रश्न 153- सीमन्धरभगवान के गणधर को इस समय कौन-कौन से भाव हो सकते हैं ?

उत्तर - औदयिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकभाव हो सकते हैं।

प्रश्न 154- क्या भगवान के गणधर को उपशमश्रेणी नहीं होती है ?

उत्तर - नहीं होती है; क्योंकि वह उत्कृष्ट ऋद्धियों का स्वामी है।

प्रश्न 155- पाँच भावों में से बन्ध का कारण कौन-सा भाव है ?

उत्तर - औदयिकभाव है।

प्रश्न 156- पाँच भावों में से मोक्ष का कारण कौन-कौन से भाव हैं ?

उत्तर - औपशमिक, क्षायिक और धर्म का क्षायोपशमिकभाव है।

प्रश्न 157- बन्ध-मोक्ष से रहित, भाव का क्या नाम है ?

उत्तर - पारिणामिकभाव है।

प्रश्न 158- औदयिकभाव कौन-कौन से गुणस्थानों में होता है ?

उत्तर - सभी गुणस्थानों में होता है।

प्रश्न 159- औपशमिकभाव के कौन-कौन से गुणस्थान हैं ?

उत्तर - चौथे गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक हैं।

प्रश्न 160- क्षायोपशमिकभाव के कौन-कौन से गुणस्थान हैं ?

उत्तर - पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक हैं।

प्रश्न 161- क्षायिकभाव कौन-कौन से गुणस्थान में हो सकता है ?

उत्तर - क्षायिकभाव चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान में हो सकता है।

प्रश्न 162- औपशमिकभाव वाले कितने जीव होते हैं ?

उत्तर - असंख्यात् होते हैं।

प्रश्न 163- संसार में औपशमिक करता, क्षायिक सम्यग्दृष्टिवाले कितने जीव हैं ?

उत्तर - असंख्यात् गुणा हैं।

प्रश्न 164- जगत में औपशमिक करता, क्षायिकभाववाले कितने जीव हैं?

उत्तर - अनन्तगुणा अधिक हैं।

प्रश्न 165- वर्तमान में सीमन्धरभगवान में ना हो और हमारे में हो, ऐसा कौन-सा भाव है?

उत्तर - क्षायोपशमिकभाव है।

प्रश्न 166- वर्तमान में सीमन्धरभगवान में हो और हमारे में अभी न हो, वह कौन सा भाव है?

उत्तर - क्षायिकभाव है।

प्रश्न 167- सीमन्धरभगवान में भी हो और हमारे में भी हो, ऐसे कौन-कौन से भाव हैं?

उत्तर - औदयिकभाव और पारिणामिकभाव हैं।

प्रश्न 168- केवलज्ञान होने पर, आत्मा में से कौन-सा भाव निकल जाता है?

उत्तर - क्षायोपशमिकभाव निकल जाता है।

प्रश्न 169- एक जीव, अरहन्त से सिद्ध हुआ तो कौन सा भाव पृथक हुआ?

उत्तर - औदयिकभाव पृथक् हुआ।

प्रश्न 170- भाव होने पर भी बन्ध ना हो, क्या ऐसा हो सकता है?

उत्तर - (1) क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होने पर अभी कमी है परन्तु सम्यक्त्वमोहनीय का उदय होने पर भी, सम्यक्त्वसम्बन्धी बन्ध नहीं होता है।

(2) दसवें गुणस्थान में संज्वलन लोभकषाय होने पर भी और

चारित्रमोहनीय संज्वलन के लोभ का उदय होने पर भी, चारित्र –सम्बन्धी बन्ध नहीं होता है।

(3) बारहवें गुणस्थान में ज्ञान, दर्शन, वीर्य का क्षायोपशमिकभाव होने पर भी और ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय का क्षयोपशम होने पर भी, बन्ध नहीं होता है।

(4) तेरहवें और चोदहवें गुणस्थान में असिद्धत्व औदयिकभाव होने पर भी और अघातिकर्मों का उदय होने पर भी, बन्ध नहीं होता है।

यहाँ पर भाव होने पर भी, इस–इस प्रकार का बन्ध नहीं होता है; क्योंकि जघन्य अंश, बन्ध का कारण नहीं होता है – ऐसा भगवान उमास्वामी ने कहा है।

प्रश्न 171– कर्म किसे कहते है और वे कितने हैं ?

उत्तर – आत्मस्वभाव के प्रतिपक्षी स्वभाव को धारण करनेवाले निमित्तरूप कार्माणवर्गणा स्कन्धरूप परिणमन को द्रव्यकर्म कहते हैं। वे आठ हैं; ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय।

प्रश्न 172– द्रव्यकर्म के मूलभेद कितने हैं ?

उत्तर – दो हैं – (1) घातिकर्म, और (2) अघातिकर्म।

प्रश्न 173– घातिकर्म किसे कहते हैं, वे कितने हैं ?

उत्तर – जो जीव के अनुजीवीगुणों के घात में निमित्तमात्र कारण हैं, उन्हें घातियाकर्म कहते हैं। घातिकर्म चार हैं – ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, और अन्तराय।

प्रश्न 174– अघातिकर्म किसे कहते हैं और कितने हैं ?

उत्तर – (1) जो आत्मा के अनुजीवीगुणों के घात में निमित्त नहीं है, उन्हें अघातिकर्म कहते हैं।

(2) जो आत्मा को पर वस्तु के संयोग में निमित्तमात्र कारण हों, उन्हें अघातिकर्म कहते हैं।

(3) जो आत्मा के प्रतिजीवीगुणों के घात में निमित्तमात्र हो, उन्हें अघातिकर्म कहते हैं। अघातिकर्म चार है – वेदनीय, आयु, नाम, और गोत्र।

प्रश्न 175– द्रव्यकर्म की पुण्य और पापरूप प्रकृति कौन-कौनसी हैं ?

उत्तर – घातिकर्म प्रकृति सब पापरूप ही हैं और अघातिकर्मों में पुण्य-पाप का भेद पड़ता है।

प्रश्न 176– घाति पापप्रकृति होने पर भी, जीव पुण्यरूप परिणमन करे क्या ऐसा होता है ?

उत्तर – मोहनीयकर्मप्रकृति पापरूप ही है परन्तु मोहनीय-पापप्रकृति के उदय होने पर जीव, पुण्यभाव करे तो उस मोहनीय की पापरूप प्रकृति पर, पुण्यप्रकृति का आरोप आता है। वैसे मोहनीय, पापप्रकृति ही है; पुण्यप्रकृति नहीं है।

प्रश्न 177– अघातिकर्मों में कौन-कौन सी अवस्था होती है ?

उत्तर – उदय और क्षय, ये दो अवस्थाएँ होती हैं।

प्रश्न 178– अघातिकर्मों का उदय कब से कब तक रहता है और क्षय कब होता है ?

उत्तर – पहले गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक उदय रहता है और चौदहवें गुणस्थान के अन्त में अत्यन्त अभाव (क्षय) होता है।

प्रश्न 179– ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म में कितनी-कितनी अवस्थाएँ होती हैं ?

उत्तर - तीन-तीन अवस्थाएँ होती हैं - उदय, क्षयोपशम, और क्षय।

प्रश्न 180- ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तरायकर्म में उदय, क्षयोपशम, और क्षय, कब से कब तक रहता है ?

उत्तर - (1) बारहवें गुणस्थान तक इनका क्षयोपशम है।

(2) बारहवें गुणस्थान तक जिस-जिस गुणस्थान में, जितनी-जितनी कमी है, वह उदय है।

(3) बारहवें गुणस्थान के अन्त में इन तीनों की क्षयअवस्था होती है।

प्रश्न 181- मोहनीयकर्म में कितनी अवस्था होती हैं ?

उत्तर - चार होती हैं - उदय, उपशम, क्षयोपशम, और क्षय।

प्रश्न 182- मोहनीयकर्म का उदय-उपशम-क्षयोपशम और क्षय, कौन-कौन से गुणस्थान में होता है ?

उत्तर - मोहनीयकर्म में - (1) चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशम हो सकता है।

(2) चौथे से दशवें गुणस्थान तक क्षयोपशम हो सकता है।

(3) चौथे से प्रारम्भ होकर बारहवें गुणस्थान तक क्षय हो सकता है।

(4) पहले से तीसरे गुणस्थान तक उदय रहता है।

प्रश्न 183- जीव के चारित्रगुण के परिणमन में औदयिक, क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिकपना, किस-किस प्रकार है ?

उत्तर - (1) चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धीकषाय के

अभावरूप क्षायोपशमिकभाव हुआ है, वह तो क्षायोपशमिकचारित्र है, बाकी औदयिकभावरूप है।

(2) पाँचवें गुणस्थान में अप्रत्याख्यानकषाय के अभावरूप क्षायोपशमिकभाव है, वह तो क्षायोपशमिकरूप देशचारित्र है, बाकी औदयिकभावरूप है।

(3) छठे गुणस्थान में तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप क्षायोपशमिकचारित्र है, वह तो सकलचारित्र है, बाकी औदयिक-भावरूप है।

(4) सातवें गुणस्थान में संज्वलन का मन्द उदय है, वह औदयिकभाव है और जो शुद्ध है, वह क्षायोपशमिकचारित्र है।

(5) दशवें गुणस्थान में संज्वलन के लोभ को छोड़कर, बाकी की क्षयोपशमदशा है, वह क्षायोपशमिकचारित्र है और लोभ का औदयिकभाव है।

(6) ग्यारहवें गुणस्थान में औपशमिकचारित्र है और बारहवें गुणस्थान में क्षायिकचारित्र है। चारित्र में क्षायिकपना होने पर, सादिअनन्त रहता है।

प्रश्न 184- ज्ञानगुण की पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर - (1) ज्ञानगुण की औदयिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक, तीन प्रकार की अवस्थाएँ, नैमित्तिक है और ज्ञानावरणीयकर्म का उदय, क्षयोपशम और क्षय - ये तीन प्रकार की अवस्थाएँ, निमित्त हैं।

(2) क्षयोपशम पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक होता है, वह ज्ञान का क्षायोपशमिकभाव है और जितना-जितना उदयरूप है, वह औदयिकभाव है।

(3) तेरहवें गुणस्थान से सिद्धदशा तक क्षायिक केवलज्ञान-दशा है।

प्रश्न 185- ज्ञान की आठ पर्यायों में से क्षायोपशमिक-दशा कितनी पर्यायों में है?

उत्तर - ज्ञान की सात पर्यायों में क्षायोपशमिकदशा है।

प्रश्न 186- ज्ञान की आठ पर्यायों में से क्षायिकदशा किस पर्याय में है?

उत्तर - मात्र एक पर्याय में होती है और वह केवलज्ञान है।

प्रश्न 187- दर्शनगुण की पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक क्या है?

उत्तर - दर्शनगुण की क्षायोपशमिक, औदयिक और क्षायिक तीन दशाएँ, नैमित्तिक हैं और दर्शनावरणीयकर्म की क्षयोपशम, उदय और क्षय, तीन दशाएँ निमित्त हैं।

प्रश्न 188- दर्शनगुण की चार पर्यायों में से क्षायोपशमिक और औदयिकपना कितनों में है?

उत्तर - दर्शनगुण की तीन पर्यायों में क्षायोपशमिकपना है और क्षयोपशम के साथ जितना-जितना दर्शनावरणीयकर्म का उदय है, उतना-उतना औदयिकपना है।

प्रश्न 189- दर्शनगुण की चार पर्यायों में से क्षायिकदशा किस पर्याय में है?

उत्तर - मात्र एक में और वह केवलदर्शन है।

प्रश्न 190- दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य की पर्यायों में निमित्त-नैमित्तिक क्या है?

उत्तर - दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य, आत्मा के स्वतन्त्र

गुण हैं। इन सब गुणों की क्षायोपशमिक, औदयिक और क्षायिकदशा, नैमित्तिक है और अन्तरायकर्म की क्षयोपशम, उदय और क्षयदशा निमित्त है।

प्रश्न 191- दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में क्षायोपशमिक और औदयिकदशा कहाँ से कहाँ तक है?

उत्तर - पहले गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तब सबकी क्षायोपशमिकदशा है और जितना-जितना उदय है, उतना-उतना औदयिकभाव है।

प्रश्न 192- दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में क्षायिकदशा कहाँ से कहाँ तक है?

उत्तर - तेरहवें गुणस्थान से सिद्धदशा तक सबकी क्षायिकदशा है।

प्रश्न 193- श्रद्धागुण की पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक क्या है?

उत्तर - श्रद्धागुण में औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, और क्षायिक, चार प्रकार की दशा, नैमित्तिक है और दर्शनमोहनीय की उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षयदशा, निमित्त है।

प्रश्न 194- श्रद्धागुण की चार दशा का स्पष्टीकरण करो?

उत्तर - (1) श्रद्धागुण की पहले से तीसरे गुणस्थान तक मिथ्यात्वस्वरूप औदयिकदशा है।

(2) चौथे से सातवें गुणस्थान तक प्रथम औपशमिक अवस्था है।

(3) आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक द्वितीयोपशम अवस्था है।

(4) चौथे से सातवें गुणस्थान तक क्षायोपशमिकदशा है।

(5) चौथे गुणस्थान से सिद्धदशा तक क्षायिकदशा है। ये सब नैमित्तिक दशाएँ हैं।

प्रश्न 195- दर्शनमोहनीय की चार दशा का स्पष्टीकरण करो ?

उत्तर - (1) पहले से तीसरे गुणस्थान तक उदयरूप अवस्था है।

(2) चौथे से सातवें गुणस्थान तक प्रथम उपशमदशा है।

(3) आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक द्वितीयोपशमदशा है।

(4) चौथे से सातवें गुणस्थान तक क्षयोपशमदशा है।

(5) चौथे गुणस्थान से सिद्धदशा तक क्षयरूपदशा है। ये सब निमित्त हैं।

प्रश्न 196- चारित्रगुण की पर्याय में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर - चारित्रगुण में क्षायोपशमिक, औदयिक, औपशमिक और क्षायिकदशा, नैमित्तिक हैं और चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम, उदय, उपशम और क्षयदशा, निमित्त हैं।

प्रश्न 197- चारित्रगुण की पर्याय में पूर्ण विभावरूप परिणमन, कौन से गुणस्थान से कहाँ तक है तथा उसमें निमित्त -नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर - पहले से तीसरे गुणस्थान तक पूर्ण विभावरूप परिणमन है, ये औदयिकभाव नैमित्तिक है और चारित्रमोहनीय का उदय, निमित्त है।

प्रश्न 198- चारित्रगुण के परिणमन में क्षायोपशमिक -चारित्र कौन से गुणस्थान से कौन से गुणस्थान तक है ?

उत्तर - चौथे से दशवें गुणस्थान तक क्षायोपशमिकचारित्र है, यह नैमित्तिक है और चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम, निमित्त है।

प्रश्न 199- औपशमिकचारित्र में निमित्त-नैमित्तिक क्या है और कौन से गुणस्थान में होता है ?

उत्तर - ग्यारहवें गुणस्थान में औपशमिकचारित्र प्रगट होता है, यह नैमित्तिक है और चारित्रमोहनीयकर्म का उपशम, निमित्त है।

प्रश्न 200- चारित्रगुण में क्षायिक परिणमन कब से कहाँ तक होता है तथा इसमें निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर - बारहवें गुणस्थान से लेकर सिद्धदशा तक का क्षायिक-परिणमन, नैमित्तिक है और चारित्रमोहनीयकर्म का क्षय, निमित्त है।

प्रश्न 201- चौथे गुणस्थान में तो शास्त्रों में असंयमभाव बताया, फिर क्षायोपशमिकचारित्र कैसे ?

उत्तर - जैसे, पाँचवें गुणस्थान में देशचारित्र और छठे गुणस्थान में सकलचारित्र नाम पाता है, वैसा चारित्र न होने की अपेक्षा असंयम कहा है परन्तु चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी के अभावरूप, स्वरूपाचरणचारित्र होता है।

प्रश्न 202- चौथे गुणस्थान में क्षायोपशमिकचारित्र में निमित्त-नैमित्तिक क्या है ?

उत्तर - स्वरूपाचरणचारित्र, नैमित्तिक और अनन्तानुबन्धी क्रोधादि का क्षयोपशम, निमित्त है।

प्रश्न 203- कर्मों के साथ 'सम्बन्धवाला' से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - 'सम्बन्धवाला' यह जीव का भाव है और द्रव्यकर्म, यह कार्माणवर्गणा का कार्य है। दोनों में निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध होने से 'सम्बन्धवाला' शब्द जोड़ा है।

प्रश्न 204- कर्म, जीव को दुःख देता है, क्या यह बात सत्य है ?

उत्तर – (1) बिल्कुल झूठ है; क्योंकि जड़कर्म स्पर्श–रस–गन्ध–वर्ण वाला है और आत्मा, स्पर्शादिक से रहित है; दोनों में अत्यन्ताभाव है।

(2) कर्म, दु:ख का कारण नहीं है, औदयिकभाव दु:ख का कारण है।

(3) कर्म में ज्ञान नहीं है, जीव में ज्ञान है। जड़कर्म, ज्ञानवन्त को दु:खी करे–क्या कभी ऐसा हो सकता है? कभी नहीं।

(4) श्री चन्द्रप्रभुभगवान की पूजा में आया है।

कर्म विचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई,
अग्नि सहे घनघात, लोहे की सङ्गत पाई॥

अर्थ – कर्म बेचारा कौन? भूल तो मेरी ही बड़ी है। जिस प्रकार अग्नि, लोहे की सङ्गति करती है तो उसे घनों के आघात सहना पड़ते हैं; उसी प्रकार यदि जीव, कर्मोदय से युक्त हो तो उसे राग–द्वेषादि विकार होते हैं। (5) देव–गुरु–शास्त्र की पूजा में भी आया है कि 'जड़कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी'।

प्रश्न 205– क्या जीव को कर्म का उपशम, क्षयोपशम और उदय करना पड़ता है?

उत्तर – बिल्कुल नहीं, क्योंकि कर्म की अवस्था का कर्ता, कार्माणवर्गणा है; जीव तथा दूसरी वर्गणाएँ नहीं हैं।

प्रश्न 206– छद्मस्थ का क्या अर्थ है?

उत्तर – छद्म = आवरण। स्थ=स्थिति। अर्थात्, आवरणवाली स्थिति हो, उसे छद्मस्थ कहते हैं।

प्रश्न 207– छद्मस्थ के कितने भेद हैं?

उत्तर – दो भेद हैं – साधक और बाधक। तीसरे गुणस्थान तक बाधक हैं और चौथे से बारहवें गुणस्थान तक साधक हैं।

प्रश्न 208- पारिणामिकभाव को 320 गाथा जयसेनाचार्य की टीका में किस नाम से कहा है ?

उत्तर - 'सकलनिरावरण-अखण्ड-एक-प्रत्यक्ष-प्रतिभासमय अविनश्वर, शुद्ध-पारिणामिक-परमभाव लक्षण-निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ।' इस नाम से सम्बोधन किया है।

प्रश्न 209- मोक्ष का कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर - शुद्ध पारिणामिकभाव का अवलम्बन लेने से जो शुद्धदशारूप औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव प्रगट होते हैं, जो व्यवहार रत्नत्रयादि से रहित हैं, वे शुद्ध उपादानकारण (क्षणिक उपादान) होने से मोक्ष के कारण हैं। यह प्रगटरूप मोक्ष की बात है।

प्रश्न 210- शुद्ध पारिणामिकभाव क्या है ?

उत्तर - ध्येयरूप है; ध्यानरूप नहीं है।

प्रश्न 211- शुद्ध पारिणामिकभाव ध्यानरूप क्यों नहीं है ?

उत्तर - ध्यान, विनश्वर है और शुद्ध पारिणामिकभाव तो अविनाशी है।

प्रश्न 212- ज्ञानी स्वयं ध्यानरूप परिणमित है तो वह किसका ध्यान करता है ?

उत्तर - एकमात्र त्रिकाली परम पारिणामिकभाव निज परमात्मा का ध्यान करता है।

प्रश्न 213- ज्ञानी की दृष्टि किस भाव पर होती है ?

उत्तर - ज्ञानी की दृष्टि, मात्र अपने अखण्डस्वभाव पर ही होती है। ज्ञानी की दृष्टि, शुद्धपर्याय पर भी नहीं होती, तब विकार और परद्रव्यों की तो बात ही नहीं है।

प्रश्न 214– हम तो ज्ञानी को संसार के कार्यों में प्रवर्तते हुए देखते हैं ?

उत्तर – जैसे – लड़की की दृष्टि, शादी के बाद माँ–बाप के घर आने पर भी, घर का सारा काम–काज करते हुए भी, अपने पति पर ही रहती है; उसी प्रकार ज्ञानी चाहे संसार के कार्यों में हों और कहीं युद्ध में हों, उनकी दृष्टि, एकमात्र अपने स्वभाव पर ही होती है।

प्रश्न 215– हमारा कल्याण कैसे हो ?

उत्तर – अनादिअनन्त त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि करे तो धर्म की शुरुआत होकर, क्रम से वृद्धि होकर, सिद्ध परमात्मा बन जाता है।

प्रश्न 216– शुद्धोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर – 'शुद्धात्माभिमुख परिणाम' को शुद्धोपयोग कहा है।

प्रश्न 217– आगमभाषा में शुद्धोपयोग किसे कहा जाता है ?

उत्तर – औपशमिकभाव, धर्म का क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव; इन भावों को शुद्धोपयोग कहा है।

प्रश्न 218– पाँच भावों का स्वरूप, पञ्चास्तिकाय में क्या बताया है ?

उत्तर – पञ्चास्तिकाय, गाथा ५६ में बताया गया है कि ''कर्मों का फलदान सामर्थ्यरूप से उदभव, सो 'उदय' है; अनुदभव 'उपशम' है; उदभव तथा अनुदभव सो 'क्षयोपशम' है; अत्यन्त विश्लेष (वियोग) सो क्षय है। द्रव्य का आत्मलाभ (अस्तित्व) जिसका हेतु है, वह 'परिणाम' है। वहाँ उदय से युक्त, वह 'औदयिक' है; उपशम से युक्त वह 'औपशमिक' है; क्षयोपशम से युक्त 'क्षायोपशमिक' है; क्षय से मुक्त, वह 'क्षायिक' है; परिणाम से युक्त, वह 'पारिणामिक'

है। कर्मोपाधिकी चार प्रकार की दशा (उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षय) जिनका निमित्त है, ऐसे चार भाव हैं और जिसमें कर्मोपाधिरूप निमित्त बिल्कुल नहीं है, मात्र द्रव्यस्वभाव ही का कारण है, ऐसा एक पारिणामिकभाव है।

जिन, जिनवर और जिनवरवृषभों द्वारा कथित पाँच असाधारण भावों का वर्णन पूरा हुआ।

— — — —

परिशिष्ट प्रश्नोत्तर (संकलित)

पञ्चाध्यायी प्रश्नोत्तर

दृष्टि परिज्ञान, पहले भाग से

सत् स्वभाव से ही अनेक धर्मात्मकरूप बना हुआ अखण्ड पिण्ड है। उसका जीव को ज्ञान नहीं है। उसका ज्ञान कराने के लिए जैनधर्म, दृष्टियों से काम लेता है –

(1) जगत में अभेद को बिना भेद कोई समझ नहीं सकता; अत: सबसे प्रथम जीव को भेदभाषा से ऐसा परिज्ञान कराते हैं कि द्रव्य है, गुण है, पर्याय है। प्रत्येक का लक्षण सिखलाते हैं कि जो गुण–पर्यायों का समूह है, वह द्रव्य है–इत्यादिरूप से। इस भेदरूप पद्धति को व्यवहारनय कहते हैं। यह दृष्टि, द्रव्य को खण्ड–खण्ड कर देती है। इस दृष्टि का कहना है कि द्रव्य, जुदा है; गुण जुदा है; पर्याय, जुदी है। यहाँ तक कि एक–एक गुण, उसका एक–एक अविभागप्रतिच्छेद, और एक–एक प्रदेश तक जुदा है। यह सब कुछ सीखकर शिष्य को ऐसा भान होने लगता है कि जिस प्रकार एक वृक्ष में फल, फूल, पत्ते, स्कन्ध, मूल, शाखा जुदी–जुदी सत्तावाले हैं और उनका मिलकर एक सत्तावाला वृक्ष बना है, उस प्रकार द्रव्य में अनेक अवयव हैं और उनका मिलकर बना हुआ एक द्रव्यपदार्थ है अथवा जैसे अनेक भिन्न–भिन्न सत्तावाली दवाइयों से एक गोली बनती है, वैसे गुण–पर्यायों से बना हुआ द्रव्य है, किन्तु पदार्थ ऐसा है नहीं; अत: यह तो पदार्थ का गलत ज्ञान हो गया। तब....

(2) आचार्यों ने दूसरी दृष्टि से काम लिया और उसको समझाने के लिए वे शिष्य से कहने लगे कि देख भाई! यह बता, आम में कितने गुण हैं ? शिष्य सोच कर बोला, चार - स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण। तब गुरु महाराज कहने लगे, ठीक; अब ऐसा करो कि रस तो हमें दे दो और रूप, तुम ले लो, स्पर्श, राम को दे दो और गन्ध, श्याम को। अब शिष्य चक्कर में पड़ा और कहने लगा कि महाराज! यह तो नहीं हो सकता, क्योंकि आम तो अखण्डपदार्थ है, उसमें ऐसा होना असम्भव है। बस भाई! जैसे, उस आम में चारों का लक्षण जुदे -जुदे कहे जाते हैं परन्तु भिन्न नहीं किये जा सकते; ठीक उसी प्रकार यह जो द्रव्य है, इसमें ये गुण-पर्याय केवल लक्षणभेद से भिन्न-भिन्न हैं, वास्तव में भिन्न नहीं किए जा सकते। यह तो तुझे अखण्ड सत् का परिज्ञान कराने का हमारा प्रयास था, एक ढंग था। वास्तव में वह भेदरूप नहीं है; अभेद है। अब शिष्य की आँखें खुली और वह यह अनुभव करने लगा कि सत् तो स्वतः सिद्ध, निर्विकल्प, अर्थात् भेदरहित अखण्ड है। इसको कहते हैं शुद्धदृष्टि। यहाँ 'शुद्ध' शब्द का अर्थ रागरहित नहीं, किन्तु भेदरहित है। इस दृष्टि का पूरा नाम है- शुद्धद्रव्यार्थिकदृष्टि, अर्थात् वह दृष्टि जो सत् का अभेदरूप ज्ञान करावे।

गुरुजी ने शिष्य से पूछा - कि यह पुस्तक किसकी है ? शिष्य ने कहा महाराज! मेरी। अब उससे पूछते हैं कि तू तो जीव है, चेतन है; पुस्तक तो अजीव है, जड़ है - यह तेरी कैसे हो गयी ? अब शिष्य फिर चक्कर में पड़ा और बहुत देर सोचने के बाद जब और कुछ उत्तर न बन पड़ा तो कहने लगा, महाराज! इस समय मेरे पास है, मैं पढ़ता हूँ; इसलिए व्यवहार से मेरी कह देते हैं, वास्तव में मेरी नहीं है। अरे! बस यही बात है। द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, यहाँ भी भेद से ऐसा कह देते है, यहाँ भी यह व्यवहार है; वास्तव में ऐसा नहीं है। वास्तव में, अर्थात् निश्चय से।

जो द्रव्य को भेदरूप कहे, वह व्यवहार है और जो अभेदरूप कहे, वह निश्चय है। इसलिए इसका दूसरा नाम रखा निश्चयनय। इस प्रकार इसको शुद्धद्रव्यार्थिकदृष्टि, निश्चयदृष्टि, भेदनिषेधकदृष्टि, व्यवहारनिषेधकदृष्टि, अखण्डदृष्टि, अभेददृष्टि, अनिर्वचनीयदृष्टि आदि अनेकों नामों से आगम में कहा है।

अब, शिष्य को तीसरी दृष्टि का परिज्ञान कराते हैं।

(3) आचार्य कहने लगे कि अच्छा बताओ! आत्मा में कितने प्रदेश हैं? वह बोला–असंख्यात्। व्यवहार से या निश्चय से? व्यवहार से, क्योंकि अब तो वह जान चुका था कि भेद, व्यवहार से है; गुरु ने फिर पूछा कि निश्चय से कैसा है? तो बोला अखण्डदेश। शाबाश! तू होनहार है, हमारी बात समझ गया। देख! वे जो व्यवहार से असंख्यात हैं, वे ही निश्चय से एक अखण्डदेश है। इसी को कहते हैं प्रमाणदृष्टि। जो ऐसा है, वही ऐसा है – यही इसके बोलने की रीति है। यह पदार्थ को भेदाभेदात्मक कहता है, अर्थात् जो भेदरूप है, वही अभेदरूप है। इस प्रकार तीनों दृष्टियों द्वारा पदार्थ का ठीक-ठीक बोध हो जाता है और जैसा पदार्थ स्वत: सिद्ध बना हुआ है, वैसा वह ठीक ख्याल में–पकड़ में आ जाता है।

यहाँ ग्रन्थकार ने पहली व्यवहारदृष्टि का परिज्ञान, श्लोक 747 की दूसरी पंक्ति में तथा 749 में कराया है। दूसरी निश्चयदृष्टि का परिज्ञान, श्लोक 747 की प्रथम पंक्ति तथा 750 की प्रथम पंक्ति में कराया है और तीसरी प्रमाणदृष्टि का परिज्ञान, श्लोक 748 में तथा 750 की दूसरी पंक्ति में कराया है और इस ग्रन्थ में श्लोक आठ से 70 तक निश्चय अभेददृष्टि से सत् का निरूपण किया है और श्लोक 71 से 260 तक भेददृष्टि–व्यवहारदृष्टि से सत् का निरुपण किया है और श्लोक 261 में तीसरी प्रमाणदृष्टि से सत् का निरुपण

किया है। श्लोक 84, 88, 216 तथा 247 में भेद और अभेददृष्टियों को लगा कर भी दिखलाया है। इस प्रकार द्रव्य के भेदाभेदात्मक स्वरूप को दिखलाया है।

अब, दूसरी बात यह जानने की है कि ऐसे भेदाभेदात्मक द्रव्य में दो स्वरूप पाये जाते हैं - एक तो यह कि वह अपने स्वरूप को (स्वभाव को) त्रिकाल एकरूप बनाए रखता है और दूसरा स्वभाव यह कि वह उस स्वभाव को बनाये रखते हुए भी प्रति समय स्वतन्त्र निरपेक्ष स्वभाव या विभावरूप* परिणमन किया करता है और उस परिणमन में हानि-वृद्धि भी होती है। स्वभाव का नाम है द्रव्य, सत्त्व, वस्तु, पदार्थ आदि और उस परिणमन का नाम है पर्याय, अवस्था, दशा, परिणाम आदि।

यहाँ भी द्रव्य को दो रूप से देखा जाता है - जब स्वभाव को देखना है तो सारे का सारा द्रव्य, स्वभावरूप, त्रिकाल एकरूप, अवस्थित नजर आयेगा, इसको कहते हैं द्रव्यदृष्टि, स्वभावदृष्टि, अन्वयदृष्टि, त्रिकालीदृष्टि, निश्चयदृष्टि, सामान्यदृष्टि आदि। जब अवस्था को देखना हो तो सारे का सारा द्रव्य, परिणामरूप-पर्यायरूप, अनवस्थित, हानि-वृद्धिरूप, अवस्थारूप दृष्टिगत होगा - इसको कहते हैं पर्यायदृष्टि, व्यवहारदृष्टि, विशेषदृष्टि आदि।

यहाँ यह बात खास ध्यान रखने की है कि ऐसा नहीं है कि त्रिकालीस्वरूप तो किसी कोठे में जुदा पड़ा है और पर्याय का स्वरूप कहीं ऊपर धरा हो। पर्यायरूप परिणमन उस स्वभाववान् का ही है। उनमें दोनों धर्मों के प्रदेश तो भिन्न हैं नहीं, परन्तु स्वरूप दोनों इस कमाल से वस्तु में रहते हैं कि उसको आप चाहे जिस दृष्टि

* देखिये, श्रीसमयसार, गाथा 116 से 125 तक तथा कलश नम्बर 64, 65 तथा श्रीपञ्चास्तिकाय, गाथा 62 टीका तथा श्रीतत्त्वार्थसार, तीसरे अजीव अधिकार का श्लोक 43, श्रीप्रवचनसार, गाथा 16, 95 टीका; श्रीपञ्चाध्यायी, दूसरा भाग 1030।

से देख लो, हूबहू वैसी की वैसी नजर आयेगी। जैसे, एक जीव वर्तमान में मनुष्य है। अब यदि स्वभावदृष्टि से देखो तो वह चाहे मनुष्य हो या देव; सिद्ध हो या संसारी; जीव तो एक जैसा ही है; इसलिए तो जगत् में कहा जाता है कि जो कर्ता है, वह भोक्ता है। सिद्ध-संसारी में कहीं जीव के स्वरूप में अन्तर नहीं आ गया है और यदि पर्यायदृष्टि से देखें, परिणामदृष्टि से देखें तो कहाँ देव, कहाँ मनुष्य; कहाँ संसारी, कहाँ सिद्ध। यह परिणमनस्वभाव का कमाल है कि स्वकाल की योग्यता अनुसार कहीं स्वभाव के अधिक अंश प्रगट हैं, कहीं कम अंश प्रगट हैं। केवल प्रगटता-अप्रगटता के कारण; अवगाहन के कारण; भूत्वाभवन के कारण; आकारान्तर के कारण यह अन्तर पड़ा है। स्वभाव को बनाये रखना, अगुरुलघुत्वगुण का काम है; परिणमन कराते रहना, द्रव्यत्वगुण का काम हैं। क्या कहें! वस्तु ही कुछ ऐसी बनी हुई है। इस ग्रन्थ में इसको श्लोक 65, 66, 67 और 198 में लगा कर दिखलाया है।

अब, एक बात और रह गयी, वह यह कि द्रव्यदृष्टि प्रथम वर्णित अभेद अखण्ड के लिए प्रयोग की है और पर्यायदृष्टि भेद के लिए प्रयोग की है; और कहीं द्रव्यदृष्टि, स्वभाव के लिए; पर्यायदृष्टि, परिणाम के लिए प्रयोग की जाती है। अब कहाँ क्या अर्थ है ? - यह गुरुगम से भलीभाँति सीख लेने की बात है, वरना अर्थ का अनर्थ हो जायेगा और पदार्थ का भान नहीं होगा।

इस ग्रन्थ में श्लोक 84, 88, 216, 247 में अभेद के लिए द्रव्यदृष्टि और भेद के लिए पर्यायदृष्टि का प्रयोग किया है, और श्लोक 65, 66, 67, 198 में स्वभाव के लिए द्रव्यदृष्टि और परिणाम के लिए पर्यायदृष्टि का प्रयोग किया है। आप सावधान रहें - इसमें बड़े-बड़े शास्त्रपाठी भी भूल कर जाते हैं।

अध्यात्म के चक्रवर्ती श्री अमृतचन्द्रसूरि ने श्री पुरुषार्थसिद्ध्युपाय,

गाथा 58 में लिखा है कि इस अज्ञानी आत्मा को वस्तुस्वरूप का भान कराने में नयचक्र को चलाने में चतुर, ज्ञानी गुरु ही शरण हो सकते हैं। सद्गुरु के बिना, न आज तक किसी ने तत्त्व पाया है, न पा सकता है - ऐसा ही अनादि-अनन्त मार्ग है, वस्तुस्वभाव है। कोई क्या करे। अर्थ इसका यह है कि जब जीव में यथार्थ बोध की 'स्वकाल' में योग्यता होती है तो सामने अपने कारण से वस्तुस्वभाव के नियमानुसार ज्ञानी गुरु होते हैं, तब उन पर आरोप आता है कि गुरुदेव की कृपा से वस्तु मिली। निश्चय से आत्मा का गुरु, आत्मा ही है।

जगत् में सत् का परिज्ञान हुए बिना, किसी की पर में एकत्वबुद्धि, परकर्तृत्व, भोक्तृत्व का भाव नहीं मिटता तथा सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती और सत् का परिज्ञान करने के लिए इससे बढ़िया ग्रन्थ जगत् में आज उपलब्ध नहीं है। यह ग्रन्थराज है। यदि मोक्षमार्गी बनने की इच्छा है तो इसका रुचिपूर्वक अभ्यास करिये। यह नावल की तरह पढ़ने का नहीं है; कोर्स ग्रन्थ है। इसका बार-बार मन्थन कीजिए, विचार कीजिए। सद्गुरुदेव का समागम कीजिए तो कुछ ही दिनों में पदार्थ का स्वरूप झलकने लगेगा।

ॐ शान्ति। सद्गुरुदेव की जय।

कण्ठस्थ करने योग्य प्रश्नोत्तर -

द्रव्यत्व अधिकार

प्रश्न 1- शुद्धद्रव्यार्थिकनय से (निश्चयदृष्टि से अभेद-दृष्टि से) द्रव्य का क्या लक्षण है ?

उत्तर - जो सत्स्वरूप, स्वत: सिद्ध, अनादि-अनन्त, स्वसहाय और निर्विकल्प (अखण्डित) है, वह द्रव्य है।

(8, 747 प्रथम पंक्ति, 750 प्रथम पंक्ति)

प्रश्न 2- पर्यायार्थिकनय से (व्यवहारदृष्टि से-भेददृष्टि से) द्रव्य का क्या लक्षण है ?

उत्तर - (1) गुणपर्ययवद्द्रव्यं (2) गुणपर्ययसमुदायो द्रव्यं (3) गुणसमुदायो द्रव्यं (4) समगुणपर्यायो द्रव्यं (5) उत्पादव्यय-ध्रौव्ययुक्त सत्-सत् द्रव्य लक्षणं — ये सब पर्यायवाची हैं। सब गुण और त्रिकालवर्ती सब पर्यायों का तन्मयपिण्ड, द्रव्य है। यह इसका अर्थ है। *(72, 73, 86, 747 दूसरी पंक्ति, 749)*

प्रश्न 3- प्रमाण से (भेदाभेद दृष्टि से) द्रव्य का क्या लक्षण है ?

उत्तर - जो द्रव्य-गुणपर्यायवाला है, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है, वही द्रव्य अखण्डसत् अनिर्वचनीय है।

(261 प्रथम पंक्ति, 748, 750 दूसरी पंक्ति)

प्रश्न 4- द्रव्य के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - द्रव्य, तत्त्व, सत्व, सत्ता, सत्, अन्वय, वस्तु, अर्थ, पदार्थ, सामान्य, धर्मी, देश, समवाय, समुदाय-विधि। *(143)*

प्रश्न 5- स्वतः सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर - वस्तु, पर से सिद्ध नहीं है। ईश्वरादि की बनायी हुई नहीं है; स्वत: स्वभाव से स्वयं सिद्ध है। *(8)*

प्रश्न 6- अनादि-अनन्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - वस्तु, क्षणिक नहीं है। सत् की उत्पत्ति नहीं है, न सत् का नाश है, वह अनादि से है और अनन्त काल तक रहेगाी। *(8)*

प्रश्न 7- स्वसहाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - पदार्थ पदार्थान्तर के सम्बन्ध से पदार्थ नहीं है। निमित्त या अन्य पदार्थ से न टिकता है और न परिणमन करता है। अनादि

-अनन्त स्वभाव या विभावरूप से स्वयं अपने परिणमनस्वभाव के कारण परिणमता है। कभी किसी पदार्थ का अंश न स्वयं अपने में लेता है और न अपना कोई अंश, दूसरे को देता है। *(8)*

प्रश्न 8- अनादि-अनन्त और स्वसहाय में क्या अन्तर है ?

उत्तर - अनादि-अनन्त में उसे उत्पत्ति-नाश से रहित बताना है और स्वसहाय में उसकी स्वतन्त्र स्थिति तथा स्वतन्त्र परिणमन बताना है। *(8)*

प्रश्न 9- निर्विकल्प किसे कहते हैं ?

उत्तर - द्रव्य के प्रदेश भिन्न, गुण के प्रदेश भिन्न, पर्याय के प्रदेश भिन्न, उत्पाद के प्रदेश भिन्न, व्यय के प्रदेश भिन्न, ध्रुव के प्रदेश भिन्न - जिसमें न हों, अर्थात् जिसमें द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से किसी प्रकार सर्वथा खण्ड न हो सकते हों, उसे निर्विकल्प या अखण्ड कहते हैं। *(8)*

प्रश्न 10- महासत्ता किसको कहते हैं ?

उत्तर - सामान्य को, अखण्ड को, अभेद को। *(265)*

प्रश्न 11- अवान्तरसत्ता किसको कहते हैं ?

उत्तर - विशेष को, खण्ड को, भेद को। *(266)*

प्रश्न 12- क्या महासत्ता और अवान्तरसत्ता भिन्न-भिन्न हैं ?

उत्तर - नहीं, प्रदेश एक ही हैं, स्वरूप एक ही है; केवल अपेक्षाकृत भेद है। वस्तु, सामान्य-विशेषात्मक है। अभेद की दृष्टि से वह सारी महासत्तारूप दिखती है; भेद की दृष्टि से वही सारी अवान्तरसत्तारूप दिखती है; जैसे, एक ही वस्तु को सत्रूप देखना, महासत्ता और उसी को जीवरूप देखना, अवान्तरसत्ता है।

(15, 19, 264, 267, 268)

प्रश्न 13- सामान्य-विशेष से क्या समझते हो ?

उत्तर - द्रव्य को अखण्ड सत्‌रूप से देखना, सामान्य है और उसी को किसी भेदरूप से देखना, विशेष है। जैसे, एक ही वस्तु को सत्‌रूप देखना, सामान्य है; उसी को जीवरूप देखना, यह विशेष है। वस्तु, उभयात्मक है। *(15, 19)*

प्रश्न 14- सत् को अखण्डरूप से देखनेवाली दृष्टियों का क्या नाम है ?

उत्तर - सत् को अखण्ड / अभेददृष्टि से देखने को सामान्यदृष्टि, शुद्धद्रव्यार्थिकदृष्टि, अखण्डदृष्टि, अभेददृष्टि, निर्विकल्पदृष्टि, अनिर्वचनीयदृष्टि, निश्चयदृष्टि, शुद्धदृष्टि आदि अनेक नामों से कहा जाता है। *(84, 88, 216, 247)*

प्रश्न 15- सत् को खण्डरूप से देखनेवाली दृष्टियों का क्या नाम है ?

उत्तर - सत् को खण्ड / भेददृष्टि से देखने को विशेषदृष्टि, पर्यायदृष्टि, अंशदृष्टि, खण्डदृष्टि, व्यवहारदृष्टि, भेददृष्टि कहा जाता है। *(84, 88, 247)*

प्रश्न 16- द्रव्य का विभाग किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर - एक विस्तारक्रम से, दूसरा प्रवाहक्रम से। विस्तारक्रम में यह जानने की आवश्यकता है कि प्रत्येक द्रव्य कितने प्रदेशों का अखण्ड पिण्ड है और प्रवाहक्रम में उसके अनन्त गुण, प्रत्येक गुण के अनन्त अविभागप्रतिच्छेद तथा उनका अनादि-अनन्त हीनाधिक परिणमन जानने की आवश्यकता है।

प्रश्न 17- द्रव्यों का विस्तारक्रम (लम्बाई) बताओ ?

उत्तर - धर्म, अधर्म और एक जीवद्रव्य, असंख्यात् प्रदेशी हैं; आकाश, अनन्त प्रदेशी है; कालाणु तथा शुद्ध पुद्‌गलपरमाणु, अप्रदेशी,

अर्थात् एक प्रदेशी हैं। *(25)*

प्रश्न 18 - एक द्रव्य के प्रत्येक प्रदेश को एक स्वतन्त्र द्रव्य मानने में क्या आपत्ति है ?

उत्तर - गुण का परिणमन, प्रत्येक प्रदेश में भिन्न-भिन्नरूप से होना चाहिए, जो प्रत्यक्षबाधित है। *(32 से 37)*

प्रश्न 19- द्रव्य का चतुष्टय किसे कहते हैं ?

उत्तर - देश-देशांश-गुण-गुणांश को द्रव्य का चतुष्टय कहते हैं।

प्रश्न 20- देश किसे कहते हैं ?

उत्तर - प्रदेशों के अभिन्न पिण्ड को देश या द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न 21- देशांश किसे कहते हैं ?

उत्तर - भिन्न-भिन्न प्रत्येक प्रदेश को देशांश या क्षेत्र कहते हैं।

प्रश्न 22- गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - त्रिकाली शक्तियों को गुण या भाव कहते हैं।

प्रश्न 23- गुणांश किसे कहते हैं ?

उत्तर - गुण के एक-एक अविभागप्रतिच्छेद को गुणांश या पर्याय कहते हैं।

प्रश्न 24- देश, देशांश के मानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - देश में द्रव्य के अस्तित्व की प्रतीति होती है और देशांश के मानने से कायत्व-अकायत्व और महत्व-अमहत्व का अनुमान होता है। जैसे, कालद्रव्य, अकायत्व और आत्मा, कायत्व है तथा आकाश, आत्मा से महान (क्षेत्र से बड़ा)है। *(28, 29, 30)*

प्रश्न 25- कायत्व, अकायत्व, महत्व, अमहत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – बहुप्रदेशी को कायत्व या अस्तिकाय कहते हैं और अप्रदेशी, अर्थात् एक प्रदेशी को अकायत्व कहते हैं। छोटे-बड़े के परिज्ञान को महत्व-अमहत्व कहते हैं। *(64)*

प्रश्न 26– गुण-गुणांश के मानने के क्या लाभ है ?

उत्तर – गुणदृष्टि से वस्तु अवस्थित-त्रिकाल एकरूप है; पर्यायदृष्टि से वस्तु अनवस्थित समय-समय भिन्न है – ऐसा परिज्ञान होता है। *(198)*

प्रश्न 27– द्रव्य का स्वभाव क्या है ?

उत्तर – द्रव्य, स्वतः सिद्ध परिणामी है। 'स्थित रहता हुआ, बदला करता है' यही द्रव्य का स्वभाव है। इस स्वभाव के कारण ही वह गुणपर्यायमय या उत्पादव्ययध्रौव्यमय है। स्वतः सिद्धस्वभाव के कारण, द्रव्य में गुणधर्म या ध्रौव्यधर्म है। परिणमनस्वभाव के कारण, द्रव्य में पर्यायधर्म या उत्पाद-व्ययधर्म है। *(89, 178)*

प्रश्न 28– द्रव्य और पर्याय, दोनों मानने की क्या आवश्यकता है ?

उत्तर – द्रव्यदृष्टि से वस्तु, अवस्थित है और पर्यायदृष्टि से वस्तु, अनवस्थित है। द्रव्यदृष्टि को निश्चयदृष्टि, अन्वयदृष्टि, सामान्य -दृष्टि भी कहते हैं। पर्यायदृष्टि को अवस्थादृष्टि, विशेषदृष्टि, व्यवहारदृष्टि भी कहते हैं। *(65, 66, 67)*

प्रश्न 29– अवस्थित-अनवस्थित से क्या समझते हो ?

उत्तर – यह द्रव्य 'वहीं का वहीं' और 'वैसा का वैसा' ही है, इसको अवस्थित कहते हैं, अर्थात् द्रव्य का त्रिकाली स्वरूप सदा एक जैसा रहता है – इस अपेक्षा वस्तु अवस्थित है तथा प्रत्येक समय पर्याय में हीनाधिक परिणमन हुआ करता है – इस अपेक्षा अनवस्थित है।

प्रश्न 30- अवस्थित न मानने से क्या हानि है ?

उत्तर - द्रव्य के सदा एकरूप रहनेवाले त्रिकाली स्वरूप को न मानने से मोक्ष का पुरुषार्थ, ज्ञानी किसके आश्रय से करेंगे ?

प्रश्न 31- अनवस्थित न मानने से क्या हानि है ?

उत्तर - द्रव्य के परिणमनस्वभाव को न मानने से मोक्ष और संसार का अन्तर मिट जायेगा, मोक्ष का पुरुषार्थ व्यर्थ हो जायेगा।

प्रश्न 32- अवस्थित के पर्यायवाची नाम बताओ ?

उत्तर - अवस्थित, ध्रुव, नित्य, त्रिकाल एकरूप, द्रव्य, गुण, सामान्य, टङ्कोत्कीर्ण।

प्रश्न 33- अनवस्थित के पर्यायवाची नाम बताओ ?

उत्तर - अनवस्थित, अध्रुव, अनित्य, समय-समय में भिन्न -भिन्नरूप, पर्याय, विशेष। ●●

गुणत्व अधिकार

प्रश्न 34- गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - (1) जो देश के आश्रय रहते हों;

(2) देश के विशेष हो;

(3) स्वयं निर्विशेष हों;

(4) सब के सब उन्हीं प्रदेशों में इकट्ठे रहते हों; और

(5) कथञ्चित परिणमनशील हो, उन्हें गुण कहते हैं।

(38, 103)

प्रश्न 35- गुणों के जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - गुणों के द्वारा प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न हाथ पर रक्खी हुई की तरह दृष्टिगत हो जाती है, जिससे भेदविज्ञान की सिद्धि होती है और पर में कर्तृत्वबुद्धि का भ्रम मिट जाता है। *(204)*

प्रश्न 36- एक द्रव्य में कितने गुण होते हैं ?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य में अनन्त गुण होते हैं। *(52)*

प्रश्न 37- गुणों के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - गुण, शक्ति, लक्षण, विशेष, धर्म, रूप, स्वभाव, ध्रुव, प्रकृति, शील, आकृति, अर्थ, अन्वयी, सहभू, ध्रुव, नित्य, अवस्थित, टङ्कोत्कीर्ण, त्रिकाल एकरूप। *(48, 138, 479)*

प्रश्न 38- गुणों को सहभू क्यों कहते हैं ?

उत्तर - क्योंकि वे सब मिलकर साथ-साथ रहते हैं; पर्यायों की तरह क्रम से नहीं होते। *(139)*

प्रश्न 39- गुण को अन्वयी क्यों कहते हैं ?

उत्तर - क्योंकि सब गुणों का अन्वय द्रव्य एक है, सब मिलकर इकट्ठे रहते हैं तथा सब अनेक होकर भी अपने को एकरूप से प्रगट कर देते हैं। *(144, 153 से 156)*

प्रश्न 40- गुण को अर्थ क्यों कहते हैं ?

उत्तर - क्योंकि वे स्वत: सिद्ध परिणामी हैं, उत्पाद-व्यय -ध्रौव्य युक्त हैं। *(158, 159)*

प्रश्न 41- गुणों के भेद, लक्षणसहित बताओ ?

उत्तर - गुणों के दो भेद हैं - साधारण और असाधारण, अर्थात् सामान्य और विशेष। जो छहों द्रव्यों में पाये जावे, उन्हें सामान्यगुण कहते हैं, जैसे - अस्तित्व, प्रदेशत्व इत्यादि। जो छहों द्रव्यों में न पाये जाकर, किसी द्रव्य में पाये जाते हैं, उन्हें विशेषगुण कहते हैं; जैसे, जीव में ज्ञान-दर्शन या पुद्गल में स्पर्श-रस इत्यादि। *(160, 161)*

प्रश्न 42- गुणों के इस भेद से क्या सिद्धि है ?

उत्तर - सामान्यगुणों से द्रव्यत्व सिद्ध किया जाता है और

विशेषगुणों से द्रव्यविशेष सिद्ध किया जाता है क्योंकि उभयगुणात्मक वस्तु है। जो अस्तित्त्वगुणवाला है, वही ज्ञानगुणवाला है। इनसे प्रत्येक वस्तु भिन्न-भिन्न सामान्य-विशेषात्मक सिद्ध हो जाती है और जीव की अनादिकालीन एकत्वबुद्धि का नाश होकर, भेदविज्ञान की सिद्धि होती है। पर में कर्तृत्वबुद्धि का नाश होता है। स्व का आश्रय करके स्वभावपर्याय प्रगट करने की रुचि जागृत हो जाती है। *(162, 163)* ●●

पर्यायत्व अधिकार

प्रश्न 43- पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर - अखण्ड सत् में अंश कल्पना को पर्याय कहते हैं।

(26, 61)

प्रश्न 44- पर्याय के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - पर्याय, अंश, भाग, प्रकार, भेद, छेद, भङ्ग, उत्पाद -व्यय, क्रमवर्ती, क्रमभू, व्यतिरेकी, अनित्य, अनवस्थित।

(60, 165)

प्रश्न 45- व्यतिरेकी किसे कहते हैं ?

उत्तर - भिन्न-भिन्न को व्यतिरेकी कहते हैं। 'यह यही है, यह वह नहीं है' यह उसका लक्षण है। *(152, 154)*

प्रश्न 46- व्यतिरेक के भेद लक्षणसहित बताओ ?

उत्तर - व्यतिरेक चार प्रकार का होता है

(1) देशव्यतिरेक, (2) क्षेत्रव्यतिरेक, (3) कालव्यतिरेक, (4) भावव्यतिरेक। एक-एक प्रदेश का भिन्नत्व, **देशव्यतिरेक** है। एक-एक प्रदेश क्षेत्र का भिन्नत्व, **क्षेत्रव्यतिरेक** है। एक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय का भिन्नत्व, **पर्याय (काल) व्यतिरेक** है। एक-

एक गुण के एक-एक अंश का भिन्नत्व, **भाव व्यतिरेक** है।
(147 से 150 तक)

प्रश्न 47- क्रमवर्ती किसको कहते हैं ?

उत्तर - एक, फिर दूसरी, फिर तीसरी, फिर चौथी; इस प्रकार प्रवाहक्रम से जो वर्तन करें, उन्हें क्रमवर्ती या क्रमभू कहते हैं। क्रम, व्यतिरेकपूर्वक तथा व्यतिरेक विशिष्ट ही होता है। *(168)*

प्रश्न 48- तथात्व, अन्यथात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - यह वही है, इसको तथात्व कहते हैं तथा यह वह नहीं है, इसको अन्यथात्व कहते हैं। जैसे, यह वही जीव है, जो पहले मनुष्य था, यह तथात्व है तथा देवजीव, मनुष्यजीव नहीं है, यह अन्यथात्व है। *(174)*

प्रश्न 49- पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर - पर्याय के दो भेद हैं - (1) प्रदेशत्वगुण की पर्याय को द्रव्यपर्याय या व्यञ्जनपर्याय कहते हैं, (2) शेष गुणों की पर्याय को गुणपर्याय कहते हैं। *(135, 61, 62, 63)*

प्रश्न 50- पर्याय को उत्पाद-व्यय क्यों कहते हैं ?

उत्तर - जो उत्पन्न हो और विनष्ट हो। पर्याय सदा उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है। कोई भी पर्याय, गुण की तरह सदैव नहीं रहती; इसलिए पर्यायों को उत्पाद-व्यय कहते हैं। *(165)* ●●

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्व अधिकार

प्रश्न 51- उत्पाद किसे कहते हैं ?

उत्तर - द्रव्य में नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं, जैसे कि जीव में देवपर्याय का उत्पाद। *(201)*

प्रश्न 52- व्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर - द्रव्य में पूर्व पर्याय के नाश को व्यय कहते हैं, जैसे कि

देवपर्याय के उत्पाद होने पर, मनुष्यपर्याय का नाश। *(202)*

प्रश्न 53- ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - दोनों पर्यायों में (उत्पाद और व्यय में) द्रव्य का सदृशतारूप स्थायी रहना, उसे ध्रौव्य कहते हैं; जैसे कि देव और मनुष्यपर्याय में जीव का नित्य स्थायी रहना। *(203)*

प्रश्न 54- उत्पाद के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - उत्पाद, सम्भव, भव, सर्ग, सृष्टि, भाव।

प्रश्न 55- व्यय के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - व्यय, भङ्ग, ध्वंस, संहार, नाश, विनाश, अभाव, उच्छेद।

प्रश्न 56- ध्रुव के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - ध्रुव, ध्रौव्य, स्थिति, नित्य, अवस्थित।

प्रश्न 57- उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य के बारे में कुछ कहो ?

उत्तर - उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में अविनाभाव है। एक समय में होते हैं। स्वतं सत् का उत्पाद, सत् का व्यय या सत् का ध्रौव्य नहीं होता, किन्तु सत् की किसी पर्याय का व्यय, किसी पर्याय का उत्पाद तथा कोई पर्याय, ध्रौव्य है।

प्रश्न 58- उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य, दोनों के मानने से क्या लाभ है ?

उत्तर - ध्रौव्यदृष्टि से वस्तु अवस्थित और उत्पाद-व्ययदृष्टि से अनवस्थित है। *(168)*

प्रश्न 59- उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में और सत् में क्या अन्तर है ?

उत्तर - अभेददृष्टि से सत्, गुण कहते हैं और भेददृष्टि से उसी को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य कहते हैं। *(87)*

प्रश्न 60– सत् और द्रव्य में क्या अन्तर है ?

उत्तर – भेददृष्टि से सत्, गुण और द्रव्य, गुणी कहलाता है। अभेददृष्टि से जो सत्, गुण है, वही द्रव्यस्वरूप है। *(८८)*

प्रश्न 61– द्रव्य और गुण में क्या अन्तर है ?

उत्तर – द्रव्य अवयवी है और प्रत्येक गुण उसका एक-एक अवयव है।

प्रश्न 62– गुण और पर्याय में क्या अन्तर है ?

उत्तर – गुण, त्रिकाली शक्ति को कहते हैं और पर्याय, उसके एक अविभागप्रतिच्छेद को या एक समय के परिणमन को कहते हैं।

प्रश्न 63– उत्पाद-व्यय और ध्रौव्य में क्या अन्तर है ?

उत्तर – ध्रुव तो द्रव्य के स्वतः सिद्ध स्वभाव को कहते हैं और उत्पाद-व्यय, उसके परिणमनस्वभाव को कहते हैं।

प्रश्न 64– व्यतिरेकी और अन्वयी में क्या अन्तर है ?

उत्तर – व्यतिरेकी अनेकों को, भिन्न-भिन्न को कहते हैं, ये पर्यायें हैं और जो अनेक होकर भी एक हों, उन्हें अन्वयी कहते हैं, वे गुण हैं।

प्रश्न 65– व्यतिरेकी और क्रमवर्ती में क्या अन्तर है ?

उत्तर – हैं तो दोनों एक समय की पर्याय के वाचक, पर प्रत्येक पर्याय की भिन्नता को व्यतिरेकी कहते हैं तथा पर्याय के क्रमबद्ध उत्पाद को क्रमवर्ती कहते हैं।

प्रश्न 66– व्यतिरेक और अन्वय के लक्षण बताओ ?

उत्तर – 'यह वह नहीं है' यह व्यतिरेक का लक्षण है तथा 'यह वही है' यह अन्वय का लक्षण है।

प्रश्न 67– द्रव्य और पर्याय में क्या अन्तर है ?

उत्तर - स्वत: सिद्धस्वभाव को द्रव्य कहते हैं और उसके परिणमन को पर्याय कहते हैं। ●●

नयप्रमाण अधिकार

प्रश्न 68- पर्यायर्थिकनय का विषय क्या है ?

उत्तर - जो द्रव्य का भेदरूप ज्ञान करावे - जैसे द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, उत्पाद है, व्यय है, ध्रौव्य है, सब भिन्न-भिन्न हैं। जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है; जो गुण है, वह द्रव्य नहीं है; जो द्रव्य-गुण है, वह पर्याय नहीं है; जो उत्पाद है, वह व्यय-ध्रौव्य नहीं है इत्यादि।

(84, 88, 247, 747 दूसरी पंक्ति, 749)

प्रश्न 69- शुद्धद्रव्यार्थिकनय का विषय क्या है ?

उत्तर - जो द्रव्य का अभेदरूप ज्ञान करावे - जैसे भेदरूप से न द्रव्य है, न गुण है, न पर्याय है, न उत्पाद है, न व्यय है, न ध्रौव्य है; एक अखण्ड सत् अनिर्वचनीय है अथवा जो द्रव्य है, वही गुण है, वही पर्याय है, वही उत्पाद है, वही व्यय है, वही ध्रौव्य है, अर्थात् एक अखण्ड सत् है। *(8, 84, 88, 216, 247, 447 प्रथम पंक्ति)*

प्रश्न 70- प्रमाण का विषय क्या है ?

उत्तर - जो द्रव्य का सामान्य-विशेषात्मक जोड़रूप ज्ञान करावे - जैसे जो भेदरूप है, वही अभेदरूप है। जो गुण-पर्यायवाला है, वही गुण-पर्यायवाला नहीं भी है। जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है, वही उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त नहीं भी है। जो द्रव्य, गुण-पर्यायवाला है, वही द्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्त है तथा वही द्रव्य, अनिर्वचनीय है। यह एक साथ दोनों कोटि का ज्ञान करा देता है और दोनों विरोधी धर्मों को द्रव्य में सापेक्षपने से, मैत्रीभाव से, अविरोधरूप से सिद्ध करता है। *(261 प्रथम पंक्ति, 748 तथा 750 की दूसरी पंक्ति)*

प्रश्न 71- द्रव्यदृष्टि और पर्यायदृष्टि का दूसरा अर्थ क्या है ?

उत्तर - वस्तु जैसे स्वभाव से स्वतः सिद्ध है, वैसे ही वह स्वभाव से परिणमनशील भी है। उस स्वभाव को द्रव्य, वस्तु, पदार्थ, अन्वय, सामान्य आदि कहते हैं। परिणमनस्वभाव के कारण उसमें पर्याय, अवस्था, परिणाम की उत्पत्ति होती है। जो दृष्टि, परिणाम को गौण करके, स्वभाव को मुख्यता से कहे, उसे द्रव्यदृष्टि, अन्वयदृष्टि, वस्तुदृष्टि, निश्चयदृष्टि, सामान्यदृष्टि आदि नामों से कहा जाता है और जो दृष्टि, स्वभाव को गौण करके, परिणाम को मुख्यता से कहे, उसे पर्यायदृष्टि, अवस्थादृष्टि, विशेषदृष्टि आदि नामों से कहते हैं। जिसकी मुख्यता होती है, सारी वस्तु उसीरूप दीखने लगती है। *(65, 66, 67, 198)*

★ ★ ★ ★

पञ्चाध्यायी, भाग-1 का सारभूत तात्पर्य

यों तो आत्मा, अनन्त गुणों का पिण्ड है परन्तु मोक्षमार्ग की अपेक्षा तीन गुणों से प्रयोजन है - ज्ञान, श्रद्धान और चारित्र। सबसे पहले जब जीव को हित की अभिलाषा होती है तो ज्ञान से काम लिया जाता है। पहले ज्ञान द्वारा पदार्थ का स्वरूप, उसका लक्षण तथा परीक्षा सीखनी पड़ती है। पदार्थ, सामान्य-विशेषात्मक है; अतः पहले सामान्यपदार्थ का ज्ञान कराना होता है, फिर विशेष का क्योंकि जो वस्तु, सत्‌रूप है, वही तो जीवरूप है। सामान्यवस्तु को सत् भी कहते हैं। सो पहले आपको सत् का परिज्ञान कराया जा रहा है। सत् का आपको अभेदरूप, भेदरूप, उभयरूप हर प्रकार से ज्ञान कराया। इसको कहते हैं ज्ञानदृष्टि, या पण्डिताई की दृष्टि। इससे

जीव को पदार्थ ज्ञान होता चला जाता है और वह ग्यारह अङ्ग तक पढ़ लेता है परन्तु मोक्षमार्गी रञ्चमात्र भी नहीं बनता। यह ज्ञान, मोक्षमार्ग में कब सहाई होता है ? जब जीव का दूसरा जो श्रद्धागुण है, उससे काम लिया जाए, अर्थात् मिथ्यादर्शन, से सम्यग्दर्शन उत्पन्न किया जाए। वह क्या है ?

अनादि काल से जीव की पर में एकत्वबुद्धि है, अहंकार -ममकारभाव है, अर्थात् यह है, सो मैं हूँ और यह मेरा है तथा पर में कर्तृत्व-भोक्तृत्वभाव, अर्थात् मैं, पर पर्याय फेर सकता हूँ और मैं, परपदार्थ को भोग सकता हूँ। इसके मिटने का नाम सम्यग्दर्शन। वह कैसे मिटे ? वह तब मिटे, जब आपको यह परिज्ञान हो कि प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र सत् है, अनादि-निधन है, स्वसहाय है। उसका अच्छा या बुरा परिणमन सोलह आने उसी के आधीन है।

जब तक स्वतन्त्र सत् का ज्ञान न हो, तब तक पर में एकत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्वभाव न किसी का मिट सकता है, न मिटा है; इसलिए पहले ज्ञानगुण के द्वारा सत् का ज्ञान करना पड़ता है क्योंकि वह ज्ञान, सम्यग्दर्शन में कारण पड़ता ही है परन्तु व्याप्ति उधर से है, इधर से नहीं है, अर्थात् सब जाननेवालों को सम्यग्दर्शन हो ही - ऐसा नहीं है, किन्तु जिनको होता है, उनको सत् के ज्ञानपूर्वक ही होता है। इससे पता चलता है कि ज्ञानगुण स्वतन्त्र है और श्रद्धागुण स्वतन्त्र है। दृष्टान्त भी मिलते हैं। अभव्यसेन जैसे ग्यारह अङ्ग के पाठी, श्रद्धा न करने से नरक में चले गये और श्रद्धा करनेवाले अल्पश्रुति भी मोक्षमार्गी हो गए। इसलिए पण्डिताई दूसरी चीज है और मोक्षमार्गी दूसरी चीज है। बिना मोक्षमार्गी हुए, कोरे ज्ञान से जीव का रञ्चमात्र भी भला नहीं है। पण्डिताई की दृष्टि तो भेदात्मकज्ञान, अभेदात्मकज्ञान और उभयात्मकज्ञान है, सो आपको करा ही दिया।

जैसे, जो श्रद्धागुण से काम न लेकर केवल, ज्ञान से काम लेते हैं, वे कोरे पण्डित रह जाते हैं और मोक्षमार्गी नहीं बन पाते; उसी प्रकार जो श्रद्धा से काम न लेकर, पहले चारित्र से काम लेने लगते हैं और बाबाजी बनने का प्रयत्न करते हैं, वे केवल मान का पोषण करते हैं। मोक्षमार्ग उनमें कहाँ! जब तक परिणति, स्वरूप को न पकड़ें, तब तक लाख संयम, उपवास करे–उनसे क्या? श्रीसमयसारजी में कहा है – कोरी क्रियाओं को करता मर भी जाए तो क्या? अरे! यह तो भान कर कि शुद्ध भोजन की, परपदार्थ की तथा शुभ या अशुभ शरीर की क्रिया तो आत्मा कर ही नहीं सकता। इनमें तो न पाप है, न पुण्य है, न धर्म है; यह तो स्वतन्त्र दूसरे द्रव्य की क्रिया है। अब रही शुभविकल्प की बात, तो वह आस्रवतत्त्व है, बन्ध है, पाप है। सोच तो! तू कर क्या रहा है और हो क्या रहा है? भाई! जब तक परिणति, स्वरूप को न ग्रहे, ये तो पाखण्ड है, कोरा संसार है, पशुवत क्रिया है। छहढाला में रोज तो पढ़ता है – 'मुनिव्रतधार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' वह तो शुद्धव्यवहारी की दशा कही, यहाँ तो व्यवहार का भी पता नहीं और समझता है अपने को मोक्ष का ठेकेदार या समाज में महान ऊँचा।

मोक्षमार्ग में नियम है कि विकल्प (राग) संसार है और निर्विकल्प (वीतरागता) मोक्षमार्ग है। अब वह राग कैसे मिटे और वीतरागता कैसे प्रगट हो? उसका विचार करना है। देखिये, विषय–कषाय का राग तो है ही संसार का कारण, इसमें तो द्वैत ही नहीं है। जिनका पिण्ड (पीछा) अभी उससे जरा भी नहीं छूटा, वे तो करेंगे ही क्या? ऐसे अपात्रों की तो यहाँ बात ही नहीं है। यहाँ तो मुमुक्षु का प्रकरण है। सो उसे कहते हैं कि भाई! यह ठीक है कि वस्तु भेदाभेदात्मक ही है परन्तु भेद में यह खराबी है कि उसका अविनाभावी विकल्प उठता है और वह आस्रव–बन्धतत्त्व है; इसलिए यह भेद को विषय

करनेवाला व्यवहारनय तेरे लिए हितकर नहीं है। अभेद को बतलानेवाला जो शुद्धद्रव्यार्थिकनय है, उसका विषय वचनातीत है, विकल्पातीत है। पदार्थ का ज्ञान करके संतुष्ट हो जा; भेद के पीछे मत पड़ा रह। यह भी विषय-कषाय की तरह एक बीमारी है। यह तो केवल अभेदवस्तु पकड़ाने का साधन था, सो वस्तु तूने पकड़ ली। अब 'व्यवहार से ऐसा है' 'व्यवहार से ऐसा है' अरे! इस रागनी को छोड़ और प्रयोजनभूत कार्य में लग। वह प्रयोजनभूत कार्य क्या है ? सुन! हम तुझे सिखा आये हैं कि प्रत्येक सत् स्वतन्त्र है, उसका चतुष्टय स्वतन्त्र है; इसलिए पर को अपना मानना छोड़।

दूसरे, जब वस्तु का परिणाम स्वतन्त्र है तो तू उसमें क्या करेगा ? अगर वह तेरे की हुई परिणमेगी तो उसका परिणमनस्वभाव व्यर्थ हो जायेगा और जो शक्ति जिसमें है ही नहीं, वह दूसरा देगा भी कहाँ से ? इसलिए मैं इसका ऐसा परिणमन करा दूँ या यह यूँ परिणमे तो ठीक, यह पर की कर्तृत्वबुद्धि छोड़।

तीसरे, जब एक द्रव्य, दूसरे को छू भी नहीं सकता तो भोगना क्या ? अत: यह जो पर के भोग की चाह है, इसे छोड़। यह तो नास्ति का उपदेश है, किन्तु इस कार्य की सिद्धि 'अस्ति' से होगी और वह इस प्रकार है कि जैसा तुझे सिखाया है - तेरी आत्मा में दो स्वभाव हैं - एक त्रिकाली स्वभाव-अवस्थित, दूसरा परिणाम-पर्यायधर्म। अज्ञानी जगत तो अनादि से अपने को पर्यायबुद्धि से देखकर, उसी में रत है। तू तो ज्ञानी बनना चाहता है; अत: अपने को त्रिकाली स्वभावरूप समझ! वैसा ही अपने को देखने का अभ्यास कर। यह जो तेरा उपयोग पर में भटक रहा है, पानी की तरह इसका रुख पलट। पर की ओर न जाने दे, स्वभाव की ओर इसे मोड़। जहाँ तेरी पर्याय ने पर की बजाय, अपने घर को पकड़ा और निज समुद्र में

मिली कि स्वभावपर्याय प्रगट हुई। बस उसका - स्वभावपर्याय प्रगट होने का नाम ही सम्यग्दर्शन है। तीन काल और तीन लोक में इसकी प्राप्ति का दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसके होने पर तेरा पूर्व का सब ज्ञान सम्यक् होगा। ज्ञान का वलन (बहावो, झुकावो, रुख) पर से रुक कर, स्व में होने लगेगा। ये दोनों गुण, जो अनादि से संसार के कारण बने हुए थे, फिर मोक्षमार्ग के कारण होंगे। ज्यों-ज्यों ये पर से छूटकर स्वघर में आते रहेंगे, त्यों-त्यों उपयोग की स्थिरता आत्मा में होती रहेगी। स्व की स्थिरता का नाम ही चारित्र है और वह स्थिरता शनैः शनैः पूरी हो कर तू अपने स्वरूप में जा मिलेगा (अर्थात्, सिद्ध हो जायेगा)।

सद्‌गुरुदेव की जय! ॐ शान्ति।

दृष्टि परिज्ञान, दूसरे भाग से

इस ग्रन्थ में चार दृष्टियों से काम लिया गया है, उनका जानना परम आवश्यक है अन्यथा आप ग्रन्थ का रहस्य न पा सकेंगे। A B दो व्यवहारदृष्टि C एक प्रमाणदृष्टि D एक द्रव्यदृष्टि।

A B (1) राम अच्छा लड़का है। यहाँ राम विशेष्य है और अच्छा उसका विशेषण है। जिसके बारे में कुछ कहा जाये, उसे विशेष्य कहते हैं और जो कहा जाय, उसे विशेषण कहते हैं। इसी प्रकार यहाँ 'सत्' विशेष्य है और चार युगल, अर्थात् आठ उसके विशेषण हैं। सत्, सामान्य भी है और सत्, विशेष भी है; अत: यह कहना कि 'सत्, सामान्य है' यहाँ सत्, विशेष्य है और सामान्य, उसका विशेषण है। इस वाक्य ने सत् के दो खण्ड कर दिये, एक सामान्य, एक विशेष। उसमें से सामान्य को कहा। सो जो विशेष्य, विशेषणरूप से कहे, वह अवश्य सत् को भेद करता है। जो भेद करे, उसको व्यवहारनय कहते हैं। कौन सा व्यवहारनय कहते हैं ? तो उत्तर देते हैं कि जिस रूप कहे, वही उस नय का नाम है। यह सामान्य व्यवहारनय है।

(2) फिर हमारी दृष्टि विशेष पर गयी। हमने कहा 'सत्, विशेष है।' यहाँ सत्, विशेष्य है और विशेष, उसका विशेषण है। यह विशेष नामवाला व्यवहारनय है। जिस रूप कहना हो, वह अस्ति, दूसरा नास्ति। अस्ति, अर्थात् मुख्य; नास्ति, अर्थात् गौण। इनका वर्णन श्लोक 756, 757 में हैं। सत्रूप देखना सामान्य, जीवरूप देखना विशेष है।

अब, नित्य-अनित्यनय को समझाते हैं।

(3) आपकी दृष्टि त्रिकाली स्वभाव पर गयी। आपने कहा कि 'सत् नित्य है'। यहाँ सत्, विशेष्य और नित्य, उसका विशेषण है। यह सत् में भेदसूचक नित्यनामक व्यवहारनय हुआ। उसका वर्णन श्लोक 761 में है।

(4) फिर आपकी दृष्टि, वस्तु के परिणमनस्वभाव पर (परिणाम पर,पर्याय पर) गयी। आपने कहा 'सत्, अनित्य है।' यहाँ सत्, विशेष्य है और अनित्य, उसका विशेषण है। यह अनित्यनामक व्यवहारनय है। इसका वर्णन श्लोक 760 में है।

अब, तत्-अतत्नय को समझाते हैं।

(5) जब आपने वस्तु को परिणमन करते देखा, तो आपकी दृष्टि हुई कि अरे! यह तो वही का वही है, जिसने मनुष्यगति में पुण्य कमाया था, वही स्वर्ग में फल भोग रहा है। तो आपने कहा 'सत्, तत् है'। यह तत्नामा व्यवहारनय है। इसका वर्णन श्लोक 765 में है।

(6) फिर आपकी दृष्टि परिणाम पर गयी, आपने कहा - अरे! वह तो मनुष्य था, यह देव है, दूसरा ही है, तो आपने कहा 'सत्, अतत् है।' यह अतत् नामक व्यवहारनय है, इसका वर्णन श्लोक 764 में है।

अब, एक-अनेक का परिज्ञान कराते हैं।

(7) किसी ने आपसे पूछा कि सत् एक है या अनेक? तो पहले आपकी दृष्टि एक धर्म पर पहुँची। आपने सोचा, उसमें प्रदेशभेद तो है नहीं, कई सत् मिलकर एक सत् बना ही नहीं, तो आपने झट कहा कि 'सत् एक है' यह एक नामक व्यवहारनय है, इसका वर्णन श्लोक 753 में है।

(8) फिर आपकी दृष्टि अनेक धर्मों पर गयी। आपने सोचा, अरे! द्रव्य का लक्षण भिन्न है, गुण का लक्षण भिन्न है, पर्याय का लक्षण भिन्न है, इन सब अवयवों को लिये हुए ही तो सत् है, तो आपने कहा 'सत् अनेक हैं।' यह अनेक नामक व्यवहारनय है। इसका वर्णन श्लोक 752 में है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ में आठ प्रकार के व्यवहारनयों का परिज्ञान कराया है।

(C) अब, आपको **प्रमाणदृष्टि** का परिज्ञान कराते हैं।

जब आपकी दृष्टि, सत् के एक-एक धर्म पर भिन्न-भिन्नरूप से न पहुँचकर, इकट्ठी दोनों धर्मों को पकड़ती है, तो आपको, सत् दोनों रूप दृष्टिगत होता है। दोनों को संस्कृत में उभय कहते हैं।

(9) अच्छा बतलाइये कि सत् सामान्य है या विशेष? तो आप कहेंगे जो सामान्य सत्रूप है, वही तो विशेष जीवरूप है; दूसरा थोड़े ही है। सामान्य-विशेष यद्यपि दोनों विरोधी धर्म हैं, परन्तु वस्तु में दोनों धर्म प्रत्यक्ष दिखते हैं। आपस में प्रेमपूर्वक रहते हैं कहो, या परस्पर की सापेक्षता से कहो, या मित्रता से कहो, या अविरोधपूर्वक कहो। इसलिए जो दृष्टि, परस्पर दो विरोधी धर्मों को अविरोधरूप से एक ही समय एक ही वस्तु में कहे, उसे प्रमाणदृष्टि या उभयदृष्टि कहते हैं। सो सत्, सामान्य-विशेषात्मक है, यह अस्ति-नास्ति को बतानेवाली प्रमाणदृष्टि है, इसका वर्णन श्लोक 759 में है।

(10) फिर आपकी दृष्टि, वस्तु के त्रिकालीस्वभाव और परिणमनस्वभाव-दोनों स्वभावों पर एक साथ पहुँची तो आप कहने लगे कि वस्तु नित्य भी है, अनित्य भी है; नित्यानित्य है - उभयरूप है, यह प्रमाणदृष्टि है, इसका वर्णन श्लोक 763 में है।

(11) फिर परिणमन करती हुई वस्तु में आपकी दृष्टि, तत्

–अतत्‌धर्म पर गयी। आपको दीखने लगा कि जो वही का वही है, वही तो नया–नया है – अन्य–अन्य है; दूसरा थोड़े ही है। इसको कहते हैं – तत्–अतत् को बतलानेवाली प्रमाणदृष्टि। इसका वर्णन श्लोक 767 में है।

(12) फिर आपकी दृष्टि, वस्तु के एक–अनेक धर्मों पर पहुँची – जब आप प्रदेशों से देखने लगे तो अखण्ड एक दीखने लगा, लक्षणों से देखने लगे तो अनेक दीखने लगा तो झट आपने कहा कि वस्तु एकानेक है – जो एक है, वही अनेक है। इसको कहते हैं – एक–अनेक को बतलानेवाली प्रमाणदृष्टि। इस दृष्टि का वर्णन श्लोक 755 में है।

(D) अब, आपको **अनुभयदृष्टि** का परिज्ञान कराते हैं।

(13) ऊपर आप यह जान चुके हैं कि एक दृष्टि से वस्तु सामान्यरूप है; दूसरी दृष्टि से वस्तु विशेषरूप है; तीसरी दृष्टि से वस्तु, सामान्य–विशेषात्मक है। अब, एक चौथी दृष्टि, वस्तु को देखने की और है, उस दृष्टि का नाम है – **अनुभयदृष्टि**।

जरा शान्ति से विचार कीजिये – वस्तु में न सामान्य है, न विशेष है, वह तो जो है सो है – अखण्ड है। यह तो आपको वस्तु का परिज्ञान कराने का एक ढंग था। कहीं सामान्य के प्रदेश भिन्न और विशेष के प्रदेश भिन्न हैं क्या? नहीं। इस दृष्टि में आकर वस्तु केवल अनुभव का विषय रह जाती है। शब्द में आप कह ही नहीं सकते क्योंकि शब्द में तो विशेषण–विशेष्यरूप से ही बोलने का नियम है। बिना इस नियम के कोई शब्द कहा ही नहीं जा सकता। जो आप कहेंगे, वह विशेषण–विशेष्यरूप पड़ेगा; इसलिए आपको अनुभव में तो बराबर आने लगा कि वस्तु न सामान्यरूप है, न विशेषरूप है; वह तो अखण्ड है – जो है, सो है। अनुभय शब्द का

अर्थ है – दोनों रूप नहीं। इसलिए इसका नाम रखा **अनुभयदृष्टि**। दोनों रूप नहीं का भाव यह नहीं है कि कुछ भी नहीं, किन्तु यह है कि दोनों रूप, अर्थात् भेदरूप नहीं, किन्तु अखण्ड है। भेद के निषेध में अखण्डता का समर्थन निहित है।

(क) क्योंकि इसको विशेषण-विशेष्यरूप से शब्द में नहीं बोल सकते; इसलिए इसका नाम रखा अनिर्वचनीयदृष्टि या अवक्तव्यदृष्टि।

(ख) क्योंकि वस्तु में किसी प्रकार का भेद नहीं हो सकता। भेद को व्यवहार कहते हैं, अभेद को निश्चय कहते हैं; इसलिए इस दृष्टि का नाम रखा निश्चयदृष्टि।

(ग) क्योंकि ये भेद का निषेध करती है; इसलिए इसका नाम हुआ – भेद निषेधकदृष्टि या व्यवहार निषेधकदृष्टि।

(घ) शब्द में जो कुछ आप बोलेंगे, उसमें वस्तु के एक अङ्ग का निरूपण होगा, सारी का नहीं।

देखिये, आपने कहा 'द्रव्य' ये तो द्रव्यत्वगुण का द्योतक है, वस्तु तो अनन्त गुणों का पिण्ड है। फिर आपने कहा 'वस्तु'। वस्तु तो वस्तुत्वगुण की द्योतक है, परन्तु वस्तु में तो अनन्त गुण हैं। फिर आपने कहा 'सत्' या 'सत्त्व' ये अस्तित्वगुण के द्योतक हैं। फिर आपने कहा 'अन्वय' ये त्रिकाली स्वभाव का द्योतक है, पर्याय रह जाती है। आप कहीं तक कहते चलिए, जगत में कोई ऐसा शब्द नहीं, जो वस्तु के पूरे स्वरूप को एक शब्द में कह दे; इसलिए जो आप कहेंगे वह विशेषण-विशेष्यरूप-भेदरूप पड़ेगा। जब आप भेदरूप से सब वस्तु का निरूपण कर चुकेंगे और फिर यह दृष्टि आपके सामने आयेगी तो आप झट कहेंगे कि 'ऐसा नहीं' इसका अर्थ है, भेदरूप नहीं, किन्तु अखण्ड। इसको संस्कृत में कहते हैं 'न

इति' सन्धि करके कहते हैं 'नेति'। 'नेति' का यह अर्थ नहीं कि कुछ नहीं, किन्तु यह अर्थ है कि भेदरूप कुछ नहीं, किन्तु अभेद। शब्दरूप कुछ नहीं, किन्तु अनुभवगम्य; इसलिए इसका नाम रखा 'न इति दृष्टि' या 'नेतिदृष्टि'।

(ङ) जैनधर्म में भेद को अशुद्ध भी कहते हैं और अभेद को शुद्ध कहते हैं; इसलिए इसका नाम है शुद्धदृष्टि।

(च) जैनधर्म में अखण्ड को द्रव्य कहते हैं और अखण्ड के एक अंश को पर्याय कहते हैं; इसलिए इसका नाम है द्रव्यदृष्टि। द्रव्य शब्द का अर्थ अखण्डदृष्टि।

(छ) कभी इसको विशेष स्पष्ट करने के लिए शुद्ध और द्रव्य दोनों शब्द इकट्ठे मिलाकर बोल देते हैं, तब इसका नाम होता है शुद्धद्रव्यदृष्टि या शुद्धद्रव्यार्थिकदृष्टि। शुद्धदृष्टि भी इसी का नाम है, द्रव्यदृष्टि भी इसी का नाम है, शुद्धद्रव्यदृष्टि भी इसी का नाम है।

(ज) भेद को जैनधर्म में विकल्प भी कहते हैं। विकल्प नाम राग का भी है। यहाँ भेद अर्थ इष्ट है। इसमें भेद नहीं है; इसलिए इसका नाम है निर्विकल्पदृष्टि या विकल्पातीतदृष्टि।

(झ) अभेद को सामान्य भी कहते हैं; इसलिए इसका नाम हुआ सामान्यदृष्टि। इस दृष्टि का वर्णन श्लोक 13 में है। सत् में सामान्य-विशेष का भेद नहीं है, इसका वर्णन तो 758 में किया है।

(14) सत् में नित्य-अनित्य का भेद नहीं है, इसका वर्णन श्लोक 762 में किया है।

(15) सत् में तत्-अतत् का भेद नहीं है, इसका वर्णन श्लोक 766 में किया है।

(16) सत् में एक-अनेक का भेद नहीं है, इसका वर्णन श्लोक 754 में किया है।

इस प्रकार ग्रन्थ में उपर्युक्त 16 दृष्टियों से काम लिया। सारे का

निरुपण इन्हीं 16 दृष्टियों के आधार पर है, जो मूलग्रन्थ में श्लोक 752 से 767 तक 16 श्लोकों द्वारा कहा गया है। हमारी हार्दिक भावना यही है कि आपका भला हो, आप ज्ञानी बनें। यह हम जानते है कि कोई किसी को ज्ञानी नहीं बना सकता; न हमारे भाव में ऐसी एकत्वबुद्धि है, किन्तु आशीर्वादरूप से ऐसा बोलने की व्यवहारपद्धति है। जिसके उपादान में समझने की योग्यता होगी, उन्हें ग्रन्थ निमित्तरूप में पड़ जायेगा।

ऐसी अलौकिक किन्तु सुन्दर वस्तुस्थिति समझानेवाले श्री कहानप्रभु सद्गुरुदेव की जय। ॐ शान्ति।

सप्तभङ्गी विज्ञान*

एक प्रमाण सप्तभङ्गी होती है, एक नय सप्तभङ्गी होती है। जो दो द्रव्यों पर लगायी जाती है, वह प्रमाण सप्तभङ्गी कहलाती है, सो श्री पञ्चास्तिकाय की गाथा 14 में तो प्रमाण सप्तभङ्गी का कथन है 'जैसे एक द्रव्य का, दूसरे द्रव्य में अभाव' वह इस प्रकार चलती है। दूसरी नय सप्तभङ्गी है, वह सामान्य-विशेष पर चलती है, जो श्रीप्रवचनसार की गाथा 115 में है। यह इस प्रकार चलती है कि सामान्य का विशेष में अभाव, विशेष का सामान्य में अभाव। चलाने का तरीका दोनों का एक प्रकार का है।

श्री पञ्चास्तिकाय में तो छह द्रव्यों का विषय था; इसलिए वहाँ छह द्रव्यों पर लगनेवाली द्रव्य सप्तभङ्गी की आवश्यकता पड़ी और श्रीप्रवचनसार में एक ही द्रव्य के सामान्य-विशेष का विषय चल रहा था; इसलिए वहाँ नय सप्तभङ्गी बतलायी।

इस ग्रन्थ में सब विषय, नय सप्तभङ्गी का है क्योंकि यह

* यह लेख इस ग्रन्थ के श्लोक नम्बर 287, 288, 335, 499 का मर्म खोलने के लिये लिखा गया है। प्रमाण के लिए देखिए श्री पञ्चास्तिकाय, गाथा 14 तथा श्री प्रवचनसार गाथा 115।

सम्पूर्ण ग्रन्थ एक ही द्रव्य पर लिखा गया है। दूसरे द्रव्य का यह स्पर्श भी नहीं करता। वह सप्तभङ्गी यहाँ सामान्य-विशेष के चार युगलों पर लगेगी। अत: सबसे पहले एक नित्य-अनित्य युगल पर लगाकर दिखलाते हैं। इससे आपको सरलता से समझ में आ जायेगी।

देखिये, द्रव्य में दो स्वभाव हैं, एक तो यह कि वह अपने स्वभाव को त्रिकाल एकरूप रखता है। दूसरा यह कि वह हर समय परिणमन करके नये-नये परिणाम उत्पन्न करता है। स्वभाव, त्रिकाल स्थायी है; परिणाम एक समय स्थायी है; अत: दोनों भिन्न हैं। अब जिसको आपको कहना हो, वह मुख्य हो जाता है। मुख्य को 'स्व' कहते हैं। दूसरा धर्म गौण हो जाता है। गौण को 'पर' कहते हैं। यह ध्यान रहे कि स्व या पर किसी खास का नाम नहीं है। जिसके विषय में कहना हो, वही स्व कहलाता है। अब आपको त्रिकाली स्वभाव को कहना है, तो त्रिकाली स्वभाव का नाम स्व हो जायेगा और परिणाम का नाम पर हो जायेगा तो आप इस प्रकार कहेंगे –

(1) वस्तु, स्व से है, अर्थात् त्रिकाली स्वभाव की अपेक्षा से है। इस दृष्टिवाले को सबकी सब वस्तु एक स्वभावरूप दृष्टिगत होगी – जीवरूप दिखेगी; मनुष्य, देवरूप नहीं दिखेगी। वह धर्म बिल्कुल गौण हो जायेगा। यह पहला अस्तिनय है। अस्ति, अर्थात् मुख्य – जिसके कहने की आपने मुख्यता की है।

(2) उसी समय वस्तु, पररूप से नहीं है, अर्थात् परिणाम की अपेक्षा से नहीं है। इस दृष्टिवाले को वस्तु, पर्यायरूप – मनुष्यरूप नहीं दिख रही है। वह धर्म बिल्कुल गौण है, गौणवाले को नास्ति कहते हैं। यह दूसरा नास्तिनय है। यह ज्ञानियों के देखने की रीति है।

अब, अज्ञानी कैसे देखते हैं – यही बताते हैं, उनको द्रव्यदृष्टि का तो ज्ञान ही नहीं, उनकी केवल पर्यायदृष्टि ही रहती है। अब आप भी यदि इस दृष्टि से देखना चाहते हों तो पर्याय को मुख्य करिये –

स्वभाव को गौण करिये। पर्याय स्व हो जायेगी, स्वभाव पर हो जाएगा। अब कहिये –

(1) वस्तु, स्व से है-अस्ति, इसको सारा जीव, मनुष्यरूप दृष्टिगत होगा।

(2) वस्तु, पर से नहीं है। स्वभाव अत्यन्त गौण है। इस सप्तभङ्गी का प्रयोग तो ज्ञानी ही जानते हैं। ऊपर अज्ञानी का तो दृष्टान्तरूप से लिखा है। अज्ञानी को तो एकत्वदृष्टि है। सप्तभङ्गी का प्रयोग तो अनेकान्तदृष्टिवाले ज्ञानी, प्रयोजनसिद्धि के लिए करते हैं।

(3) अब, दोनों धर्मों को क्रमशः ज्ञान कराने के लिए कहते हैं कि वस्तु स्व (त्रिकाल स्वभाव से है) और पर (परिणाम) से नहीं है या वस्तु स्व (परिणाम) से और पर (त्रिकाल स्वभाव) से नहीं है – यह अस्ति-नास्ति तीसरा भंग है। इसका लाभ यह है कि वस्तु के दोनों पड़खों का क्रमशः ज्ञान हो जाता है।

(4) अब, वे दोनों धर्म, वस्तु में तो एक समय में युगपत इकट्ठे हैं और आप क्रम से कह रहे हैं। अब, आपकी इच्छा हुई कि मैं एक साथ ही कहूँ तो उस भाव को प्रगट करने के लिए अवक्तव्य शब्द नियुक्त किया गया। अवक्तव्य कहनेवाले तथा समझनेवाले का इस शब्द से यह भाव स्पष्ट प्रगट हो जाता है कि वह दोनों भावों को युगपत कह रहा है। यह चौथा अवक्तव्यभङ्ग है। एक बात यहाँ खास समझने की है कि यह अवक्तव्यनय और है और दृष्टि परिज्ञान में जो अनुभयदृष्टि बतलायी थी, वह और चीज है। यहाँ वस्तु के दोनों धर्मों की भिन्न-भिन्न स्वीकारता है। कहनेवाला दोनों को एक समय में कहना चाहता है परन्तु शब्द नहीं हैं; इसलिए अवक्तव्यनय नाम रखा। जबकि वहाँ (अनुभयदृष्टि में) सामान्य-विशेष का भेद ही नहीं है। उसका लक्षण ऐसा है कि न सामान्य है, न विशेष है।

यह भेद ही जहाँ नहीं है, उसकी दृष्टि में वस्तु में भेद कहना ही भूल है। जो है, सो है। उसका विषय अनुभवगम्य है; शब्द में अनिर्वचनीय है, अवक्तव्य है परन्तु वह अखण्ड वस्तु की द्योतक है।

नयभङ्गी में अवक्तव्यनय, वस्तु के एक अंश की कहनेवाला है। यह भेदसहित दोनों धर्मों को युगपत स्वीकार करता है। वह दोनों धर्मों को ही वस्तु में स्वीकार नहीं करती - इतना अन्तर है। वह दृष्टि श्रीसमयसार, गाथा 272 से निकाली है। वहाँ उसका लक्षण व्यवहारप्रतिषेध लिखा है। वह आध्यात्मिक वस्तु है। यह दृष्टि श्री पञ्चास्तिकाय, गाथा 14 तथा श्रीप्रवचनसार, गाथा 115 से निकाली है। इसका लक्षण इन दोनों में ऐसा लिखा है 'स्यादस्त्यवक्तव्यमेव स्वरूपपररूपयौगपद्याभ्यां'। (1) यह आगम की वस्तु है, (2) वह निर्विकल्प है, यह सविकल्प है। (3) वह अखण्ड की द्योतक है, यह अंश की द्योतक है। (4) वह नयातीत अवस्था है, यह नयदृष्टि है। आगम में कहाँ अनुभय शब्द या अवक्तव्य शब्द या अनिर्वचनीय शब्द किसके लिए आया है ? यह गुरुगम से ध्यान रखने की बात है। भाव आपके हृदय में झलकना चाहिए, फिर आप मार नहीं खायेंगे। भाव भासित हुए बिना तो, आगम का निरूपण मोक्षशास्त्र में कहा है कि सत् (सच्चे) और असत् (झूठे) की विशेषता बिना, पागल के समान इच्छानुसार बकता है। यह चौथा नय (भङ्ग) पूरा हुआ। शेष तीन तो इनके संयोगरूप हैं और उनमें कोई विशिष्ट बात नहीं है।

(B) अब एक-अनेक युगल पर लगाते हैं। एक या अनेक, जिसको आप कहना चाहते हैं या जिसरूप वस्तु को देखना चाहते हों, उसका नाम होगा स्व और दूसरे का पर। मानों आप एकरूप से कहना चाहते हैं तो -

(1) वस्तु, स्व (एकरूप) से है। इसमें सारी वस्तु अखण्ड नजर आयेगी।

(2) और उस समय वस्तु, पररूप से (अनेकरूप से) नहीं है। यह धर्म बिल्कुल गौण हो जायेगा। यदि अनेकरूप देखने की इच्छा है तो कहिये-

(1) वस्तु स्व (अनेक) रूप से है। इस दृष्टिवाले को द्रव्य अपने लक्षण से भिन्न नजर आयेगा, गुण अपने लक्षण से भिन्न नजर आयेगा, पर्याय अपने लक्षण से भिन्न नजर आयेगी और उस समय वही वस्तु -

(2) पर (एकत्व) से नहीं है। वस्तु का अखण्डपना लोप हो जायेगा-डूब जाएगा। ज्ञानी की एकत्वदृष्टि की मुख्यता रहती है। अज्ञानी जगत की सर्वथा अनेकत्वदृष्टि है।

(3) एक-अनेक दोनों को क्रम से देखना हो तो कहिये - 'स्व से है, पर से नहीं है'। यह अस्ति-नास्ति।

(4) एक-अनेक दोनोंरूप एक साथ देखना हो तो कहेंगे 'वस्तु अवक्तव्य है'। शेष तीन भङ्ग इनके योग से जान लेना।

(C) अब, तत्-अतत् पर लगाते हैं। जब आपको यह देखना हो कि वस्तु, वही की वही है, तो तत् धर्म की मुख्यता होगी और इसका नाम होगा 'स्व', अब कहिये -

(1) वस्तु, स्व (तत् धर्म से) है। इसमें सारी वस्तु, वही की वही नजर आयेगी।

(2) वस्तु, पर से नहीं है। इसमें अतत्धर्म (नयी-नयी वस्तु) बिल्कुल गौण जो जाएगा। अगर आपको अतत्धर्म देखना है तो अतत्धर्म स्व हो जाएगा। (1) वस्तु स्व (अतत्) रूप से है। इसमें समय-समय की वस्तु नयी-नयी नजर आयेगी। (2) वस्तु पर से नहीं है। इसमें वस्तु वही की वही है, ये धर्म बिल्कुल गौण हो जाएगा। (3) क्रम से वही की वही और नयी-नयी देखनी है तो कहिये आस्ति-नास्ति। (4) एक समय में दोनों रूप देखनी है तो अवक्तव्य। शेष तीन इसके योग से जान लेना।

ज्ञानियों को तत्धर्म की मुख्यता रहती है। अज्ञानी जगत् तो देखता ही अतत्धर्म से है; तत्धर्म का उसे ज्ञान ही नहीं।

(D) अब, सामान्य-विशेष पर लगाते हैं। आपको सामान्यरूप से वस्तु देखनी हो, तो सामान्यधर्म स्व होगा।

(1) कहिये — वस्तु, स्व से है। इसमें सारी वस्तु सत्रूप ही नजर आयेगी, फिर कहिये -

(2) वस्तु, पर से नहीं है। विशेषरूप से बिल्कुल गौण हो जायेगी - जीवरूप नहीं दिखेगी। यदि आप विशेषरूप से देखना चाहते हो तो विशेष को स्व बना लीजिये। कहिये (1) वस्तु, स्व से है तो आपको सारी वस्तु विशेषरूप नजर आयेगी - जीवरूप ही दृष्टिगत होगी। (2) वस्तु, पर से नहीं है। सामान्यपक्ष उसी समय बिल्कुल नजर न आयेगा - सत्रूप से नहीं दिखेगा। (3) दोनों धर्मों को क्रम से देखना हो तो अस्ति-नास्ति। (4) युगपत देखना हो तो अवक्तव्य। शेष तीन इनके योग से जान लेना।

ज्ञानी, सदा विशेष को गौण करके सामान्य से देखते हैं। अज्ञानी सदा विशेष को देखता है, वह बेचारा सामान्य को समझता ही नहीं। विशेष की दृष्टि हलकी पड़े तो सामान्य पकड़ में आये - ऐसा ग्रन्थकार का आशय उपर्युक्त चार श्लोकों में निहित है।

अनेकान्त के जानने का लाभ

अब, यह देखना है कि यह मदारी का तमाशा है या कुछ इसमें सार बात भी है ? भाई ! इसको कहते हैं 'स्याद्वाद-अनेकान्त' यही तो हमारे सिद्धान्त की भित्ती है। हमारे सरताज श्री अमृतचन्द्रसूरि ने श्रीपुरुषार्थसिद्धि में इसको जीवभूत या बीजभूत कहा है। श्रीसमयसार के परिशिष्ट में इसके न जाननेवाले को सीधा पशु शब्द से सम्बोधित किया है। यद्यपि आध्यात्मिक सन्त ऐसा कड़ा शब्द नहीं कहते,

परन्तु अधिक करुणाबुद्धि से शिष्य को यह बतलाने के लिए कि यदि यह न समझा तो कुछ नहीं समझा-ऐसा कहा है। श्रीप्रवचनसार तथा श्रीसमयसार के दूसरे कलश में इसको मङ्गलाचरण में स्मरण किया है - इसका कारण क्या है? इसका कारण हम आपको इस ग्रन्थ के प्रारम्भ के श्लोक 261, 262, 263 में बतला चुके हैं कि वस्तु उपर्युक्त चार युगलों से गुँथी हुई है और द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव हर प्रकार से गुँथी हुई है। वह चीज जैसी है, वैसा ही तो उसका ज्ञान होना चाहिए, अन्यथा मिथ्या हो जाएगा।

अब, देखिये इससे लाभ क्या है।

(1) वस्तु में नित्यधर्म है, जिसके कारण वस्तु अवस्थित है। इस धर्म के जानने से पता चलता है कि द्रव्यरूप से तो मोक्ष, वस्तु में वर्तमान में विद्यमान ही है, तो फिर उसका आश्रय करके कैसे नहीं प्रकट किया जा सकता?

(B) अनित्यधर्म से पता चलता है कि पर्याय में मिथ्यात्व है, राग है, दुःख है। साथ ही यह पता चल जाता है कि परिणमनस्वभाव द्वारा बदलकर यह सम्यक्त्व, वीतरागता और सुखरूप परिवर्तित किया जा सकता है, तो भव्य जीव, नित्य स्वभाव का आश्रय करके, पर्याय के दुःख को सुख में बदल लेता है।

(C) मानो वस्तु ऐसे ख्याल में न आवे - केवल एकान्त नित्य ख्याल में आवे तो अपने को भी सभी सर्वथा मुक्त मानकर निश्चयाभासी हो जायेगा और पुरुषार्थ को लोप करेगा।

(D) केवल अनित्य ही वस्तु ख्याल में आयी तो मूलतत्त्व ही जाता रहा, सारा खेल ही बिगड़ गया। पुरुषार्थ करनेवाला कर्ता ही नहीं रहा। इस प्रकार वस्तु अनेकान्तात्मक है, यह प्रत्यक्ष अनुभव में आता है।

(2) एक जगह दु:ख होने से सम्पूर्ण में दु:ख होता है, इससे उस की अभेदता, अखण्डता, एकता ख्याल में आती है।

(B) चौथै गुणस्थान में क्षायिकसम्यक्त्व हो जाता है। चारित्र में पुरुषार्थ की दुर्बलता के कारण कृष्णलेश्या चलती है, इससे वस्तु की भेदता, अनेकता, खण्डता का परिज्ञान प्रत्यक्ष होता है।

(3) जो यहाँ पुण्य करता है, वही स्वर्ग में सुख भोगता है; जो यहाँ पाप करता है, वही नरक में दु:ख भोगता है; जो यहाँ शुद्धभाव करता है, वही मोक्ष में निराकुल सुख पाता है – इससे उसके तत्धर्म का ज्ञान होता है।

(B) हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि लड़का मर जाता है, घरवाले रोते है; जिसके यहाँ वह जन्म लेता है, वे जन्मोत्सव मनाते हैं। इस पर्यायदृष्टि से पता चलता है कि यहाँ का जीव नष्ट हो गया, वहाँ नया पैदा हुआ। यह प्रत्यक्ष अज्ञानी जगत की अतत्दृष्टि है।

(4) आपको क्या यह अनुभव नहीं है कि आप सत् हैं ? इससे वस्तु के सामान्यधर्म का परिज्ञान होता है।

(B) परन्तु आप जीव हैं, पुद्गल तो नहीं, इससे वस्तु विशेष भी है, यह ख्याल आता है। इस प्रकार वस्तु चार युगलों से गुम्फित है, यह सर्व साधारण को प्रत्यक्ष अनुभव होता है। यह जो हमने अनेकान्त का लाभ लिखा है। यद्यपि यह विषय इस पुस्तक में नहीं है, इसमें तो केवल वस्तु का अनेकान्तात्मकता का परिज्ञान कराया है, हमने चूलिकारूप से आपकी अनेकान्त के मर्म को जानने की रुचि हो जाये, इस ध्येय से संक्षिप्तरूप में लिखा है। अनेकान्त का विषय बहुत रूखा है; अत: लोगों को समझने की रुचि नहीं होती तथा विवेचन भी पण्डिताई के ढंग से बहुत कठिन किया जाता है, जो समझ नहीं आता। हमने तो सरल देशी भाषा में आपके हितार्थ लिखा है।

श्री सद्गुरुदेव की जय। ॐ शान्ति।

प्रश्नोत्तर

अस्ति-नास्ति युगल

प्रश्न 72- वस्तु की अनेकान्तात्मक स्थिति बताओ?

उत्तर - प्रत्येक वस्तु, स्यात् अस्ति-नास्ति; स्यात् तत्-अतत्; स्यात् नित्य-अनित्य; स्यात् एक-अनेक; इन चार युगलों से गुँथी हुई है। इसका अर्थ यह है कि जो वस्तु द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से अस्तिरूप है; वही वस्तु उसी समय द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से, भाव से नास्तिरूप भी है तथा वही वस्तु इसी प्रकार अन्य चार युगलरूप भी है। एक दृष्टि से वस्तु का चतुष्टय त्रिकाल एकरूप है; एक दृष्टि से वस्तु का चतुष्टय समय-समय का भिन्न-भिन्नरूप है। *(262-263)*

प्रश्न 73- 'अस्ति-नास्ति' युगल के नामान्तर बताओ? इनका वर्णन कहाँ-कहाँ आया है?

उत्तर - अस्ति-नास्ति युगल को सत्-असत् युगल भी कहते हैं, महासत्ता-अवान्तरसत्ता युगल भी कहते हैं, सामान्य-विशेष युगल भी कहते हैं, भेदाभेद युगल भी कहते हैं। इसका वर्णन प्रारम्भ में श्लोक 15 से 22 तक, मध्य में 264 से 308 तक, अन्त में 756 से 759 तक आया है।

प्रश्न 74- महासत्ता के नामान्तर बताओ?

उत्तर - महासत्ता, सामान्य, विधि, निरंश, स्व, शुद्ध, प्रतिषेधक, निरपेक्ष, अस्ति, व्यापक।

प्रश्न 75- अवान्तरसत्ता के नामान्तर बताओ?

उत्तर - अवान्तरसत्ता, विशेष, प्रतिषेध, सांश, पर, अशुद्ध, प्रतिषेध्य, सापेक्ष, नास्ति, व्याप्य।

प्रश्न 76- द्रव्य से अस्ति-नास्ति बताओ?

उत्तर - वस्तु, स्वभाव से ही सामान्य-विशेषात्मक बनी हुई है। उसे सामान्यरूप से, अर्थात् केवल सत्‌रूप से देखना, महासत्ता और द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रुव आदि के किसी भेदरूप से देखना, अवान्तरसत्ता है। प्रदेश, दोनों के एक ही हैं। स्वरूप दोनों का एक ही है। जिस दृष्टि से देखते हैं, उसको अस्ति या मुख्य कहते हैं और जिस दृष्टि से नहीं देखते, उसे नास्ति या गौण कहते हैं। जो वस्तु, सत्‌रूप है, वही तो जीवरूप है। *(264 से 268 तक)*

प्रश्न 77- क्षेत्र से अस्ति-नास्ति बताओ?

उत्तर - वस्तु, स्वभाव से देश-देशांशरूप बनी हुई है। प्रदेश वही है, स्वरूप वही है। देशदृष्टि से देखना, सामान्यदृष्टि है। इससे वस्तुओं में भेद नहीं होता है। देशांशदृष्टि से देखना, विशेषदृष्टि है। जिस दृष्टि से देखना हो, वह क्षेत्र से अस्ति, दूसरी नास्ति। जो वस्तु देशमात्र है, वही तो विशेष देशरूप है; जैसे जो देशरूप है, वही तो असंख्यात् प्रदेशी आत्मा है। *(270 से 272 तक)*

प्रश्न 78- काल से अस्ति-नास्ति बताओ?

उत्तर - वस्तु, स्वभाव से ही काल-कालाशंरूप बनी हुई है। प्रदेश वही है, स्वरूप वही है। काल से देखना, सामान्यदृष्टि, कालांशदृष्टि से देखना, विशेषदृष्टि। जिस दृष्टि से देखना, वह काल से अस्ति और जिससे नहीं देखना, वह काल से नास्ति। जो वस्तु सामान्यपरिणमनरूप है, वही तो विशेषपरिणमनरूप है; जैसे

आत्मा में पर्याय, यह सामान्यकाल; मनुष्यपर्याय, यह विशेषकाल।

(274 से 277 तक, 756, 757)

प्रश्न 79- भाव से अस्ति-नास्ति बताओ ?

उत्तर - वस्तु, स्वभाव से ही भाव-भावांशरूप बनी हुई है। प्रदेश, वही है; स्वरूप, वही है। भाव की दृष्टि से देखना, सामान्यदृष्टि, भावांश की दृष्टि से देखना, विशेषदृष्टि। जिस दृष्टि से देखो, वह भाव से अस्ति-दूसरी नास्ति। जो वस्तु, भावसामान्यरूप है, वही तो भावविशेष (ज्ञानगुण) रूप है। *(279 से 282 तक)*

प्रश्न 80- उपर्युक्त चारों का सार क्या है ?

उत्तर - वस्तु, सत् सामान्य की दृष्टि से, द्रव्य से, क्षेत्र से , काल से, भाव से हर प्रकार निरंश है और वही वस्तु द्रव्य-क्षेत्र-काल -भाव की अपेक्षा अंशों में विभाजित हो जाती है; अतः सांश है। वस्तु दोनों रूप है। वह सारी की सारी जिसरूप देखनी हो, उसको मुख्य या अस्ति कहते हैं; दूसरी को गौण या नास्ति कहते हैं।

(284 से 286 तक)

प्रश्न 81- अस्ति-नास्ति का उभयभङ्ग बताओ ?

उत्तर - जो स्व (सामान्य या विशेष जिसकी विवक्षा हो) से अस्ति है, वही पर (सामान्य या विशेष जिसकी विवक्षा न हो) से नास्ति है, तथा वही निर्वचनीय है। यह उभयभङ्ग या प्रमाणदृष्टि है।

(286 से 308 तक तथा 759)

प्रश्न 82- अस्ति-नास्ति का अनुभयभङ्ग बताओ ?

उत्तर - वस्तु किसरूप से है और किसरूप से नहीं है, यह भेद ही जहाँ नहीं है, किन्तु वस्तु की अनिर्वचनीय-अवक्तव्य-निर्विकल्प (अखण्ड) दृष्टि है, वह अनुभयनय या शुद्ध (अखण्ड) द्रव्यार्थिकनय का पक्ष है। *(758)*

प्रश्न 83- पर्यायर्थिकनय के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - पर्यायदृष्टि, व्यवहारदृष्टि, विशेषदृष्टि, भेददृष्टि, खण्डदृष्टि, अंशदृष्टि, अशुद्धदृष्टि, म्लेच्छदृष्टि।

प्रश्न 84- उभयदृष्टि के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - प्रमाणदृष्टि, उभयदृष्टि, अविरुद्धदृष्टि, मैत्रीभावदृष्टि, सापेक्षदृष्टि।

प्रश्न 85- अनुभयदृष्टि के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - अनुभयदृष्टि, अनिर्वचनीयदृष्टि, अवक्तव्यदृष्टि, निश्चयदृष्टि, भेदनिषेधकदृष्टि, व्यवहारनिषेधकदृष्टि, नेतिदृष्टि, शुद्धदृष्टि, द्रव्यदृष्टि वा द्रव्यार्थिकदृष्टि, शुद्धद्रव्यदृष्टि, निर्विकल्पदृष्टि, विकल्पातीतदृष्टि, सामान्यदृष्टि, अभेददृष्टि, अखण्डदृष्टि।

तत्-अतत् युगल

प्रश्न 86- तत्-अतत् में किस बात का विचार किया जाता है ?

उत्तर - नित्य-अनित्य अधिकार में बतलाये हुए परिणमन -स्वभाव के कारण, वस्तु में जो समय-समय का परिणाम उत्पन्न होता है, वह परिणाम सदृश है या विसदृश है या सदृशासदृश है - इसका विचार तत्-अतत् में किया जाता है। *(312)*

प्रश्न 87- तत् किसे कहते हैं ?

उत्तर - परिणमन करती हुई वस्तु, वही की वही है; दूसरी नहीं है - इसको तत्भाव कहते हैं। *(310, 764)*

प्रश्न 88- अतत् किसे कहते हैं ?

उत्तर - परिणमन करती हुई वस्तु, समय-समय में नयी-नयी

उत्पन्न हो रही है; वह की वह नहीं है, इसको अतत्भाव कहते हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक समय का सत् ही भिन्न-भिन्नरूप है। *(310, 765)*

प्रश्न 89- तत्-अतत् युगल का दूसरा नाम क्या है ?

उत्तर - तत्-अतत् को भाव-अभाव युगल भी कहते हैं। सदृश -विसदृश युगल भी कहते हैं। सत्-असत् युगल भी कहते हैं।

प्रश्न 90- तत्धर्म का क्या लाभ है ?

उत्तर - इससे तत्त्व की सिद्धि होती है। *(314, 331)*

प्रश्न 91- अतत्धर्म का क्या लाभ है ?

उत्तर - इससे क्रिया, फल, कारक, साधन, साध्य, कारण, कार्य आदि भावों की सिद्धि होती है। *(314, 331)*

प्रश्न 92- तत्-अतत् युगल पर नय-प्रमाण लगाकर दिखलाओ ?

उत्तर - वस्तु, एक समय में तत्-अतत् दोनों भावों से गुँथी हुई है।

(1) सारी की सारी वस्तु को वही की वही है, इस दृष्टि से देखना तत्दृष्टि है।

(2) सारी की सारी वस्तु समय-समय में नयी-नयी उत्पन्न हो रही है, इस दृष्टि से देखना अतत्दृष्टि है।

(3) जो वही की वही है, वह ही नयी-नयी उत्पन्न हो रही है; इस प्रकार दोनों धर्मों से परस्पर सापेक्ष देखना, उभयदृष्टि या प्रमाणदृष्टि है, तथा

(4) दोनोंरूप नहीं देखना, अर्थात् न वही की वही है-न नयी -नयी है, किन्तु अखण्ड है; इस प्रकार देखना अनुभयदृष्टि या शुद्धद्रव्यार्थिकदृष्टि है। *(333, 334, 734 से 737)*

नित्य-अनित्य युगल

प्रश्न 93- नित्य-अनित्य युगल का रहस्य बताओ?

उत्तर - वस्तु, जैसे स्वभाव से स्वत:सिद्ध है, वैसे वह स्वभाव से परिणमनशील भी है। स्वत: सिद्धस्वभाव के कारण उसमें नित्यपना (वस्तुपना) है और परिणमनस्वभाव के कारण उसमें अनित्यपना (पर्यायपना-अवस्थापना) है। दोनों स्वभाव, वस्तु में एक समय में हैं। *(338)*

प्रश्न 94- दोनों स्वभावों को एक समय में एक ही पदार्थ में देखने के दृष्टान्त बताओ?

उत्तर - (1) जीव और उसमें होनेवाली मनुष्यपर्याय।

(2) दीप और उसमें होनेवाला प्रकाश।

(3) जल और उसमें होनेवाली कल्लोलें।

(4) मिट्टी और उसमें होनेवाला घट। जगत का प्रत्येक पदार्थ इसी रूप है। *(411, 412, 413)*

प्रश्न 95- नित्य किसे कहते हैं?

उत्तर - पर्याय पर दृष्टि न देकर, जब द्रव्यदृष्टि से केवल अविनाशी-त्रिकाली स्वभाव देखा जाता है तो वस्तु नित्य (अवस्थित) प्रतीत होती है। *(339, 761)*

प्रश्न 96- नित्यस्वभाव की सिद्धि कैसे होती है?

उत्तर - 'यह वही है' इस प्रत्यभिज्ञान से इसकी सिद्धि होती है। *(414)*

प्रश्न 97- अनित्य किसे कहते हैं?

उत्तर - त्रिकाली स्वत:सिद्धस्वभाव पर दृष्टि न देकर, जब

पर्याय से केवल क्षणिक अवस्था देखी जाती है, तो वस्तु अनित्य (अवस्थित) प्रतीत होती है। *(340, 760)*

प्रश्न 98- अनित्य की सिद्धि कैसे होती है ?

उत्तर - 'यह वह नहीं है' इस अनुभूति से इसकी सिद्धि होती है। *(414)*

प्रश्न 99- उभय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जब एक साथ स्वत:सिद्धस्वभाव और उसके परिणाम, दोनों पर दृष्टि होती है, तो वस्तु उभयरूप दीखती है - यह प्रमाणदृष्टि है। जैसे, जो जीव है, वही तो यह मनुष्य है; जो मिट्टी है, वही तो घड़ा है; जो दीप है, वही तो प्रकाश है; जो जल है, वही तो कल्लोलें हैं। *(415, 763)*

प्रश्न 100- अनुभय किसे कहते हैं ?

उत्तर - वस्तु, न नित्य है न अनित्य है; अखण्ड है और अखण्ड का वाचक शब्द कोई है ही नहीं। जो कहेंगे, वह विशेषण -विशेष्यरूप हो जायगा और वह भेदरूप पड़ेगा; इसलिए अखण्डदृष्टि से अनुभय है। इसे शुद्ध (अखण्ड) द्रव्यार्थिकदृष्टि भी कहते हैं। *(415, 762)*

प्रश्न 101- पूर्वोक्त प्रश्न 'नित्य किसे कहते हैं' के उत्तर में जो द्रव्यदृष्टि कही है, उसमें और अनुभय के उत्तर में जो शुद्ध द्रव्यदृष्टि है, दोनों में क्या अन्तर है' ?

उत्तर - वह पर्याय (अंश) को गौण करके त्रिकाली स्वभाव अंश की द्योतक है, उसको द्रव्यदृष्टि या नित्य पर्यायदृष्टि भी कहते हैं और यहाँ दोनों अंशों के अखण्ड पिण्ड को नित्य-अनित्य का भेद न करके, अखण्ड का ग्रहण शुद्धद्रव्यदृष्टि है। यहाँ शुद्ध शब्द, अखण्ड अर्थ में है। *(761, 762)*

प्रश्न 102- शुद्धद्रव्यदृष्टि और प्रमाण में क्या अन्तर है क्योंकि यह भी पूरी वस्तु को ग्रहण करती है और प्रमाण भी पूरी वस्तु को ग्रहण करता है ?

उत्तर - प्रमाणदृष्टि में नित्य-अनित्य दोनों पड़खों का जोड़रूप ज्ञान किया जाता है - जैसे, जो नित्य है, वही अनित्य है। इसमें वस्तु उभयरूप है और उसमें वस्तु, अनुभवगोचर है; शब्द से अगोचर है, अनिर्वचनीय है। उसमें नित्य-अनित्य का भेद नहीं है, उसमें वस्तु अखण्ड, एकरूप अखण्ड है। *(762, 763)*

प्रश्न 103- व्यस्त-समस्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - भिन्न-भिन्न को व्यस्त कहते हैं, अभिन्न को समस्त कहते हैं। स्वभावदृष्टि से समस्तरूप हैं क्योंकि स्वभाव का कभी भेद नहीं होता है, जैसे - जीव। अवस्थादृष्टि से व्यस्तरूप है क्योंकि समय-समय का परिणाम, अर्थात् अवस्था प्रत्यक्ष भिन्न-भिन्नरूप है, जैसे - मनुष्य, देव। *(416)*

प्रश्न 104- क्रमवर्ती-अक्रमवर्ती किसे कहते हैं ?

उत्तर - स्वभावदृष्टि को अक्रमवर्ती कहते हैं क्योंकि वह सदा एकरूप है, जैसे जीव। परिणाम-अवस्था-पर्यायदृष्टि को क्रमवर्ती कहते हैं क्योंकि अनादि से अनन्त काल तक क्रमबद्धपरिणमन करना भी वस्तु का स्वभाव है, जैसे - मनुष्य, देव। *(417)*

प्रश्न 105- परिणाम के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - परिणाम, पर्याय, अवस्था, दशा, परिणमन, विक्रिया, कार्य, क्रम, परिणति, भाव।

प्रश्न 106- सर्वथा नित्यपक्ष में क्या हानि है ?

उत्तर - सत् को सर्वथा नित्य मानने से विक्रिया (परिणति)

का अभाव हो जायेगा और उसके अभाव में तत्त्व, क्रिया, फल, कारक, कारण, कार्य कुछ भी नहीं बनेगा। *(423)*

प्रश्न 107- तत्त्व किस प्रकार नहीं बनेगा ?

उत्तर - परिणाम, सत् की अवस्था है और उसका आप अभाव मानते हो तो परिणाम के अभाव में परिणामी का अभाव स्वयं सिद्ध है। व्यतिरेक के अभाव में, अन्वय अपनी रक्षा नहीं कर सकता; इस प्रकार तत्त्व का अभाव हो जायगा। *(424)*

प्रश्न 108- क्रिया, फल आदि किस प्रकार नहीं बनेगा ?

उत्तर - आप तो वस्तु को कूटस्थ / नित्य मानते हैं। क्रिया, फल, कार्य आदि तो सब पर्याय में होते हैं। पर्याय की आप नास्ति मानते हैं; अतः ये भी नहीं बनते। *(423)*

प्रश्न 109- तत्त्व और क्रिया, दोनों कैसे नहीं बनते ?

उत्तर - मोक्ष का साधन जो सम्यग्दर्शनादि शुद्धभाव हैं, वे परिणाम हैं और उनका फल जो मोक्ष है, वह भी निराकुल सुखरूप परिणाम है। ये दोनों साधन और साध्यरूप भाव हैं, परिणाम हैं। परिणाम आप मानते नहीं हैं; इस प्रकार तो क्रिया का अभाव हुआ और इन दोनों भावों का कर्ता-साधक आत्मद्रव्य है, वह विशेष के बिना सामान्य न रहने से नहीं बनता है; इस प्रकार तत्त्व का भी अभाव ठहरता है, अर्थात् कर्ता-कर्म क्या, कोई भी कारक नहीं बनता है। *(426)*

प्रश्न 110- सर्वथा अनित्यपक्ष में क्या हानि है ?

उत्तर - (1) सत् को सर्वथा अनित्य माननेवालों के यहाँ सत् तो पहले ही नाश हो जायेगा, फिर प्रमाण और प्रमाण का फल नहीं बनेगा। *(429)*

(2) जिस समय वे सत् को अनित्य सिद्ध करने के लिए अनुमान प्रयोग में यह प्रतिज्ञा बोलेंगे कि 'जो सत् है, वह अनित्य है' तो यह कहना तो स्वयं उनकी पकड़ का कारण हो जायेगा क्योंकि सत् तो है ही नहीं, फिर 'जो सत् है, वह' यह शब्द कैसा? *(430)*

(3) सत् को नहीं माननेवाले, उसका अभाव कैसे सिद्ध करेंगे। *(431)*

(4) सत् को नित्य सिद्ध करने में जो प्रत्यभिज्ञान प्रमाण है, वह क्षणिकएकान्त का बाधक है। *(432)*

(5) सामान्य (अन्वय) के अभाव में विशेष (व्यतिरेक) तो गधे के सींगवत् हैं। वस्तु के अभाव में परिणाम किसका?

एक-अनेक युगल

प्रश्न 111- सत् एक है, इसमें क्या युक्ति है?

उत्तर - द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से गुण-पर्याय या उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप अंशों का अभिन्न प्रदेशी होने से, सत् एक है, अर्थात् क्योंकि वह निरंश देश है; इसलिए अखण्ड सामान्य की अपेक्षा से सत् एक है। *(436, 437)*

प्रश्न 112- द्रव्य से सत् एक कैसे है?

उत्तर - क्योंकि वह गुण-पर्यायों का एक तन्मय पिण्ड है; इसलिए एक है। ऐसा नहीं है कि उसका कुछ भाग, गुणरूप हो और कुछ भाग, पर्यायरूप हो, अर्थात् गौरस के समान, अन्ध स्वर्णपाषाण के समान, छाया आदर्श के समान अनेकहेतुक एक नहीं है, किन्तु स्वत:सिद्ध एक है। *(438 से 448 तक, 753)*

प्रश्न 113- क्षेत्र से सत् एक कैसे है?

उत्तर - जिस समय जिस द्रव्य के एक देश में जितना, जो, जैसे

सत् स्थित है, उसी समय उसी द्रव्य के सब देशों में भी उतना, वही, वैसा ही समुदित स्थित है। इस अखण्ड क्षेत्र में दीप के प्रकाशों की तरह कभी हानि-वृद्धि नहीं होती। *(453, 753)*

प्रश्न 114- काल से सत् एक कैसे है ?

उत्तर - एक समय में रहनेवाला जो, जितना और जिस प्रकार का सम्पूर्ण सत् है - वही, उतना और उसी प्रकार का सम्पूर्ण सत् समुदित सब समयों में भी है। काल के अनुसार शरीर की हानि -वृद्धि की तरह, सत् में काल की अपेक्षा से भी हानि-वृद्धि नहीं होती है। वह सदा अखण्ड है। *(473, 753)*

प्रश्न 115- भाव से सत् एक कैसे है ?

उत्तर - सत्, सब गुणों का तादात्म्य एक पिण्ड है। गुणों के अतिरिक्त और उसमें कुछ है ही नहीं। किसी एक गुण की अपेक्षा जितना सत् है, प्रत्येक गुण की अपेक्षा भी वह उतना ही है तथा समस्त गुणों की अपेक्षा भी वह उतना ही है, यह भाव से एकत्व है। स्कन्ध में परमाणुओं की हानि-वृद्धि की तरह, सत् के गुणों में कभी हानि-वृद्धि नहीं होती। *(481 से 485 तक, 753)*

प्रश्न 116- सत् के अनेक होने में क्या युक्ति है ?

उत्तर - व्यतिरेक के बिना अन्वयपक्ष नहीं रह सकता, अर्थात् अवयवों के अभाव में अवयवी का भी अभाव ठहरता है; अतः अवयवों की अपेक्षा से सत्, अनेक भी है। *(494)*

प्रश्न 117- द्रव्य से सत् अनेक कैसे हैं ?

उत्तर - गुण अपने लक्षण से है, पर्याय अपने लक्षण से है। प्रत्येक अवयव अपने-अपने लक्षण से (प्रदेश से नहीं) भिन्न-भिन्न हैं; अतः सत्, द्रव्य से अनेक है। *(495, 752)*

प्रश्न 118- क्षेत्र से सत् अनेक कैसे है?

उत्तर - प्रत्येक देशांश का सत्, भिन्न-भिन्न है, इस अपेक्षा क्षेत्र से अनेक भी है। प्रतीति के अनुसार अनेक है; सर्वथा नहीं।

(496, 752)

प्रश्न 119- काल से सत् अनेक कैसे है?

उत्तर - पर्यायदृष्टि से प्रत्येक काल (पर्याय) का सत् भिन्न-भिन्न है; इस प्रकार सत्, काल की अपेक्षा अनेक है। *(497, 752)*

प्रश्न 120- भाव की अपेक्षा सत् अनेक कैसे है?

उत्तर - प्रत्येक भाव (गुण) अपने-अपने लक्षण से (प्रदेश से नहीं) भिन्न-भिन्न है; इस प्रकार सत्, भाव की अपेक्षा अनेक है।

(498, 752)

प्रश्न 121- एक-अनेक पर उभयनय लगाओ?

उत्तर - जो सत्, गुण-पर्यायादि अंशों से विभाजित अनेक है, वही सत, अनंशी होने से अभेद्य एक है, यह उभयनय या प्रमाण पक्ष है। *(754)*

प्रश्न 122- एक-अनेक पर अनुभयनय लगाओ?

उत्तर - अखण्ड होने से जिसमें द्रव्य-गुण-पर्याय की कल्पना ही नहीं है। जो किसी विकल्प से भी प्रगट नहीं किया जा सकता है, यह शुद्धद्रव्यार्थिकनय या अनुभयपक्ष है। *(754)*

निरपेक्ष-सापेक्ष विचार

प्रश्न 123- निरपेक्ष से क्या समझते हो?

उत्तर - अस्ति-नास्ति, तत्-अतत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक, चारों युगल भिन्न-भिन्न सर्वथा पृथक् माने जावें, तो मिथ्या है और चारों यदि परस्पर के मैत्रीभाव से सम्मिलित मानकर मुख्य-गौण की विधि से प्रयोग किये जायें, तो सम्यक् हैं।

प्रश्न 124- परस्पर सापेक्षता का या मुख्य-गौण का रहस्य क्या है ?

उत्तर - परस्पर सापेक्षता का यह रहस्य है कि आप वस्तु को जिस धर्म से देखना चाहें, सारी की सारी वस्तु आपको उसी रूप दृष्टिगत होगी; यह नहीं कि उसका कुछ हिस्सा तो आपको एक धर्मरूप नजर आये और दूसरा हिस्सा दूसरे रूप; जैसे, नित्यानित्यात्मक वस्तु में नित्य-अनित्य दोनों धर्म इस प्रकार परस्पर सापेक्ष हैं कि त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि से वस्तु देखो तो सारी स्वभावरूप; और परिणाम की दृष्टि से वस्तु देखो तो सारी परिणामरूप नजर आयेगी। अब आप अपने को चाहे जिस रूप देख लो। ज्ञानी, अपने को सदैव नित्य अवस्थित स्वभाव की दृष्टि से देखता है; अज्ञानी जगत् अपने को सदा परिणामदृष्टि से देखता है क्योंकि उसमें दोनों धर्म रहते हैं; इसलिए जिस रूप देखना चाहो, उसी रूप दीखने लगती है - इसी को मुख्य-गौण कहते हैं। निरपेक्ष माननेवालों को वस्तु, सर्वथा एकरूप नजर आयेगी। यही बात अन्य चार युगलों में भी है।

प्रश्न 125- सर्वथा निरपेक्षपने का निषेध कहाँ-कहाँ किया है ?

उत्तर - (1) सामान्य और विशेष, दोनों के निरपेक्षपने का निषेध, श्लोक 16 से 19 तक तथा 289 से 308 तक किया है।

(2) तत्-अतत् के सर्वथा निरपेक्ष का निषेध, श्लोक 332 में किया है

(3) सर्वथा नित्य का निषेध, श्लोक 423 से 428 तक तथा सर्वथा अनित्य का निषेध, श्लोक 429 से 432 तक किया है।

(4) सर्वथा एक का निषेध, श्लोक 501 में और सर्वथा अनेक का निषेध, श्लोक 502 में किया है।

प्रश्न 126- परस्पर सापेक्षता का समर्थन कहाँ-कहाँ किया है ?

उत्तर - (1) सामान्य-विशेष की सापेक्षता, श्लोक 15, 17, 20, 21, 22 तथा 289 से 308 तक है।

(2) तत्-अतत् की सापेक्षता, श्लोक 332 से 334 में बतायी है।

(3) नित्य-अनित्य की सापेक्षता, श्लोक 433 में कही है।

(4) एक-अनेक की सापेक्षता, श्लोक 500 में कही है।

प्रश्न 127- निरपेक्ष के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - निरपेक्ष, निरंकुश, स्वतन्त्र, सर्वथा, भिन्न-भिन्न प्रदेश।

प्रश्न 128- सापेक्ष के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - सापेक्ष, परस्पर मित्र : प्रेम, कथञ्चित्, स्यात् / किसी अपेक्षा से, दोनों के अभिन्न प्रदेश, अविरुद्धरूप से, मैत्रीभाव, सप्रतिपक्ष।

प्रश्न 129 - मुख्य के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - विवक्षित, उन्मग्न, अर्पित, मुख्य, अनुलोम, उन्मज्जत, अस्ति, जिस दृष्टि से देखना हो, अपेक्षा, स्व।

प्रश्न 130- गौण के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - अविवक्षित, अवमग्न, अनर्पित, गौण, प्रतिलोम, निमज्जत, नास्ति, जिस दृष्टि से न देखना हो, उपेक्षा पर।

शेषविधि विचार

प्रश्न 131- 'शेषविधि पूर्ववत् जान लेना' - इसमें क्या रहस्य है ?

उत्तर - अस्ति-नास्ति, तत्-अतत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक,

चारों युगल अपने-अपने रूप से अस्ति और नास्ति (जिसकी मुख्यता हो, वह अस्ति; दूसरी नास्ति) रूप तो हैं ही (एक-एक नयदृष्टि) परन्तु, वे उभय (प्रमाणदृष्टि) और अनुभय (शुद्ध अखण्ड द्रव्यार्थिक -दृष्टि) रूप भी हैं, यह बात भी दृष्टि में अवश्य रहे और इसका विस्मरण न हो जाए - यही इसका रहस्य है।

प्रश्न 132- 'शेषविधि पूर्ववत् जान लेना' - इसका कथन कहाँ-कहाँ है ?

उत्तर - अस्ति-नास्ति का, श्लोक 287, 288 में; तत्-अतत् का, श्लोक 335 में; नित्य-अनित्य का, श्लोक 414 से 417 में; एक-अनेक का, श्लोक 499 में किया है। (इनका परस्पर अभ्यास करने से अनेकान्त की सब विधि लगाने का परिज्ञान हो जाता है)।

दृष्टि परिज्ञान, तीसरे भाग से

पहली पुस्तक में तीन दृष्टियों से काम लिया गया था। अखण्ड को बतलानेवाली द्रव्यदृष्टि; उसके एक-एक गुण, पर्याय आदि अंशों को बतलानेवाली पर्यायदृष्टि; खण्ड-अखण्ड उभयरूप बतलानेवाली प्रमाणदृष्टि।

दूसरी पुस्तक में चार दृष्टि से काम लिया गया था। वस्तु चार युगलों से गुम्फित है। उन युगलों के एक-एक धर्म को बतलानेवाली, एक-एक पर्यायदृष्टि; दोनों को इकट्ठा बतलानेवाली, प्रमाणदृष्टि; तथा अभेद-अखण्ड बतलानेवाली; अनुभयदृष्टि या शुद्धदृष्टि।

अब, इस तीसरी पुस्तक में अन्य प्रकार की दृष्टियों से काम लिया गया है। पहली व्यवहारदृष्टि, दूसरी निश्चयदृष्टि, तीसरी प्रमाणदृष्टि, चौथी नयातीत / आत्मानुभूतिदशा। इनकी शुद्धि के लिए नयाभासों का भी परिज्ञान कराया गया है। अब, इन पर संक्षेप से कुछ प्रकाश डालते हैं।

(1) सबसे पहले यह समझने की आवश्यकता है कि जैनधर्म, एक द्रव्य का, दूसरे द्रव्य से कोई सम्बन्ध नहीं मानता है। उनमें किसी प्रकार का सम्बन्ध बतलाना नयाभास है, चाहे वह कर्तासम्बन्धी हो या भोगतासम्बन्धी हो या और कोई प्रकार का भी हो। इतनी बात भलीभाँति निर्णीत होनी चाहिए, तब आगे गाड़ी चलेगी।

(2) फिर यह जानने की आवश्यकता है कि विभावसहित एक अखण्ड धर्मी का परिज्ञान करना है। बिना भेद के, जानने का

और कोई साधन नहीं है; अतः उस द्रव्य के चतुष्टय में दो अंश हैं – एक विभावअंश, शेष स्वभावअंश। विभावअंश, क्षणिक है, मैल है, आगन्तुकभाव है, बाहर निकल जानेवाली चीज है; उसका नाम असद्भूत है, अर्थात् जो द्रव्य का मूलपदार्थ नहीं है, उसको दर्शानेवाली दृष्टि, असद्भूतव्यवहारनय है। ये नय, विभाव को उस द्रव्य का बतलाता है और असद्भूत बतलाता है। ये नय केवल जीव-पुद्गल में ही लगते हैं क्योंकि विभाव इन्हीं दो में होता है। वह विभाव - एक बुद्धिपूर्वक / व्यक्त-अपने ज्ञान की पकड़ में आनेवाला; दूसरा अव्यक्त / अपने ज्ञान की पकड़ में न आनेवाला। पकड़ में आनेवाले को उपचरित असद्भूत कहते हैं। उपचरित का अर्थ ही पकड़ में आनेवाला और असद्भूत का अर्थ, विभाव; और पकड़ में नहीं आनेवाला, अनुपचरित असद्भूत। इस नय के परिज्ञान से जीव को मूल मेटर का और मैल का भिन्न-भिन्न परिज्ञान हो जाता है और वह स्वभाव का आश्रय करके, मैल को निकाल सकता है।

फिर जो बचा, उसको सद्भूत कहते हैं। उसमें पर्याय को उपचरित सद्भूत और गुण को अनुपचरित सद्भूत। क्योंकि पर्याय सदा पर से उपचरित की जाती है और गुण, पर से उपचरित नहीं होता; अतः अनुपचरित। ये नय, छहों द्रव्यों पर लगते हैं। जैसे - ज्ञान, स्व-पर को जानता है, यह तो जीव में सद्भूत उपचरित; पुद्गल में हरा-पीला आदि उपचरित; धर्मद्रव्य में, जो जीव-पुद्गल को चलने में मदद दे – यह स्पष्ट पर से उपचरित किया गया है; अधर्म में, जो जीव-पुद्गल को ठहरने में मदद करें; आकाश में, जो सबको जगह दे; और काल में, जो सबको परिणमावे – ये सब उपचरित सद्भूत व्यवहारनय का कथन है। अब, पर्यायदृष्टि को गौण करके द्रव्य और गुण का भेद करके कहना, अनुपचरित; जैसे

– आत्मा का ज्ञानगुण; पुद्गल का स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णगुण; धर्म का गतिहेतुत्वगुण; अधर्म का स्थितिहेतुत्वगुण; आकाश का अवगाहत्वगुण; काल का परिणमनहेतुत्वगुण। इन गुणों को द्रव्य के अनुजीवीगुण बतलाना। स्वत:सिद्ध अपने कारण से रहनेवाले, ये अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय है। अनुपचरित, अर्थात् पर से बिल्कुल उपचार नहीं किये गये, किन्तु स्व से ही उपचार किये गये।

अब, एक दृष्टि और समझने की है। वह यह कि दूसरा धर्मी तो दूसरा ही है, उसकी तो बात ही क्या? विभाव क्षणिक है, निकल जाता है; वह कोई मूलवस्तु ही नहीं; अत: उसकी भी क्या बात? अब द्रव्य में केवल पूर्ण स्वभावपर्याय और गुण बचता है क्योंकि एकदेश स्वभावपर्याय भी, साथ में विभाव के अस्तित्व के कारण थी; जब विभाव निकल गया तो एकदेश स्वभावपर्याय को कोई अवकाश नहीं रहा। पूर्ण शुद्धपर्याय, द्रव्य का सोलह आने निरपेक्ष स्वत: सिद्ध गुण परिणमन है। गुणों का स्वभाव ही नित्यानित्यात्मक है। जब तक पर्याय में विभाव था, तब तक गुण और पर्याय का स्वभाव, भेद दिखलाना प्रयोजनवान था। अब पर्याय को गुण से भिन्न कहने का कोई प्रयोजन न रहा। वह गुण में समाविष्ट हो जायेगी। जिन आचार्यों ने केवल गुणसमुदाय, द्रव्य कहा है, वह इसी दृष्टि की मुख्यता से कहा है। अब उस द्रव्य को न असद्भूतनय से कुछ प्रयोजन ही रहा, और पर्याय भिन्न न रहने से उपचरित सद्भूत से भी प्रयोजन न रहा। अनुपचरित सद्भूत तो उपचरित के मुकाबले में था। जब उपचरित न रहा तो अनुपचरित भी व्यर्थ हो गया। उसके लिए आचार्यों ने कहा कि अब द्रव्य को भेद करने का और तरीका है और इन नयों की अब आवश्यकता नहीं। अब तो अन्य ही प्रकार से भेद होगा, वह प्रकार है गुणभेद। जितने गुणों का वह अखण्ड

पिण्ड है, बस केवल उतने ही भेद होंगे और कोई भेद न होगा और न हो सकता है। एक-एक गुण को बतलानेवाला, एक-एक नय। जो गुण का नाम, वही नय का नाम; जैसे - ज्ञानगुण को बतलानेवाला ज्ञाननय। जहाँ तक गुण-गुणी का भेद है, वहाँ तक व्यवहारनय है। वे सब व्यवहारनय का विस्तार है, परिवार है। ये सब काल्पनिक भेद, केवल समझाने की दृष्टि से किया गया है। जो अभेद में भेद करे, वह सब व्यवहार है।

अब, निश्चयनय को समझाते हैं। निश्चयनय का विषय, परवस्तु -रहित, विभावरहित, एकदेश स्वभावपर्यायरहित, पूर्ण स्वभावपर्याय को गुणों में समाविष्ट करके, गुणभेद को द्रव्य में समाविष्ट करके, अखण्ड वस्तु है। ऐसा कुछ वस्तु का नियम है कि पूर्ण अखण्ड द्रव्य का द्योतक कोई शब्द ही जगत में नहीं है। जो कहोगे वह एक गुणभेद का द्योतक होगा, जैसे - सत्, अस्तित्वगुण का द्योतक है; वस्तु-वस्तुत्वगुण का; जीव-जीवत्वगुण का; द्रव्य-द्रव्यत्वगुण का; अत: लाचार होकर अभेद के लिए आपको यही कहना पड़ेगा कि भेदरूप नहीं, अर्थात् 'नेति' - शब्द से वह आशय प्रकट किया जायेगा। अर्थ उसका होगा भेदरूप नहीं; अभेदरूप। यह जीव को हर समय ऐसा दिखलाता है, जैसा सिद्ध में है। पुद्गल को हर समय एक शुद्ध परमाणु। धर्मादिक तो हैं ही शुद्ध।

अब, प्रमाणदृष्टि समझाते हैं। यह कहती है, जो भेदरूप है, वही तो अभेदरूप है; जो नित्य है, वही तो अनित्य है - इत्यादिरूप से दोनों विरोधीधर्मों को एकधर्मी में अविरोधपूर्वक स्थापित करती है।

उपर्युक्त तीनों दृष्टियों का ज्ञान होने पर, वस्तु का परिज्ञान हर पहलू से हो जाता है। वस्तु स्वतन्त्र, पर से निरपेक्ष, ख्याल में आ जाती है। यहाँ तक सब ज्ञान का कार्य है। इससे आगे अब नयातीतदशा

को समझाते हैं। जो कोई जीव, ऊपर बतलाये हुए सब विकल्पजाल को जानकर, वस्तु के परिज्ञान से सन्तुष्ट हो जाता है और अपने को मूलभूत शुद्ध जीवास्तिकायरूप जानकर, उसका श्रद्धान करता है; उपयोग जो अनादि काल से पर की एकत्वबुद्धि, परकर्तृत्व, परभोक्तृत्व में अटका हुआ है, उसको वहाँ से हटाकर अपने सामान्यस्वरूप की ओर मोड़ता है, और सब प्रकार के नय-प्रमाण-निक्षेपों के विकल्पजाल से हटकर, सामान्यतत्त्व में लीन होता हुआ, अतीन्द्रिय सुख को भोगता है, वह पुरुष, नयातीतदशा को प्राप्त होता है। उसको आत्मानुभूति, समयसार, आत्मख्याति, आत्मदर्शन, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इत्यादिक अनेक नामों से कहा है। इसका फल, कर्म कलङ्क से रहित पूर्ण शुद्ध आत्मा की प्राप्ति है।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न 133- नय किसे कहते हैं?

उत्तर - नित्य-अनित्य आदि विरुद्ध दो धर्मस्वरूप द्रव्य में किसी एक धर्म का वाचक नय है - जैसे सत्, नित्य है; या सत्, अनित्य है अथवा अनन्त धर्मात्मक-वस्तु को देखकर, उसके एक-एक धर्म का नाम रखना नय है - जैसे, ज्ञान-दर्शन इत्यादिक। *(504, 513)*

प्रश्न 134- नय के औपचारिकभेद, लक्षणसहित बताइये?

उत्तर - (1) द्रव्यनय, (2) भावनय। पौद्गलिक शब्दों को द्रव्यनय कहते हैं, उसके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाले विकल्पसहित जीव के श्रुतज्ञानांश को भावनय कहते हैं। *(505)*

प्रश्न 135- नय क्या करता है?

उत्तर - वस्तु के अनन्त धर्मों का भिन्न-भिन्न ज्ञान कराकर, वस्तु को अनन्त धर्मात्मक सिद्ध करता है तथा उसका अनुभव करा देता है। *(515)*

प्रश्न 136– नयों के मूल भेद कितने हैं ?

उत्तर – दो (1) द्रव्यार्थिकनय या निश्चयनय, (2) पर्यायार्थिक या व्यवहारनय। *(517)*

प्रश्न 137– द्रव्यार्थिकनय किसे कहते हैं और वे कितने हैं ?

उत्तर – केवल अखण्ड सत् ही जिसका विषय है, वह द्रव्यार्थिक है; यह एक ही होता है; इसमें भेद नहीं हैं। *(518)*

प्रश्न 138– पर्यायार्थिकनय किसे कहते हैं ?

उत्तर – अंशों को पर्यायें कहते हैं। उन अंशों में से किसी एक विवक्षित अंश को कहनेवाला पर्यायार्थिकनय है। *(519)*

प्रश्न 139– व्यवहारनय का लक्षण, कारण और फल बताओ ?

उत्तर – अभेद सत् में विधिपूर्वक गुण-गुणी भेद करना, व्यवहारनय है। साधारण या असाधारणगुण, इसकी प्रवृत्ति में कारण हैं। अनन्त धर्मात्मक एक धर्मी में आस्तिक्यबुद्धि का होना, इसका फल है क्योंकि गुण के सद्भाव में नियम से द्रव्य का अस्तित्व प्रतीति में आ जाता है। *(522, 523, 524)*

प्रश्न 140– सद्भूत व्यवहारनय का लक्षण, कारण, फल बताओ ?

उत्तर – विवक्षित किसी द्रव्य के गुणों को, उसी द्रव्य में भेदरूप से प्रवृत्ति करानेवाले नय को सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं। सत् का असाधारणगुण इसकी प्रवृत्ति में कारण है। एक वस्तु का अस्तित्व, दूसरी वस्तु से सर्वथा भिन्न है तथा प्रत्येक वस्तु पूर्ण स्वतन्त्र और स्वसहाय है – ऐसा भेदविज्ञान होना इसका फल है। *(525 से 528)*

प्रश्न 141– असद्भूत व्यवहारनय का लक्षण, कारण, फल और दृष्टान्त बताओ ?

उत्तर – मूलद्रव्य में वैभाविकपरिणमन के कारण जो एक द्रव्य के गुण, दूसरे द्रव्य में संयोजित करना, असद्भूत व्यवहारनय का लक्षण है। उसकी वैभाविकशक्ति की उपयोगिता इसका कारण है। विभावभाव क्षणिक है, उसको छोड़कर जो कुछ बचता है, वह मूलद्रव्य है – ऐसा मानकर, सम्यग्दृष्टि होना इसका फल है। पुद्गल के क्रोध को, जीव का क्रोध कहना, यह इसका दृष्टान्त है। *(529 से 533)*

प्रश्न 142– अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय का लक्षण, उदाहरण तथा फल बताओ ?

उत्तर – जिस सत् में जो शक्ति अन्तर्लीन है, उसको उसी की पर्यायनिरपेक्ष, केवल गुणरूप से कहना, अनुपचरित सद्भूत व्यवहारनय है – जैसे, जीव का ज्ञानगुण। इससे द्रव्य की त्रिकाल स्वतन्त्र सत्ता का परिज्ञान होता है। *(534 से 539)*

प्रश्न 143– उपचरित सद्भूतव्यवहारनय का लक्षण, उदाहरण, कारण और फल बताओ ?

उत्तर – अविरुद्धतापूर्वक किसी कारणवश किसी वस्तु का गुण, उसी में पर की अपेक्षा से उपचार करना, उपचरित सद्भूत-व्यवहारनय है। अर्थविकल्पज्ञान प्रमाण है, यह इसका उदाहरण है। बिना पर के, स्वगुण उपचार नहीं किया जा सकता, यह इसकी प्रवृत्ति में कारण है। विशेष को साधन बनाकर, सामान्य की सिद्धि करना इसका फल है। *(540 से 545 तक)*

प्रश्न 144– अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय का लक्षण, कारण, फल बताओ ?

उत्तर – अबुद्धिपूर्वक विभावभावों को जीव का कहना, अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय है। वैभाविकशक्ति का उपयोगदशा

में द्रव्य से अनन्यमय होना इसकी प्रवृत्ति में कारण है। विभावभाव में हेयबुद्धि का होना इसका फल है। *(546 से 548)*

प्रश्न 145- उपचरित असद्भूतव्यवहारनय का लक्षण, कारण, फल बताओ ?

उत्तर - बुद्धिपूर्वक विभावभावों को जीव के कहना, उपचरित असद्भूतव्यवहारनय है। इसमें पर निमित्त है, यह इसका कारण है। अविनाभाव के कारण अबुद्धिपूर्वकभावों की सत्ता का परिज्ञान होना इसका फल है। *(549 से 551)*

प्रश्न 146 - उपचरित सद्भूतव्यवहारनय का मर्म क्या है ?

उत्तर - 'ज्ञान, पर को जानता है' - ऐसा कहना अथवा तो ज्ञान में राग, ज्ञात होने से 'राग का ज्ञान है' - ऐसा कहना अथवा ज्ञातास्वभाव के भानपूर्वक, ज्ञानी 'विकार को भी जानता है' - ऐसा कहना, उपचरित सद्भूतव्यवहारनय का कथन है।

प्रश्न 147- अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय का मर्म क्या है ?

उत्तर - ज्ञान और आत्मा इत्यादि गुण-गुणी के भेद से आत्मा को जानना, वह अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय है। साधक को रागरहित ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि हुई हो, तथापि अभी पर्याय में राग भी होता है। साधक को स्वभाव की श्रद्धा में राग का निषेध हुआ हो, तथापि, उसे गुणभेद के कारण चारित्रगुण की पर्याय में अभी राग होता है - ऐसे गुणभेद से आत्मा को जानना, वह अनुपचरित सद्भूत-व्यवहारनय है।

प्रश्न 148- उपचरित असद्भूतव्यवहारनय का मर्म बताओ ?

उत्तर - साधक ऐसा जानता है कि अभी मेरी पर्याय में विकार

होता है; उसमें व्यक्तराग-बुद्धिपूर्वक का राग, प्रगट ख्याल में लिया जा सकता है - ऐसे बुद्धिपूर्वक के विकार को आत्मा का जानना - यह उपचरित असद्भूतव्यवहारनय है।

प्रश्न 149- अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय का मर्म बताओ ?

उत्तर - जिस समय बुद्धिपूर्वक का विकार है, उस समय अपने ख्याल में न आ सके-ऐसा अबुद्धिपूर्वक का विकार भी है; उसे जानना, वह अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनय है।

प्रश्न 150- सम्यक्नय का क्या स्वरूप है ?

उत्तर - जो नय, तद्गुणसंविज्ञान सहित (जीव के भाव, वे जीव के तद्गुण हैं तथा पुद्गल के भाव, वे पुद्गल के तद्गुण हैं - ऐसे विज्ञानसहित हो), उदाहरण सहित हो, हेतु सहित और फलवान (प्रयोजनवान्) हो, वह सम्यक्नय है। जो उससे विपरीतनय है, वह नयाभास (मिथ्यानय) है क्योंकि परभाव को अपना कहने से आत्मा को क्या साध्य (लाभ) है ? (कुछ नहीं)।

प्रश्न 151- नयाभास का क्या स्वरूप है ?

उत्तर - जीव को पर का कर्ता-भोक्ता माना जाए तो भ्रम होता है। व्यवहार से भी जीव, पर का कर्ता-भोक्ता नहीं है। व्यवहार से आत्मा, राग का कर्ता-भोक्ता है क्योंकि राग, वह अपनी पर्याय का भाव है; इसलिए उसमें तदगुणसंविज्ञान लक्षण लागू होता है। जो उससे विरुद्ध कहे, वह नयाभास (मिथ्यानय) है।

प्रश्न 152- सम्यक्नय और मिथ्यानय की क्या पहचान है ?

उत्तर - जो भाव, एक धर्मी का हो, उसको उसी का कहना तो सम्यक्नय है और एक धर्मी के धर्म को, दूसरे धर्मी का धर्म कहना,

मिथ्यानय है। जैसे, राग को आत्मा का कहना तो सम्यक्नय है और वर्ण को आत्मा का कहना, मिथ्यानय है।

प्रश्न 153– नयाभासों के कुछ दृष्टान्त बताओ ?

उत्तर – (1) शरीर को जीव कहना (2) द्रव्यकर्म–नोकर्म का कर्ता–भोक्ता आत्मा को कहना (3) घर, धन–धान्य, स्त्री–पुत्रादि बाह्यपदार्थों का कर्ता–भोक्ता, जीव को कहना। (4) ज्ञान को ज्ञेयगत या ज्ञेय को ज्ञानगत कहना इत्यादि। दो द्रव्य में कुछ भी सम्बन्ध मानना, नयाभास है।

प्रश्न 154– व्यवहारनयों के नाम बताओ ?

उत्तर – प्रत्येक द्रव्य में जितने गुण हैं, उनमें हर एक गुण को भेदरूप से विषय करनेवाला उसी नाम का नय है। जितने एक वस्तु में गुण हैं, उतने नय हैं। यह शुद्धद्रव्य को जानने का तरीका है। जैसे, आत्मा के अस्तित्वगुण को बतानेवाला अस्तिनय; ज्ञानगुण को बतलानेवाला ज्ञाननय।

प्रश्न 155– उपर्युक्त नयों के पहचानने का क्या तरीका है ?

उत्तर – विशेषण–विशेष्यरूप से उदाहरणसहित जितना भी कथन है, वह सब व्यवहारनय है, यही इसके जानने का गुर है।

प्रश्न 156– निश्चयनय का लक्षण क्या है ?

उत्तर – जो व्यवहार का प्रतिषेधक हो, वह निश्चयनय है। 'नेति' से इसका प्रयोग होता है। यह उदाहरणरहित है।

प्रश्न 157– व्यवहार, प्रतिषेध्य क्यों है ?

उत्तर – क्योंकि वह मिथ्या विषय का उपदेश करता है। वह इस प्रकार द्रव्य में गुण–पर्यायों के टुकड़े करता है, जैसे परशु से लकड़ी के टुकड़े कर दिये जाते हैं, किन्तु द्रव्य अखण्ड एक है,

उसमें ऐसे टुकड़े नहीं हैं; अतः व्यवहारनय मिथ्या है। व्यवहारनय के कथनानुसार श्रद्धान करनेवाले मिथ्यादृष्टि हैं।

प्रश्न 158- जब वह मिथ्या है तो उसके मानने की आवश्यकता ही क्या है?

उत्तर - निश्चयनय अनिर्वचनीय है; अतः वस्तु समझने -समझाने के लिए व्यवहारनय की आवश्यकता है। यह केवल वस्तु को पकड़ा देता है, इतना ही इसमें कार्यकारीपना है क्योंकि वस्तु पकड़ने का और कोई साधन नहीं है।

प्रश्न 159- निश्चयनय का विषय क्या है?

उत्तर - जो व्यवहारनय का विषय है, वही निश्चयनय का विषय है। व्यवहारनय में से भेद विकल्प निकाल देने पर, निश्चयनय का ही विषय बचता है।

प्रश्न 160- निश्चयनयाबलम्बी स्वसमयी है या परसमयी?

उत्तर - निश्चयनयावलम्बी भी परसमयी है क्योंकि इसमें निषेधरूप विकल्प है। दूसरे, दोनों नय सापेक्ष हैं। जहाँ विधिरूप विकल्प होगा, वहाँ निषेधरूप विकल्प भी अवश्य होगा।

प्रश्न 161- स्वसमयी जीव कौन है?

उत्तर - जो निश्चयनय के विकल्प को भी पार करके, स्वात्मानुभूति में प्रवेश कर गया है। नयातीत अवस्था को स्वसमय प्रतिबद्ध अवस्था कहते हैं।

प्रश्न 162- निश्चयनय के कितने भेद हैं? कारणसहित बताओ।

उत्तर - निश्चयनय का कोई भेद नहीं है, क्योंकि वह अखण्ड सामान्य को विषय करता है; अतः उसमें भेद हो ही नहीं सकता। वह केवल एक ही है।

प्रश्न 163- निश्चयनय के शुद्धनिश्चय, अशुद्धनिश्चय आदि भेद हैं या नहीं ?

उत्तर – नहीं! वे व्यवहारनय के ही नामान्तर हैं। केवल कथनशैली का अन्तर है। जो उन कथनों को, वास्तव में ही कोई सामान्य की द्योतक निश्चयनय मानले तो वह मिथ्यादृष्टि है।

प्रश्न 164- व्यवहारनय और निश्चयनय का क्या फल है ?

उत्तर – व्यवहारनय को हेय श्रद्धान करना चाहिए। यदि उसे उपादेय माने तो उसका फल अनन्त संसार है। निश्चयनय का विषय उपादेय है। निश्यचनय का विषय जो सामान्यमात्र वस्तु है, यदि उसका आश्रय करे और निश्चयनय का विकल्प भी छोड़े तो स्वसमयी है। उसका फल आत्मसिद्धि है।

प्रश्न 165- निश्चय और व्यवहार के जानने से क्या लाभ है ?

उत्तर – व्यवहार, भेद को कहते हैं; भेद में राग, आस्रव, बन्ध और संसार है। निश्चय, अभेद को कहते हैं; अभेद में मोक्षमार्ग, वीतरागता, संवर और निर्जरा है।

प्रश्न 166- फिर आचार्यों ने भेद का उपदेश क्यों दिया ?

उत्तर – केवल अभेद को समझाने के लिए; भेद में अटकने के लिए नहीं। जो केवल व्यवहार के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं, उनके लिए जिनोपदेश ही नहीं है – ऐसा श्री पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में कहा है। श्री समयसारजी में व्यवहार को म्लेच्छभाषा और व्यवहारावलम्बी को मलेच्छ कहा है क्योंकि म्लेच्छों के धर्म नहीं होता।

प्रश्न 167- व्यवहार तो ज्ञानियों के भी होता है न ?

उत्तर – ज्ञानियों के व्यवहार का अवलम्बन – आश्रय, श्रद्धा में कदापि नहीं होता, किन्तु वे तो व्यवहार के केवल ज्ञाता होते हैं।

व्यवहार का अस्तित्व, वस्तुस्वभाव के नियमानुसार उनके होता अवश्य है, परन्तु ज्ञेयरूप से।

प्रश्न 168- व्यवहार को श्रीसमयसारजी में प्रयोजनवान कहा है न?

उत्तर - आपने ध्यान से नही पढ़ा है, क्योंकि वहाँ लिखा है - 'जानने में आता हुआ उस काल प्रयोजनवान है।' इसका अर्थ गुरुगम अनुसार यह है कि व्यवहार, ज्ञानी की पर्याय में उस समयमात्र के लिए ज्ञेयरूप से मौजूद है; न कि इसका यह अर्थ है कि ज्ञानी को उसका आश्रय होता है। *(श्रीसमयसारजी, गाथा 12 टीका)*

श्री पञ्चास्तिकाय, गाथा 70 की टीका में लिखा है 'कर्तृत्व और भोक्तृत्व के अधिकार को समाप्त करके, सम्यक्पने प्रगट प्रभुत्व शक्तिवाला होता हुआ ज्ञान को ही अनुसरण करनेवाले मार्ग में चरता है-प्रवर्तता है-परिणमता है-आचरण करता है, तब वह विशुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धिरूप अपवर्गनगर को पाता है।' तीन काल और तीन लोक में यही एक मोक्ष प्राप्ति का उपाय है। श्री प्रवचनसार, अन्तिम पञ्चरत्न गाथा में शुद्ध के ही मुनिपना, ज्ञान, दर्शन, निर्वाण कहा है और नवमें ग्रीवक में जानेवाले पूर्ण शुद्ध व्यवहारी मुनि को संसारतत्त्व, अर्थात् विभाव का राजा या मिथ्यादृष्टियों का सरताज कहा है। ऐसी रहस्य की बातें बिना सद्गुरु समागम के समझ में नही आतीं। यदि बिना गुरुगम, तत्त्व हाथ लग जाया करता, तो सम्यक्त्व में देशनालब्धि की आवश्यकता न रहती; केवल शास्त्रों से काम चल जाता।

प्रश्न 169- प्रमाणज्ञान का स्वरूप क्या है?

उत्तर - जो ज्ञान, सामान्य-विशेष दोनों स्वरूपों को मैत्रीपूर्वक जानता है, वह प्रमाण है, अर्थात् वस्तु के सम्पूर्ण अंशों को

अविरोधपूर्वक ग्रहण करनेवाला ज्ञान, प्रमाण है, इसका विषय सम्पूर्ण वस्तु है। इसके द्वारा सम्पूर्ण वस्तु का अनुभव एक साथ हो जाता है। *(665, 676)*

प्रश्न 170- प्रमाणज्ञान के भेद बताओ ?

उत्तर - प्रमाण के दो भेद हैं - (1) प्रत्यक्ष, (2) परोक्ष। असहाय ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं और सहाय / सापेक्ष ज्ञान को परोक्ष कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद हैं। सकलप्रत्यक्ष और विकलप्रत्यक्ष। केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष है। अवधि-मन:पर्यय, विकलप्रत्यक्ष हैं। मति-श्रुतज्ञान, परोक्ष हैं किन्तु इनमें इतनी विशेषता है कि अवधि - मन:पर्यय निश्चय से परोक्ष हैं, उपचार से प्रत्यक्ष हैं। मति-श्रुतज्ञान स्वात्मानुभूति में प्रत्यक्ष हैं, परपदार्थ को जानते समय परोक्ष हैं। इतनी विशेषता और है कि **आत्मसिद्धि में दो - मति-श्रुतज्ञान ही उपयोगी है; अवधि मन:पर्यय नहीं।**

प्रश्न 171- निक्षेपों का स्वरूप बताओ ?

उत्तर - गुणों के आक्षेप को निक्षेप कहते हैं। इसके चार भेद हैं। (1) नाम, (2) स्थापना, (3) द्रव्य, और (4) भाव। अतद्गुण वस्तु में व्यवहार चलाने के लिए जो नाम रखा जाता है, वह **नाम-निक्षेप** है, जैसे - किसी व्यक्ति में जिन के गुण नहीं है, परन्तु उसका नाम जिन रखना। उसी के आकारवाली वस्तु में यह वही है - ऐसी बुद्धि का होना, **स्थापनानिक्षेप** है, जैसे - प्रतिमा। वर्तमान में वैसा न हो, किन्तु भावि में नियम से वैसा होनेवाले को **द्रव्यनिक्षेप** कहते हैं, जैसे - गर्भ-जन्म में ही भगवान को जिन कहना। जिस शब्द से कहा जाए, उसी पर्याय में होनेवाली वस्तु को **भावनिक्षेप** कहते हैं, जैसे - साक्षात् केवली को जिन कहना।

नय-प्रमाण प्रयोग पद्धति

प्रश्न 172- द्रव्य-गुण-पर्याय पर पर्यायार्थिकनय का प्रयोग करके दिखाओ ?

उत्तर - द्रव्य, गुण-पर्यायवाला है, अर्थात् जो द्रव्य को भेदरूप कहे - जैसे गुण है, पर्याय है, और उनका समूह द्रव्य है। उस द्रव्य में जो द्रव्य है, वह गुण नहीं है; जो गुण है, वह द्रव्य नहीं है; पर्याय भी द्रव्य-गुण नहीं है। यह पर्यायार्थिकनय का कहना है।

(747, दूसरी पंक्ति, 749)

प्रश्न 173- द्रव्य, गुण, पर्याय पर शुद्धद्रव्यार्थिकनय का प्रयोग करो ?

उत्तर - तत्त्व, अनिर्वचनीय है, अर्थात् जो द्रव्य है, वही गुण -पर्याय है। जो गुण-पर्याय है, वही द्रव्य पदार्थ अखण्ड है। यह शुद्धद्रव्यार्थिकनय का कहना है। *(747 प्रथम पंक्ति, 750 प्रथम पंक्ति)*

प्रश्न 174- द्रव्य, गुण, पर्याय पर प्रमाण का प्रयोग करो ?

उत्तर - जो अनिर्वचनीय है, वही गुण-पर्यायवाला है; दूसरा नहीं है अथवा जो गुण-पर्यायवाला है, वही अनिर्वचनीय है; इस प्रकार जो व्यवहार-निश्चय दोनों के पक्ष को मैत्रीपूर्वक कहे, वह प्रमाण है। *(748, 750 दूसरी पंक्ति)*

प्रश्न 175- अनेकनय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर - द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, तीनों अनेक हैं। अपने -अपने लक्षण से भिन्न-भिन्न हैं - यह अनेक नामा व्यवहारनय का पक्ष है। *(752)*

प्रश्न 176- एकनय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर - नाम से चाहे द्रव्य कहो अथवा गुण कहो अथवा पर्याय

कहो, परन्तु सामान्यपने ये तीनों ही अभिन्न एक सत् है; इसलिए इन तीनों में से किसी एक के कहने से, बाकी के दो भी बिना कहे ग्रहण होते ही हैं, यह एक नामा व्यवहारनय है। *(753)*

प्रश्न 177– शुद्धद्रव्यार्थिकनय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर – निरंश देश होने से न द्रव्य है, न गुण है, न पर्याय है और न विकल्प से प्रगट है – यह शुद्धद्रव्यार्थिकनय का पक्ष है। *(754)*

प्रश्न 178– प्रमाण का प्रयोग बताओ ?

उत्तर – पर्यायार्थिकनय से जो सत्, द्रव्य-गुण-पर्यायों के द्वारा अनेकरूप भेद किया जाता है, वही सत्, अंशरहित (अखण्ड) होने से अभेद्य एक है – यह प्रमाण का पक्ष है। *(755)*

प्रश्न 179– अस्तिनय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर – विपक्ष की अविवक्षा रहते वस्तु, सामान्य अथवा विशेष, जिसकी विवक्षा हो, उसरूप से है – यह कहना एक अस्तिनामा व्यवहारनय है। *(756)*

प्रश्न 180– नास्तिनय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर – विपक्ष की विवक्षा रहते वस्तु, सामान्य अथवा विशेष, जिसरूप से नहीं है, वह नास्तिपक्ष है। *(757)*

प्रश्न 181– अस्ति-नास्ति पर द्रव्यार्थिकनय का प्रयोग बताओ ?

उत्तर – तत्त्व, स्व-रूप से है, यह भी नहीं है, तत्त्व पर-रूप से नहीं है, यह भी नहीं है क्योंकि वस्तु सब विकल्पों से रहित है – यह शुद्धद्रव्यार्थिकनय का पक्ष है। *(758)*

प्रश्न 182– अस्ति-नास्ति पर प्रमाण का प्रयोग बताओ ?

उत्तर – जो परस्वरूप के अभाव से नहीं है, वही स्वरूप के

सद्भाव से है, तथा वही अनिर्वचनीय है, यह सब प्रमाणपक्ष है। *(758)*

प्रश्न 183– अनित्यनय का प्रयोग बताओ?

उत्तर – सत्, प्रत्येक समय उत्पन्न होता है और नाश होता है, यह अनित्य नामा व्यवहारनय है। *(760)*

प्रश्न 184– नित्यनय का प्रयोग बताओ?

उत्तर – सत्, न उत्पन्न होता है, न नाश होता है; वह सदा एकरूप ध्रुव रहता है, यह नित्य नामा व्यवहारनय है। *(761)*

प्रश्न 185– निश्चयनय का प्रयोग बताओ?

उत्तर – सत् का न नाश होता है, न उत्पन्न होता है, न ध्रुव है, वह तो निर्विकल्प है, यह निश्चयनय का पक्ष है। *(762)*

प्रश्न 186– प्रमाण का प्रयोग बताओ?

उत्तर – जो अनित्य की विवक्षा में नित्यरूप से नहीं है, वही नित्य की विवक्षा में अनित्यरूप से नहीं है; इस प्रकार तत्त्व नित्यानित्य है, यह प्रमाणपक्ष है। *(763)*

प्रश्न 187– अतत्नय का प्रयोग बताओ?

उत्तर – वस्तु में नवीन भावरूप परिणमन होने से 'यह तो वस्तु ही अपूर्व है' – यह अतत्नामा व्यवहारनय का पक्ष है। *(764)*

प्रश्न 188– तत्नय का प्रयोग बताओ?

उत्तर – वस्तु के नवीन भावों से परिणमन करने पर भी तथा पूर्व भावों से नष्ट होने पर भी, यह अन्य वस्तु नहीं है, किन्तु वही की वही है, यह तत्नय नामा व्यवहारनय का पक्ष है। *(765)*

प्रश्न 189– शुद्धद्रव्यार्थिकनय का प्रयोग बताओ?

उत्तर – वस्तु में न नवीन भाव होता है, न प्राचीन भाव का नाश

होता है, क्योंकि न वस्तु अन्य है, न वही है किन्तु अनिर्वचनीय अखण्ड है, यह शुद्धद्रव्यार्थिकनय का पक्ष है। *(766)*

प्रश्न 190– प्रमाण का प्रयोग बताओ ?

उत्तर – जो सत्, प्रतिक्षण नवीन–नवीन भावों से परिणमन कर रहा है, वह न तो असत् उत्पन्न है और न सत् विनष्ट है, यह प्रमाणपक्ष है। *(767)*

चौथे भाग का परिशिष्ट

प्रश्न 191– सामान्यधर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो धर्म सब द्रव्यों में पाया जाये, उसे सामान्यधर्म कहते हैं – जैसे द्रव्यत्व, गुणत्व, पर्यायत्व, उत्पादव्ययध्रुवत्व, अस्तित्व–नास्तित्व, नित्यत्व–अनित्यत्व, तत्पना–अतत्पना, एकत्व–अनेकत्व इत्यादि। *(7, 770)*

प्रश्न 192– विशेषधर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो सब द्रव्यों में न पाया जाये, किन्तु कुछ में पाया जाये, उसे विशेषधर्म कहते हैं – जैसे चेतनत्व–अचेतनत्व, क्रियत्व –भावत्व, मूर्तत्व–अमूर्तत्व, लोकत्व–अलोकत्व इत्यादिक। *(7, 770)*

प्रश्न 193– जीव–अजीव की विशेषता बताओ ?

उत्तर – चेतनालक्षण, जीव है; अचेतनलक्षण, अजीव है। जीव, चेतन है; शेष पाँच, अचेतन हैं। *(771)*

प्रश्न 194– मूर्त–अमूर्त की विशेषता बताओ ?

उत्तर – जो इन्द्रिय के ग्रहण योग्य हो अथवा जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण पाया जाए, वह मूर्त है। इससे विपरीत अमूर्त है। एक पुद्गल, मूर्त है; शेष पाँच, अमूर्त हैं। *(775, 777)*

प्रश्न 195– लोक–अलोक की विशेषता बताओ ?

उत्तर – षट्द्रव्यात्मक लोक है, उससे विपरीत, अर्थात् (लोकाकाश के अतिरिक्त) आकाशमात्र अलोक है। *(790, 791)*

प्रश्न 196– क्रिया; भाव की विशेषता बताओ?

उत्तर – प्रदेशों का चलनात्मक परिस्पन्द, क्रिया है तथा प्रत्येक वस्तु में धारावाही परिणाम, भाव है। क्रियावान् दो – जीव और पुद्गलद्रव्य हैं; भाववान, छहों द्रव्य हैं। *(794)*

प्रश्न 197– सामान्य जीव का स्वरूप बताओ?

उत्तर – जीव, स्वत: सिद्ध, अनादि–अनन्त, अमूर्तिक, ज्ञानादि अनन्त धर्ममय, साधारण–असाधारण गुणयुक्त, लोकप्रमाण असंख्यात किन्तु अखण्ड अपने प्रदेशों में रहनेवाला, सबको जाननेवाला किन्तु उन सब से भिन्न तथा उनसे और कोई सम्बन्ध न रखनेवाला, अविनाशी द्रव्य है। सब जीव समानरूप से इसी स्वभाव के धारी हैं। *(798, 799, 800)*

प्रश्न 198– पर्यायदृष्टि से जीव के भेदस्वरूप बताओ?

उत्तर – एक बद्ध, एक मुक्त। जो संसारी है और अनादि से ज्ञानावरणादि कर्मों से मूर्च्छित होने के कारण, स्वरूप को अप्राप्त है, वह बद्ध है। जो सब प्रकार के कर्मरहित स्वरूप को पूर्ण प्राप्त है, वह मुक्त है। *(802)*

प्रश्न 199– बन्ध का स्वरूप भेदसहित बताओ?

उत्तर – बन्ध, तीन प्रकार का होता है। (1) भावबन्ध, (2) द्रव्यबन्ध, और (3) उभयबन्ध। राग और ज्ञान के बन्ध को भावबन्ध या जीवबन्ध कहते हैं। पुद्गलकर्मों को अथवा उनकी कर्मत्वशक्ति को द्रव्यबन्ध कहते हैं। जीव और कर्म के निमित्त–नैमित्तिकसम्बन्ध को उभयबन्ध कहते हैं। *(815, 816)*

प्रश्न 200- निमित्तमात्र के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - कर्ता, असर, प्रभाव, बलवान, प्रेरक, सहायक, सहाय, इन सब शब्दों का अर्थ निमित्तमात्र है।

(श्रीतत्त्वार्थसार, तीसरा अजीव अधिकार, श्लोक 43)

प्रश्न 201- निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध के नामान्तर बताओ ?

उत्तर - निमित्त-नैमित्तिक, अविनाभाव, कारण-कार्य, हेतु -हेतुमत, कर्ता-कर्म, साध्य-साधक, बन्ध्य-बन्धक, एक दूसरे के उपकारक वस्तुस्वभाव, कानूने कुदरत, Automatic system - ये शब्द पर्यायवाची हैं। सब शब्दों का प्रयोग आगम में मिलता है। अर्थ, केवल निमित्त की उपस्थिति में उपादान का स्वतन्त्र निरपेक्ष नैमित्तिक परिणमन है।

प्रश्न 202- जीव, कर्म और उनके बन्ध की सिद्धि करो ?

उत्तर - प्रत्यक्ष अपने में सुख-दु:ख का संवेदन होने से तथा 'मैं-मैं' रूप से अपना शरीर से भिन्न अनुभव होने से, जीव की सिद्धि है। कोई दरिद्र, कोई धनवान देखकर उसके अविनाभावीरूप कारण, कर्मपदार्थ की सिद्धि होती है। जीव में राग-द्वेष-मोह और सुख-दु:खरूप विभावभावों की उत्पत्ति, उनके बन्ध को सिद्ध करती है। यदि इनका बन्ध न होता तो जीव, धर्मद्रव्यवत् विभाव न कर सकता। *(773, 818, 819)*

प्रश्न 203- वैभाविकीशक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मा में ज्ञानादि अनन्त शुद्धशक्तियों की तरह यह भी एक शुद्धशक्ति है। पुद्गलकर्म के निमित्त मिलने पर, अर्थात् निमित्त का लक्ष्य करने पर, इसका विभाव परिणमन होता है। निमित्त मिटने पर स्वत: स्वभाव परिणमन होता है। इसी प्रकार पुद्गल में भी यह एक शक्ति है और उसका भी दो प्रकार का परिणमन होता है। इसी शक्ति के कारण जीव, संसारी और सिद्धरूप बना है। *(848, 849)*

प्रश्न 204– आत्मा को मूर्त क्यों कहते हैं ?

उत्तर – जब तक आत्मा, विभाव परिणमन करता है, तब तक विभाव के कारण उसे उपचार से मूर्त कहा जाता है। वास्तव में वह अमूर्त ही है। *(828)*

प्रश्न 205– बद्धज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो ज्ञान, मोहकर्म से आच्छादित है, प्रत्यर्थ परिणमनशील है, अर्थात् इष्ट–अनिष्ट पदार्थों के संयोग में रागी–द्वेषी–मोही होता है, वह बद्धज्ञान है। पहले गुणस्थानवर्ती अज्ञानी के ज्ञान को बद्धज्ञान कहते हैं। *(835)*

प्रश्न 206– अबद्धज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो मोहकर्म से रहित है, क्षायिक है, शुद्ध है, लोकालोक का प्रकाशक है, वह अबद्धज्ञान है। केवली के ज्ञान को अबद्धज्ञान कहते हैं। *(836)*

प्रश्न 207– विभाव के नामान्तर बताओ ?

उत्तर – परकृतभाव, परभाव, पराकारभाव, पुद्‌गलभाव, कर्मजन्य –भाव, प्रकृति शीलस्वभाव, परद्रव्य, कर्मकृत, तद्‌गुणाकारसंक्रान्ति, परगुणाकार, कर्मपदस्थितभाव, जीव में होनेवाला अजीवभाव, जीव सम्बन्धी अजीवभाव, तद्‌गुणाकृति, परयोगकृतभाव, निमित्तकृतभाव, विभावभाव, राग, उपरक्ति, उपाधि, उपरञ्जक, बन्धभाव, बद्धभाव, बद्धत्व, उपराग, परगुणाकारक्रिया, आगन्तुकभाव, क्षणिकभाव, ऊपरतरताभाव, स्वगुणच्युति, स्वस्वरूपच्युति, इत्यादि बहुत नाम हैं।

प्रश्न 208– बद्धत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – पदार्थ में एक वैभाविकीशक्ति है। वह यदि उपयोगी होवे, अर्थात् विभावरूप कार्य करती होवे तो उस पदार्थ की अपने

गुण के आकार की, अर्थात् असली स्वरूप की जो संक्रान्ति-च्युति विभावपरिणति है, वह संक्रान्ति ही अन्य है निमित्त जिसमें, ऐसा बन्ध है, अर्थात् द्रव्य का विभावपरिणमन बद्धत्व है, जैसे - ज्ञान का रागरूप परिणमना, बद्धत्व है। पुद्गल का कर्मत्वरूप परिणमना, बद्धत्व है, अर्थात् परगुणाकार क्रिया बद्धत्व है। *(840, 844, 898)*

प्रश्न 209- अशुद्धत्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - अपने गुण से च्युत होना, अशुद्धत्व है, अर्थात् विभाव के कारण अद्वैत से द्वैत हो जाना, अशुद्धत्व है। जैसे - ज्ञान का, अज्ञानरूप होना। *(880, 898)*

प्रश्न 210- बद्धत्व और अशुद्धत्व में क्या अन्तर है ?

उत्तर - एक अन्तर तो यह है कि बन्ध, कारण है और अशुद्धत्व, कार्य है क्योंकि बन्ध के बिना, अशुद्धता नहीं होती, अर्थात् विभाव-परिणमन किये बिना, ज्ञान की अज्ञानरूप दशा नहीं होती। ज्ञान का विभावपरिणमन, बद्धत्व है और उसकी अज्ञानदशा, अशुद्धत्व है; समय दोनों का एक ही है। यहाँ बद्धत्व, कारण है और अशुद्धत्व कार्य है। *(899)*

दूसरा अन्तर यह है कि बन्ध, कार्य है क्योंकि बन्ध, अर्थात् विभाव, पूर्वबद्धकर्मों के उदय से होता है और अशुद्धत्व, कारण है क्योंकि वह नए कर्मों को खेंचता है, अर्थात् उनके बन्धने के लिए निमित्तमात्र कारण हो जाता है। *(900)*

पहले अन्तर में बन्ध, कारण है, दूसरे में बन्ध, कार्य है। पहले अन्तर में अशुद्धत्व, कार्य है, दूसरे में कारण है। यही बद्धत्व और अशुद्ध दोनों में अन्तर है। *(897)*

प्रश्न 211- शुद्ध-अशुद्ध का क्या भाव है ?

उत्तर - औदयिकभाव, अशुद्ध है; क्षायिकभाव, शुद्ध है। यह

पर्याय में शुद्ध–अशुद्ध का अर्थ है। दूसरा अर्थ यह है कि औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक चारों नैमित्तिकभाव, अशुद्ध हैं और उनमें अन्वयरूप से पाये जानेवाला सामान्य, शुद्ध है। *(901)*

प्रश्न 212– निश्चयनय का विषय क्या है तथा बद्धाबद्धनय (व्यवहारनय) का विषय क्या है ?

उत्तर – निश्चयनय का विषय, उपर्युक्त शुद्ध सामान्य है तथा व्यवहारनय का विषय, जीव की नौ पर्यायें, अर्थात् अशुद्ध नौ तत्त्व हैं। *(903)*

प्रश्न 213– द्रव्यदृष्टि से जीवतत्त्व का निरूपण करो ?

उत्तर – पूर्व में प्रश्न 197 के उत्तर में कह चुके हैं, वहाँ देखें।

प्रश्न 214– पर्यायदृष्टि से जीवतत्त्व का निरूपण करो ?

उत्तर – जीव, चेतनारूप है। वह चेतना दो प्रकार की है – एक ज्ञानचेतना, दूसरी अज्ञानचेतना; अत: उनके स्वामी भी दो प्रकार के हैं। ज्ञानचेतना का स्वामी, सम्यग्दृष्टि; अज्ञानचेतना का स्वामी, मिथ्यादृष्टि। पर्यायदृष्टि से तीन लोक के जीव इन्हीं दो रूप हैं। *(958 से 1005)*

प्रश्न 215– सम्यग्दृष्टि का स्वरूप बताओ ?

उत्तर – (1) जो ज्ञानचेतना का स्वामी हो;

(2) इन्द्रियसुख तथा इन्द्रियज्ञान में जिसकी हेयबुद्धि हो;

(3) अतीन्द्रियसुख तथा अतीन्द्रियज्ञान में जिसकी उपादेय बुद्धि हो;

(4) जिसे अपनी आत्मा का प्रत्यक्ष (साक्षात्कार / अनुभव) हो गया हो;

(5) वस्तुस्वरूप को, विशेषतया नौ तत्त्वों को और उनमें अन्वयरूप से पाये जानेवाले सामान्य का जाननेवाला हो;

(6) भेदविज्ञान को प्राप्त हो;

(7) किसी कर्म में, विशेषरूप से सातावेदनीय में तथा कर्मों के कार्य में जिसकी उपादेयबुद्धि न हो;

(8) जिसके वीर्य का झुकाव हर समय अपनी ओर हो;

(9) पर के प्रति अत्यन्त उपेक्षारूप वैराग्य हो;

(10) कर्मचेतना और कर्मफलचेतना का ज्ञाता-द्रष्टा हो;

(11) सामान्य का संवेदन करनेवाला हो;

(12) विषय-सुख में और पर में अत्यन्त अरुचिभाव हो; और

(13) केवल (मात्र) ज्ञानमयभावों को उत्पन्न करनेवाला हो। - ये मोटे-मोटे लक्षण हैं। वास्तव में तो 'एक ज्ञानचेतना' ही सम्यग्दृष्टि का लक्षण है। उसके पेट में यह सब कुछ आ जाता है।

(966, 1000, 1139, 1142)

प्रश्न 216- मिथ्यादृष्टि का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - (1) जो कर्मचेतना तथा कर्मफलचेतना का स्वामी हो;

(2) इन्द्रियसुख और इन्द्रियज्ञान में जिसकी उपादेयबुद्धि हो;

(3) वस्तुस्वरूप से अज्ञात हो;

(4) सातावेदनीय के कार्य में जिसकी अत्यन्त रुचि हो;

(5) हर समय पर के ग्रहण का अत्यन्त अभिलाषी हो;

(6) अपने को पर्याय जितना ही मानकर, उसी का संवेदन करनेवाला हो; और

(7) केवल अज्ञानमयभावों का उत्पादक हो।

ये मोटे-मोटे लक्षण हैं। वास्तव में तो 'एक अज्ञानचेतना' ही मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। उसके पेट में यह सब कुछ आ जाता है।

प्रश्न 217- चेतना के पर्यायवाची नाम बताओ ?

उत्तर - (1) चेतना, उपलब्धि, प्राप्ति, संवेदन, सञ्चेतन, अनुभवन, अनुभूति अथवा आत्मोपलब्धि - इन शब्दों का एक अर्थ है। चाहे वह संवेदन, ज्ञानरूप हो या अज्ञानरूप। ये शब्द सामान्यरूप से दोनों में प्रयोग होते हैं।

(2) शुद्धचेतना, ज्ञानचेतना, शुद्धोपलब्धि, शुद्धात्मोपलब्धि - ये पर्यायवाची हैं; ज्ञानी के ही होती है।

(3) अशुद्धचेतना, अज्ञानचेतना, कर्मचेतना तथा कर्मफलचेतना, अशुद्धोपलब्धि - ये पर्यायवाची हैं; अज्ञानी के ही होती है।

प्रश्न 218- ज्ञानचेतना का क्या स्वरूप है ?

उत्तर - ज्ञानचेतना में शुद्ध आत्मा, अर्थात् ज्ञानमात्र का स्वाद आता है। यह ज्ञान की सम्यग्ज्ञानरूप अवस्थान्तर है। यह शुद्ध ही होती है। इससे कर्मबन्ध नहीं होता। *(964, 965)*

प्रश्न 219- अज्ञानचेतना का स्वरूप बताओ ?

उत्तर - अपने को सर्वथा राग-द्वेष या सुख-दुःखरूप अनुभव करना, अज्ञानचेतना है। जो आत्मा, स्वभाव से ज्ञायक था, वह स्वयं वेदक बनकर, अज्ञानभाव का संवेदन करता है। इसमें ज्ञान का रञ्चमात्र संवेदन नहीं है। यह सब जगत के (जगत के सभी मिथ्यादृष्टि जीवों के) पायी जाती है, अशुद्ध ही होती है और इससे कर्म बन्ध ही होता है। *(976)*

प्रश्न 220- कर्मचेतना का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - अपने को सर्वथा राग-द्वेष-मोहरूप ही अनुभव करना, ज्ञायक का रञ्चमात्र अनुभव न होना, कर्मचेतना है। जीव, भेदविज्ञान के अभाव के कारण, आत्मा के ज्ञायकस्वरूप को भूलकर, सर्वथा

परपदार्थ को अपनेरूप अथवा अपने को परपदार्थरूप समझता है, तो मोहभाव की उत्पत्ति होती है। जिसको इष्ट मानता है, उसके प्रति राग की उत्पत्ति होती है; जिसको अनिष्ट मानता है, उसके प्रति द्वेष की उत्पत्ति होती है। फिर सर्वथा राग-द्वेष-मोह का अनुभव करने लगता है। उसे आत्मा, मात्र राग-द्वेष-मोह जितना ही अनुभव में आता है। *(975)*

प्रश्न 221- कर्मफलचेतना का स्वरूप बताओ ?

उत्तर - अपने को सर्वथा सुख-दु:खरूप ही अनुभव करना। ज्ञायक का रञ्चमात्र अनुभव न होना, कर्मफलचेतना है। जीव, भेदविज्ञान के अभाव के कारण, आत्मा के ज्ञायकस्वरूप को भूलकर इष्ट विषयों में सुख की कल्पना करता है तथा अनिष्ट विषयों में दु:खभाव से सर्वथा तन्मय होकर उसी को संवेदन करता है। उसे आत्मा, मात्र सुख-दु:ख जितना ही अनुभव में आता है। *(974)*

प्रश्न 222- ज्ञानी को साधारण क्रियाओं से बन्ध क्यों नहीं होता ?

उत्तर - क्योंकि वह कर्मचेतना और कर्मफलचेतना का स्वामी नहीं है; ज्ञानचेतना का स्वामी है। ज्ञानचेतना के स्वामियों को कर्मचेतना और कर्मफलचेतना से बन्ध नहीं होता; अन्यथा मोक्ष ही न हो। *(997, 1000)*

प्रश्न 223- ज्ञानी-अज्ञानी की परिभाषा क्या है ?

उत्तर - जो अपने को सामान्यरूप संवेदन करे, वह ज्ञानी तथा जो अपने को विशेषरूप संवेदन करे, वह अज्ञानी; बाकी परलक्ष्यी ज्ञान के क्षयोपशम या बहिरङ्ग चारित्र से इसका कुछ सम्बन्ध नहीं है। जगत में एक सम्यग्दृष्टि ही ज्ञानी है; शेष सब जगत् अज्ञानी हैं। *(989, 990, 991)*

प्रश्न 224- आत्मा का सामान्यस्वरूप क्या है ?

उत्तर - (1) अबद्धस्पृष्ट, (2) अनन्य, (3) नियत, (4) अविशेष, (5) असंयुक्त, (6) शुद्ध, (7) ज्ञान की एक मूर्ति, (8) सिद्ध समान् आठ गुणसहित, (9) मैलरहित शुद्ध स्फटिकवत्, (10) परिग्रहरहित आकाशवत्, (11) इन्द्रियों से उपेक्षित, अनन्त ज्ञान-दर्शन-वीर्य की मूर्ति, (12) अनन्त अतीन्द्रिय सुखरूप, (13) अनन्त स्वाभाविकगुणों से अन्वित (युक्त) आत्मा का सामान्यस्वरूप है। *(1001, 1005)*

प्रश्न 225- अबद्धस्पृष्टादि का कुछ स्वरूप बताओ ?

उत्तर - (1) आत्मा, द्रव्यकर्म-भावकर्म से बद्ध नहीं है तथा नोकर्म से छुवा नहीं है, इसको अबद्धस्पृष्ट कहते हैं।

(2) आत्मा, मनुष्य-तिर्यञ्चादि नाना विभावव्यञ्जनपर्यायरूप नहीं है, यह अनन्यभाव है।

(3) आत्मा में ज्ञानादि गुणों के स्वाभाविक अविभाग प्रतिच्छेद की हानि-वृद्धि नहीं है, यह नियतभाव है।

(4) आत्मा में गुणभेद नहीं है, यह अविशेषभाव है।

(5) आत्मा, राग से संयुक्त नहीं है, यह असंयुक्तभाव है।

(6) आत्मा, नौ पदार्थरूप नहीं है, यह शुद्धभाव है।

(1001, 1005)

प्रश्न 226- इन्द्रियसुख का सैद्धान्तिक स्वरूप बताओ ?

उत्तर - (1) जो पराधीन है क्योंकि कर्म, इन्द्रिय और विषय के आधीन है।

(2) बाधासहित है क्योंकि आकुलतामय है।

(3) व्यच्छिन्न है क्योंकि असाता के उदय से टूट जाता है।

(4) बन्ध का कारण है क्योंकि राग का अविनाभावी है।

(5) अस्थिर है क्योंकि हानि-वृद्धिसहित है।

(6) दु:खरूप है क्योंकि तृष्णा का बीज है; अत: सम्यग्दृष्टि की इसमें रुचि नहीं होती। *(1013)*

प्रश्न 227- इन्द्रियज्ञान में सबसे बड़ा दोष क्या है ?

उत्तर - इन्द्रियज्ञान में सबसे बड़ा दोष यह है कि वह जिस पदार्थ को जानता है, उसमें मोह-राग-द्वेष की कल्पना करके आकुलित हो जाता है और आकुलता ही आत्मा के लिए महान दु:ख है। इसको प्रत्यर्थपरिणमन कहते हैं। *(1043)*

प्रश्न 228- अबुद्धिपूर्वक दु:ख किसे कहते हैं ?

उत्तर - चार घातिकर्मों के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से जो जीव के अनन्त चतुष्टय का घात हो रहा है, यह अबुद्धिपूर्वक महान दु:ख है। अनन्त चतुष्टयरूप स्वभाव का अभाव ही इसकी सिद्धि में कारण है। *(1073 से 1112)*

प्रश्न 229- अतीन्द्रियज्ञान तथा सुख की सिद्धि करो ?

उत्तर - यह आत्मा के दो अनुजीवीगुण हैं। अनादि से घातिकर्मों के निमित्त से इनका विभावरूप परिणमन हो रहा है। स्वरूप के अवलम्बन के बल द्वारा उन घातिकर्मों का अभाव होते ही इनकी स्वभावपर्याय प्रकट हो जाती है, उसी का नाम अतीन्द्रियज्ञान तथा अतीन्द्रिय सुख है। इसी को अनन्त-चतुष्टय भी कहते हैं क्योंकि अनन्त वीर्य तथा अनन्त दर्शन इसके अविनाभावी हैं। यही वास्तव में आत्मा का पूर्ण स्वरूप है, जिस पर उपादेयरूप से सम्यग्दृष्टि को दृष्टि जमी हुई है। *(1113 से 1138 तक)*

पाँचवें भाग का परिशिष्ट

सम्यक्त्व के लक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन

श्रीसमयसारजी में कहा है –

भूदत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जरबन्धो मोक्खो य सम्मत्तं ॥13॥

अर्थात्, भूतार्थनय से जाने हुए जीव, अजीव और पुण्य, पाप तथा आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष, ये नौ तत्त्व, सम्यक्त्व है।

भाव यह है कि नौ तत्त्व में अन्वयरूप से पाये जानेवाले सामान्य का अनुभव, सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन का स्वात्मानुभूतिरूप अनात्मभूत लक्षण है; जिसका श्री पञ्चाध्यायीकार ने श्लोक 1155 से 1177 तक 23 श्लोकों में विवेचन किया है।

श्रीनियमसारजी में कहा है

अत्तागमतच्चाणं सद्दहणादो हवेइ सम्मत्तं ॥5॥

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ॥51॥

चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं ॥52॥

अर्थात्, आप्त, आगम और तत्त्वों की श्रद्धा से सम्यक्त्व होता है ॥5॥

विपरीत-अभिनिवेश (अभिप्राय-आग्रह) रहित श्रद्धान, वह ही सम्यक्त्व है ॥51॥

चलता, मलिनता और अगाढ़तारहित श्रद्धान, वह ही सम्यक्त्व है ॥52॥

इसमें व्यवहारसम्यग्दर्शन का वर्णन है, जो इस ग्रन्थ में श्लोक 1176 से 1191 तक 14 श्लोकों में हैं।

श्रीपञ्चास्तिकाय, पृष्ठ 169 श्री जयसेन टीका में कहा है-

एवं जिणपण्णत्ते सद्दहमाणस्य भावदो भावे।
पुरसिस्साभिणिबोधे दंसणसद्दो हवदिजुत्ते ॥1॥

एवं जिनप्रज्ञप्तान् श्रद्दधतः भावतः भावान्।
पुरुषस्य आभिनिबोधे दर्शनशब्दः भवति युक्तः ॥

अर्थात्, इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गये पदार्थों को भावपूर्वक श्रद्धान करनेवाले पुरुष के मति-(श्रुत) ज्ञान में दर्शनशब्द प्रयुक्त होता है।

इस लक्षण में निरूपण तो श्रद्धागुण की असली सम्यग्दर्शन पर्याय का है, किन्तु वह निचली भूमिकावाले सम्यग्दृष्टि के ज्ञान को सहचर करके निरूपण किया गया है क्योंकि लेखक को आगे सम्यग्दृष्टि के ज्ञान के ज्ञेयभूत नौ पदार्थों का वर्णन करना था और उनकी भूमिकारूप यह सूत्र रचा गया है। इसका निरूपण पञ्चाध्यायीकार ने श्लोक 1178 से 1191 तक 14 सूत्रों में किया है।

श्रीप्रवचनसारजी, गाथा २४२ की टीका में कहा है-

'ज्ञेयज्ञातृतत्त्वतथाप्रतीतिलक्षणेन सम्यग्दर्शनपर्यायेण'

अर्थात्, ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व की तथा प्रकार (जैसी है, वैसी ही, यथार्थ) प्रतीति जिसका लक्षण है, वह सम्यग्दर्शन पर्याय है....।

यहाँ सम्यग्दर्शनरूप असली पर्याय का निरूपण है। स्व-पर श्रद्धान लक्षण से उसे निरूपण किया है। यह लक्षण पञ्चाध्यायीकार ने श्लोक 1178 से 1191 में निरूपण किया है।

श्रीदर्शनप्राभृत में कहा है-

जीवादीसद्दहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं॥20॥

अर्थात्, जीव आदि कहे जे पदार्थ, तिनिका श्रद्धान सो तो व्यवहार तैं सम्यक्त्व, जिन भगवान नै कह्या है, बहुरि निश्चयतैं अपना आत्मा ही का श्रद्धान, सो सम्यक्त्व है।

वहाँ व्यवहारसम्यक्त्व तो विकल्परूप है, जो निश्चयसम्यग्दर्शन का अविनाभावी चारित्रगुण का विकल्प है। इसका निरूपण पञ्चाध्यायीकार ने श्लोक 1178 से 1191 तक किया है। नीचे की पंक्ति में सम्यक्त्व का स्वात्मानुभूति लक्षण है, जिसको निश्चय-सम्यक्त्व कहा है, इसका निरूपण यहाँ सूत्र 1155 से 1177 तक 23 सूत्रों में किया है।

श्री ुरुषार्थसिद्ध्युपायजी में कहा है-

जीवाजीवादीनां तत्त्वार्थनां सदैव कर्तव्यम्।
श्रद्धानं विपरीताऽभिनिवेशविविक्तमात्मरूपं तत्॥22॥

अर्थात्, जीव-अजीव आदि नौ तत्त्वों का श्रद्धान सदा करना चाहिए। वह श्रद्धान, विपरीत-अभिप्राय से रहित है और वह 'आत्मरूप' है। आत्मरूप, राग को नहीं कहते; शुद्धभाव को ही कहते हैं।

यह लक्षण श्रद्धागुण की असली सम्यग्दर्शनपर्याय का है; आरोपित नहीं है। जिसका निरूपण पञ्चाध्यायीकार ने श्लोक 1143 से 1153 तक 11 श्लोकों में किया है।

श्रीद्रव्यसंग्रहजी में कहा है-

जीवादिसद्दहणं सम्मत्तं रूवमप्पणो तं तु।
दुरभिणिवेसविमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जह्मि॥41॥

अर्थात्, जीवादि नौ तत्त्वों का श्रद्धान, सम्यग्दर्शन है और वह

आत्मा का रूप है। जिसके होने पर निश्चय करके ज्ञान विपरीता-भिनिवेश (मिथ्या अभिप्राय) से रहित, सम्यक् हो जाता है।

यह लक्षण ज्यों का त्यों ऊपर के श्री पुरुषार्थसिद्ध्युपाय से मिलता है। आत्मरूप लिखकर इसमें आरोपित लक्षणों का तथा राग का निषेध कर दिया है और श्रद्धागुण की असली स्वभावपर्यायरूप सम्यग्दर्शन का द्योतक है। उसके होने पर ज्ञान, सम्यग्ज्ञान हो जाता है, यह उसका लाभ है। इसका निरूपण इस ग्रन्थ में सूत्र 1143 से 1153 तक है।

श्रीरत्नकरण्डश्रावकाचारजी में कहा है-

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागम तपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्ययम्॥4॥

अर्थात्, सच्चे देव, आगम और गुरुओं का, तीन मूढ़तारहित, आठ मदरहित तथा आठ अङ्गसहित श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शन है।

यह लक्षण उपर्युक्त श्री नियमसार के लक्षण से लिया गया है। है तो यह असली सम्यग्दर्शन का लक्षण, परन्तु सम्यग्दर्शन के अविनाभावी चारित्रगुण के बुद्धिपूर्वक विकल्प पर आरोप करके निरूपण किया है, क्योंकि उन्हें चरणानुयोग का ग्रन्थ बनाना इष्ट था। इसका निरूपण पञ्चाध्यायीकार ने श्लोक 1178 से 1585 तक किया है।

श्रीमोक्षशास्त्रजी में कहा है-

'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' - सात तत्त्वों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। है तो यह भी असली सम्यग्दर्शन का लक्षण, परन्तु अविनाभावी ज्ञान की पर्याय का सहचर करके निरूपण किया है क्योंकि उन्होंने सात तत्त्वों के ज्ञान कराने के उद्देश्य से ग्रन्थ लिखा है। शेष सब ग्रन्थों के लक्षण, उपर्युक्त सब लक्षणों के पेट में ही आ

जाते हैं तथा उपर्युक्त के समझ लेने से पाठक अन्य पुस्तकों के लक्षणों को स्वयं समझ जाता है।

सम्यग्दर्शन : निरूपण की अपेक्षाएँ

यह विषय समझना परमावश्यक है; अतः इस पर कुछ प्रकाश डालने का प्रयत्न करते हैं। यह विषय वास्तविकरूप में उसी को समझ आयेगा, जिसको द्रव्य-गुण-पर्याय का अच्छा ज्ञान होगा। इस विषय में जितनी भी भूल, जगत में चलती है, वह सब द्रव्य-गुण -पर्याय की अज्ञानता के कारण चलती है। अस्तु

(1) आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वीर्य इत्यादि अनन्त गुणों की तरह एक सम्यक्त्व नामक गुण है, इसको श्रद्धागुण भी कहते हैं। इसकी केवल छह पर्यायें होती हैं। (1) मिथ्यात्व, (2) सासादन, (3) मिश्र, अर्थात् सम्यक् मिथ्यात्व, (4) औपशमिकसम्यग्दर्शन, (5) क्षायोपशमिकसम्यग्दर्शन, (6) क्षायिकसम्यग्दर्शन। सातवीं कोई पर्याय इस गुण में नहीं होती। व्यवहारसम्यग्दर्शन, निश्चय -सम्यग्दर्शन नाम का कोई पर्यायभेद, इस गुण में है ही नहीं - यह सिद्धान्त पद्धति है। केवलज्ञान के आधार पर, इसका निरूपण होता है। इस पद्धति में एक गुण की पर्याय का आरोप, दूसरे गुण पर नहीं होता, किन्तु प्रत्येक गुण का भिन्न-भिन्न विचार किया जाता है। इस पद्धति में क्षायिकसम्यग्दर्शन को वीतरागसम्यग्दर्शन भी कहते हैं और औपशमिक तथा क्षायोपशमिकसम्यग्दर्शन को सराग सम्यग्दर्शन भी कहते हैं; इस प्रकार सराग और वीतरागसम्यग्दर्शन, दोनों श्रद्धागुण की वास्तविक पर्याय बन जाती हैं। यह पद्धति श्री राजवार्तिकजी में हैं तथा श्री अमितगतिश्रावकाचार में यह श्लोक है:

वीतरागं सरागं च सम्यक्त्व कथितं द्विधा।
विरागं क्षायिकं तत्र सरागमपरं द्वयम्॥65॥

अर्थात्, (1) वीतराग और सराग - ऐसे सम्यक्त्व दोय प्रकार

कह्या है तथा क्षायिकसम्यक्त्व, वीतराग है और क्षयोपशम, उपशम ए दोय सम्यक्त्व, सराग हैं।

(2) अध्यात्म में पहली तीन पर्यायों को सामान्यतया मिथ्यादर्शन कहा जाता है और पिछली तीन पर्यायों को सामान्यतया सम्यग्दर्शन कहा जाता है अथवा यूँ भी कह सकते हैं कि सासादन और सम्यक् मिथ्यात्व का अध्यात्म में निरूपण नहीं होता; केवल मिथ्यात्वपर्याय का निरूपण होता है, जो श्रद्धागुण की विभाव या विपरीतपर्याय कही जाती हैं, क्योंकि अध्यात्म का निरूपण ऐसे ढंग से होता है, जो हम लोगों की पकड़ में आ सके। उसी प्रकार औपशमिकसम्यक्त्व, क्षायोपशमिकसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व - तत्त्वार्थश्रद्धान या आत्मश्रद्धान इनका लक्षण है। इस पर्याय में निश्चय-व्यवहार का कोई भेद नहीं है। गुणभेद करके, केवल श्रद्धागुण की अपेक्षा यदि जानना चाहते हो तो बस सम्यग्दर्शन के बारे में इतनी ही बात है।

(3) अब अभेद की दृष्टि से कुछ निरूपण करते हैं। आत्मा में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय चौथे गुणस्थान में ही ज्ञान, सम्यग्ज्ञान हो जाता है। उस ज्ञानगुण का परिणमन, उपयोगरूप भी है। यह उपयोग किसी समय स्व को जानता है तो किसी समय पर को जानता है। जिस समय चौथे गुणस्थान में ही उस सम्यग्दृष्टि आत्मा का ज्ञानोपयोग, सब परज्ञेयों से हटकर केवल आत्मसञ्चेतन करने लगता है, उस समय उसको स्वात्मानुभूति कहते हैं। उस समय बुद्धिपूर्वक विकल्प (राग) नहीं होता; आत्मा का उपयोग केवल स्वसन्मुख होकर अपने अतीन्द्रियसुख का भोग करता है। इस ज्ञान की स्वात्मानुभूति को, अखण्ड आत्मा होने के कारण 'सम्यग्दर्शन' भी कह देते हैं, परन्तु इतना विवेक रखना चाहिए कि यह मति -श्रुतज्ञान की पर्याय है; श्रद्धागुण की पर्याय नहीं है और इसको सम्यग्दर्शन कहना, सम्यग्दर्शन का अनात्मभूत लक्षण है; आत्मभूत लक्षण नहीं है क्योंकि इस स्वात्मानुभूति में बुद्धिपूर्वक विकल्प

(राग) नहीं होता; अतः इसको निश्चयसम्यग्दर्शन भी कहा जाता है। सम्यग्दर्शन के साथ निश्चय विशेषण लगाने से बुद्धिपूर्वक राग का निषेध हो जाता है और वह स्वात्मानुभूतिदशा का द्योतक हो जाता है। श्रीसमयसारजी में इस पद्धति का निरूपण है। वह दशा चौथे गुणस्थन में भी होती है, पाँचवें, छठवें में भी होती है तथा सातवें से सिद्ध तक तो है ही स्वात्मानुभूतिरूप दशा।

(श्री आत्मावलोकन, पृष्ठ-165-166 के आधार से)

(4) जिस समय सम्यग्दृष्टि का ज्ञान, स्वात्मानुभूति से छूट कर, पर में जाता है और जीवादि नौ पदार्थों को भेदरूप जानता है, उस समय, उसके ज्ञान में बुद्धिपूर्वक राग भी आ जाता है; अतः उस समय बुद्धिपूर्वक ज्ञान की अपेक्षा तथा नौ तत्त्वों को भेदसहित और रागसहित जानने के कारण, उस ज्ञान के परिणमन को व्यवहार-सम्यग्दर्शन कहा जाता है। इसमें सम्यग्दर्शन शब्द तो यह बताता है कि ज्ञान, श्रद्धागुण की सम्यक्त्वपर्याय को लिये हुए है और व्यवहार शब्द यह बतलाता है कि उस ज्ञान में बुद्धिपूर्वक राग भी है। यह जो नौ पदार्थों के जाननेरूप ज्ञान की पर्याय को व्यवहारसम्यक्त्व कहा जाता है, वहाँ यह विवेक रहना चाहिए कि यह सम्यक्त्व का सहचर लक्षण है और वस्तुस्थिति उपर्युक्त अनुसार है, यह भी सम्यक्त्व निरूपण की पद्धति है। तत्त्वार्थों का श्रद्धान, सम्यग्दर्शन - इसी पद्धति में कहा जाता है।

(5) सम्यग्दृष्टि आत्मा में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के समय, चारित्र भी सम्यक्चारित्र हो जाता है। जिस समय चौथे गुणस्थान से ही सम्यग्दृष्टि आत्मा, उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति करता है, उस समय इस गुण में अबुद्धिपूर्वक तो राग रहता है, परन्तु बुद्धिपूर्वक राग नहीं रहता; अतः स्वात्मानुभूति के समय, जब सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व को निश्चयसम्यक्त्व कहा जाता है तो उसमें इस गुण का वीतराग अंश भी समाविष्ट है। जिस समय स्वात्मानुभूति से छूटकर,

सम्यग्दृष्टि आत्मा, पर में प्रवृत्त होता है – जैसे पूजा, पाठ, शास्त्र स्वाध्याय, प्रवचन इत्यादि में; उस समय इस गुण में बुद्धिपूर्वक राग का परिणमन रहता है, इस बुद्धिपूर्वक विकल्प को व्यवहारसम्यक्त्व या व्यवहारज्ञान कह देते हैं परन्तु कहते हैं उसी जीव में, जिसमें दर्शनमोह का उपशमादि होकर वास्तविक सम्यग्दर्शन साथ हो। **मिथ्यादृष्टि के श्रद्धान या ज्ञान या चारित्र को निश्चय या व्यवहार कोई भी सम्यक्त्व नहीं कहते – यह बात भलीभाँति ध्यान में रहनी चाहिए।** जहाँ कहीं मिथ्यादृष्टि के व्यवहार श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र कह भी दिया हो, तो समझ लेना चाहिए कि वहाँ श्रद्धाभास, ज्ञानाभास तथा चारित्राभास को व्यवहार श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र का नाम दिया है और सम्यक् शब्द तो मिथ्यादृष्टि के लिये प्रयोग होता ही नहीं है।

अब, इस कथन को उपर्युक्त आगमप्रमाण से मिलाकर दिखाते हैं।

श्रीसमयसारजी में उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति को निश्चय -सम्यग्दर्शन कहा है, जो मति-श्रुतज्ञान की पर्याय है, परन्तु क्योंकि वह सम्यग्दृष्टि को ही होती है; अत: वह कथन निर्दोष है।

श्रीपञ्चास्तिकाय में सम्यग्दर्शन के सहभावी ज्ञान को सम्यग्दर्शन कहा है।

श्रीदर्शनपाहुड़ में सम्यक्त्व के अविनाभावी चारित्रगुण के बुद्धिपूर्वक विकल्पसहित ज्ञान के परिणमन को व्यवहारसम्यक्त्व कहा है और उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति को निश्चयसम्यक्त्व कहा है।

श्रीप्रवचनसार में सम्यक्त्व के अविनाभावी सामान्यज्ञान को सम्यग्दर्शन कहा है, चाहे वह ज्ञान लब्धिरूप हो या उपयोगरूप हो।

श्रीपुरुषार्थसिद्धियुपाय तथा श्री द्रव्यसंग्रह में श्रद्धागुण की सीधी सम्यग्दर्शन पर्याय का निरूपण है, उसमें निश्चय-व्यवहार का भेद नहीं है।

श्रीरत्नकरण्डश्रावकाचार में सम्यक्त्व के अविनाभावी चारित्रगुण के देव-शास्त्र-गुरु के विकल्पात्मक परिणमन को सम्यग्दर्शन कहा है।

श्रीमोक्षशास्त्र में सम्यक्त्व के अविनाभावी ज्ञान को सम्यग्दर्शन कहा है।

श्रीसर्वार्थसिद्धि में प्रशम, संवेग, अनुकम्पा, सम्यक्त्व का लक्षण मिलता है, यह सम्यक्त्व के अविनाभावी चारित्रगुण का विकल्पात्मक परिणमन है।

श्रीआत्मानुशासन में जो सम्यक्त्व के मूलसम्यक्त्व आदि दस भेद किये हैं, वे अनेक निमित्तों की अपेक्षा सम्यक्त्व के अविनाभावी हैं।

श्रीप्रवचनसार, गाथा-242 की टीका में एक और ही प्रकार का व्यवहार-निश्चय मिलता है। वहाँ अप्रमत्तदशा की बात है। अप्रमत्तदशा में रत्नत्रय में बुद्धिपूर्वक विकल्प का तो अभाव हो जाता है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का भिन्न-भिन्न वेदन न होकर, पानकवत् एकाग्र वेदन होता है; अतः आचार्य कहते हैं कि गुणभेद करके भिन्न-भिन्न गुण की पर्याय से यदि मोक्षमार्ग कहो तो वही व्यवहारमोक्षमार्ग है और यदि गुण भेद न करके, अभेद से कहो तो वही निश्चयमोक्षमार्ग हैं। यहाँ राग को व्यवहार और वीतरागता को निश्चय नहीं, किन्तु पर्यायभेद को व्यवहार और पर्याय-अभेद को निश्चय कहा है।

श्रीद्रव्यसंग्रह में बहुत सुन्दर विवेचन है। उन्होंने सम्यग्दर्शन, जो श्रद्धागुण की असली पर्याय है, उसे तो निश्चयसम्यग्दर्शन लिखा है। ज्ञान की पर्याय, स्व-पर के जाननेरूप है, उसमें निश्चय-व्यवहार का भेद नहीं किया। चारित्रगुण का परिणमन क्योंकि वीतरागरूप भी होता है और सरागरूप भी; अतः पर्याय के टुकड़े करके जितने अंश में वह चारित्रगुण, शुभविकल्परूप परिणमन कर रहा है, उतने अंश में तो उसको व्यवहारचारित्र कहा है, यह ज्ञानी का

व्यवहार है। जितने अंश में चारित्र वीतरागरूप परिणमन कर रहा है, उसको निश्चयसम्यक्चारित्र कहा है। इन्होंने पूरे द्रव्य-गुण-पर्याय के हिसाब से लिखा है, और सब विवाद ही खत्म कर दिया है। यह विवेचन शुद्ध है, अर्थात् भिन्न-भिन्न गुणभेद की पर्याय के अनुसार है; आरोप का काम नहीं है।

श्रीनियमसार, गाथा 5 तथा 51-52 की प्रथम पंक्तियों में व्यवहार-सम्यक्त्व का निरूपण है। गाथा 51-52 की अन्तिम पंक्तियों में सम्यग्ज्ञान का तथा 54-55 की प्रथम पंक्तियों में निश्चयसम्यग्दर्शन, निश्चयसम्यग्ज्ञान का निरूपण है। गाथा 56 से 76 तक ज्ञानी के विकल्परूप शुभव्यवहारचारित्र का विवेचन है और 77 से 158 तक वीतराग अंशरूप, निश्चयचारित्र का वर्णन है।

श्रीद्रव्यसंग्रह, गाथा 41 में सम्यग्दर्शन का, गाथा 42 में शुद्ध सम्यग्ज्ञान का, गाथा 45 में व्यवहारचारित्र का कथन है। इसमें चारित्र का सम्यक् विशेषण नहीं है, यह खास देखने की बात है, यद्यपि यह ज्ञानी का विकल्प है। गाथा 46 में वीतरागचारित्र का कथन है, अज्ञानी को व्यवहार भी नहीं कहा है।

श्रीपुरुषार्थसिद्ध्युपाय में तीनों शुद्धभावरूप लिये हैं। राग को अङ्गीकार नहीं किया, बल्कि राग का तो निषेध किया है।

श्रीतत्त्वार्थसार में ज्ञानी, मुनि की विकल्पात्मक प्रवृत्ति को व्यवहार संज्ञा दी है और निर्विकल्प मुनि को, निश्चय संज्ञा दी है। श्रीपञ्चास्तिकाय में भी यही बात है।

श्रीसमयसार में शुद्ध अंश को निश्चयरत्नत्रय और राग अंश को व्यवहार कहा है, उस राग के साथ सम्यक् विशेषण नहीं है।

पण्डित टोडरमलजी कृत मोक्षमार्गप्रकाशक के अन्तिम नवमें अध्याय में, शुद्ध / असली सम्यक्त्व है, उसको तो निश्चयसम्यक्त्व

कहा है और जितने अंश में राग है, अर्थात ज्ञान के साथ उस जाति का बुद्धिपूर्वक विकल्प है, उसको व्यवहारसम्यक्त्व कहा है; इस प्रकार दोनों प्रकार के सम्यक्त्व को एक समय में कहा है। उससे आगे वे लिखते हैं कि सम्यग्दृष्टि के राग पर ही व्यवहारसम्यक्त्व का आरोप आता है; मिथ्यादृष्टि के राग पर नहीं, अर्थात् मिथ्यादृष्टि के राग को व्यवहारसम्यक्त्व नहीं कहते। सम्यक्त्व की उत्पत्ति से पहले, जो विकल्पात्मक नौ पदार्थ की श्रद्धा है – वह मिथ्याश्रद्धा है, उसको व्यवहारसम्यक्त्व नहीं कहते। आगे वे लिखते हैं कि जिस जीव को नियम से सम्यक्त्व होनेवाला है और वह करणलब्धि में स्थित है, उसकी विकल्पात्मक श्रद्धा को तो व्यवहारसम्यक्त्व कह सकते हैं, क्योंकि वहाँ नियम से निश्चयसम्यक्त्व उत्पन्न होनेवाला है।

श्रीजयसेन आचार्य तथा श्रीब्रह्मदेव सूरि आदि जिन आचार्यों ने एक समय में व्यवहार-निश्चयरूप दोनों प्रकार का मोक्षमार्ग माना है, उन्होंने तो शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्यायों को तो निश्चय कहा है और राग को व्यवहार कहा है और जिन्होंने भिन्न-भिन्न समय की मुख्यता से कहा है, उन्होंने सम्यग्दृष्टि मुनि की सविकल्प अवस्था को व्यवहाररत्नत्रय और निर्विकल्प अवस्था को निश्चयरत्नत्रय कहा है। (बृहद्द्रव्यसंग्रह, गाथा 39 की टीका इन दोनों पद्धतियों का स्पष्ट प्रमाण है) जिन्होंने एक समय में माना है, उन्होंने राग पर कारण का आरोप कर दिया है और निश्चय तो है ही कार्यरूप; और जिन्होंने ज्ञान की सविकल्प (व्यवहाररत्नत्रय) अवस्था को कारण और निर्विकल्प अवस्था को कार्य माना है, उनका आशय ऐसा है कि भेदसहित तत्त्वों का ज्ञाता होगा, वही तो विकल्प तोड़कर निर्विकल्प दशारूप कार्य / अवस्था को प्राप्त करेगा; बाकी यह सब कहने का कार्य-कारण है। वास्तव में सामान्य आत्मा का आश्रय ही तीनों शुद्धभावों का वास्तविक कारण है क्योंकि सामान्य में से ही

रत्नत्रय प्रगट होता है और व्यवहार (राग का कारण) परवस्तु का आश्रय है क्योंकि पर में अटकने से ही तो राग की उत्पत्ति होती है। यह वास्तविक कारण नहीं है। राग और शुद्धभाव का क्या कार्य-कारण? एक बन्धरूप है, एक मोक्षरूप है; ये तो दोनों विरोधी हैं, विपरीत कार्य के करनेवाले हैं।

कोई भी सम्यक्त्व कहो, उसमें श्रद्धागुण की स्वभावपर्याय का सहचर होना अवश्यम्भावी है। वास्तव में सम्यग्दर्शन कई प्रकार का नहीं है, किन्तु उसका निरूपण कई प्रकार का है। सम्यग्दर्शन तो श्रद्धागुण की स्वभावपर्याय होने से एक ही प्रकार का है। उसका कथन कहीं द्रव्यकर्मरूप निमित्त की अपेक्षा से औपशमिक आदि तीन प्रकार का है; कहीं अबुद्धिपूर्वक राग के असद्भाव और सद्भाव के कारण निश्चय-व्यवहार दो प्रकार का है; कहीं श्रद्धागुण की अपेक्षा कथन है; कहीं ज्ञानगुण की अपेक्षा कथन और कहीं चारित्र की अपेक्षा कथन है। सिद्धों के आठ गुणों में श्रद्धा और चारित्र दोनों की इकट्ठी एक शुद्धपर्याय का नाम सम्यक्त्व है, वहाँ ज्ञान को भिन्न कर दिया है और चारित्र को सम्यक्त्व में समाविष्ट कर दिया है। कहाँ तक कहें! कहनेवाले का अभिप्राय क्या है तथा प्रकरण क्या है? - यह जानने की आवश्यकता है, साथ ही आवश्यक है कि द्रव्य-गुण-पर्याय का ठीक-ठीक ज्ञान हो; फिर भूल का अवकाश नहीं है।

एक बात और खास यह है कि बिना असली सम्यग्दर्शनरूप पर्याय प्रगट हुए भी, मिथ्यादृष्टि जो शास्त्र के बल से तत्त्वार्थ की विकल्पात्मक श्रद्धा करता है, ग्यारह अङ्ग तक का विकल्पात्मक ज्ञान करता है तथा छह काय के जीवों की रक्षा करता है, उसको आगम में व्यवहार कहने की पद्धति है - जैसे, श्रीप्रवचनसार, गाथा 239 के शीर्षक में मिथ्यादृष्टि के तीनों कहे हैं; श्रीसमयसारजी,

गाथा 276 में मिथ्यादृष्टि के तीनों - आचारादि — शास्त्रज्ञान को ज्ञान, जीवादि के श्रद्धान को श्रद्धान और षट्काय के जीवों की रक्षा को चारित्र कह कर तुरन्त गाथा 277 में उसका निषेध कर दिया है कि रत्नत्रय तो आत्माश्रित शुद्धभाव है; यह राग, रत्नत्रय नहीं हो सकता। इसमें इतना विवेक रखने की आवश्यकता है कि मिथ्यादृष्टि के श्रद्धानादि को व्यवहार कहने पर भी, वह व्यवहाराभास है; न व्यवहाररत्नत्रय है और न निश्चयरत्नत्रय है।

श्री समयसारजी, कलश 9 में कहा है कि नौ तत्त्वों की विकल्पात्मक श्रद्धा को छोड़कर, एक आत्मानुभव हमें प्राप्त हो। वहाँ भी रागवाली नौ पदार्थों की श्रद्धा से आशय है। कुछ लोगों का ऐसा भी कहना है कि सम्यग्दर्शन से पूर्व होनेवाली नौ पदार्थों की श्रद्धा को व्यवहारसम्यग्दर्शन कहते हैं, किन्तु सम्यक्त्व की उत्पत्ति से पहले व्यवहाररत्नत्रय होता ही नहीं। इसकी साक्षी श्रीपञ्चास्तिकाय गाथा 106-107 की टीका में नियम कर दिया है कि दर्शनमोह के अनुदय और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति से पहले कोई मोक्षमार्ग नहीं। बिना निश्चय के, व्यवहार किस का? अब सार बात यह है कि वास्तव में तो सम्यग्दर्शन, श्रद्धागुण की निर्विकल्प शुद्धपर्याय है, जो चौथे गुणस्थान से सिद्ध तक एकरूप है। उसमें निश्चय-व्यवहार है ही नहीं। वास्तव में यह व्यवहार-निश्चय की कल्पना से रहित सम्यक्त्व अद्वैतरूप है। इसकी चर्चा स्वयं ग्रन्थकार छठवीं पुस्तक में करेंगे। यह अनेकान्त आगम की तीक्ष्णधारा है। गुरुगम से चलानी सीखनी पड़ती है, अन्यथा रागरूप शत्रु का गला काटने की बजाय जीव स्वयं खड्डे में पड़ जाता है। विशेष सद्गुरु के परिचय से जानकारी करें। हम जैसे तुच्छ पामर क्या आगम का पार पा सकते हैं?

सद्गुरुदेव की जय। ॐ शान्ति।

सम्यक्त्व के भेद

श्री चिद्विलास परमागम में कहा है – चौथे गुणस्थानवाला जीव, श्री सर्वज्ञकर कहे हुए वस्तुस्वरूप का चिन्तवन करता है, उसको सम्यक्त्व हो गया है। उस सम्यक्त्व के 67 भेद हैं, वे कहते हैं।

प्रथम, श्रद्धान के चार भेद हैं –

(1) परमार्थ संस्तव – सात तत्त्व हैं। उनका स्वरूप, ज्ञाता चिन्तवन करता है। चेतनालक्षण, दर्शन–ज्ञानरूप उपयोग, अनादि–अनन्त शक्तिसहित अनन्त गुणों से शोभित मेरा स्वरूप है। अनादि से पर संयोग के साथ मिथ्या है तो भी (हमारा) ज्ञानउपयोग हमारे स्वरूप में ज्ञेयाकार होता है; परज्ञेयरूप नहीं होता। (हमारी) ज्ञानशक्ति अविकाररूप अखण्डित रहती है। ज्ञेयों को अबलम्बन करती है परन्तु निश्चय से परज्ञेयों को छूती भी नहीं है। उपयोग, पर को देखता हुआ भी, अनदेखता है; पराचरण करता हुआ भी, अकर्ता है – ऐसे उपयोग के प्रतीतिभाव को श्रद्धता है। अजीवादिक पदार्थों को हेय जानकर श्रद्धान करता है। बारम्बार भेदज्ञान द्वारा स्वरूप चिन्तवन करके स्वरूप की श्रद्धा हुई, उसका नाम परमार्थ संस्तव कहा जाता है।

(2) मुनित परमार्थ – जिनागम–द्रव्यश्रुत द्वारा अर्थ को जानकर ज्ञानज्योति का अनुभव हुआ, उसको मुनित परमार्थ कहते हैं।

(3) यतिजन सेवा – वीतराग स्वसंवेदन द्वारा शुद्धस्वरूप का रसास्वाद हुआ, उसमें प्रीति–भक्ति–सेवा, उसको यतिजन सेवा कहा जाता है।

(4) कुदृष्टिपरित्याग – परालम्बी बहिर्मुख मिथ्यादृष्टिजनों के त्याग को कुदृष्टिपरित्याग कहा जाता है।

सम्यक्त्व के तीन चिह्न कहते हैं –

(5) 1. जिनागमशुश्रूषा – अनादि की मिथ्यादृष्टि को छोड़कर, जिनागम में कहे हुए ज्ञानमय स्वरूप को पाया जाता है। उसमें उपकारी जिनागम है। उस जिनागम के प्रति प्रीति करें। ऐसी प्रीति करे कि जैसे दरिद्री को किसी ने चिन्तामणि दिखाया, तब उससे चिन्तामणि पाया। उस समय जैसे वह दरिद्री उस दिखानेवाले से प्रीति करता है, वैसी प्रतीति श्रीजिनसूत्र से (सम्यग्दृष्टि) करे, उसको जिनागमशुश्रूषा कहा जाता है।

(6) 2. धर्मसाधन में परम अनुराग – जिनधर्मरूप अनन्त गुण का विचार, वह धर्मसाधन है। उसमें परम अनुराग करे; धर्म साधन में अनुराग, दूसरा चिह्न है।

(7) 3. जिनगुरु वैयावृत्य – जिस गुरु द्वारा ज्ञान-आनन्द पाया जाता है; इसलिए उनकी वैयावृत्य-सेवा-स्थिरता करे; वह जिन गुरुवैयावृत्य, तीसरा चिह्न कहा जाता है। ये तीनों चिह्न अनुभवी के हैं।

अब, विनय के दस भेद कहते हैं –

(8 से 17) – 1. अरहन्त, 2. सिद्ध, 3. आचार्य, 4. उपाध्याय, 5. साधु, 6. प्रतिमा, 7. श्रुत, 8. धर्म, 9. चार प्रकार का संघ, और 10. सम्यक्त्व; इन दस की विनय करे; उन द्वारा स्वरूप की भावना उत्पन्न होती है।

अब, तीन शुद्धि कहते हैं –

(18 से 20) – मन-वचन-काय शुद्ध करके स्वरूप भावे, और स्वरूप अनुभवी पुरुषों में इन तीनों को लगावे; स्वरूप को निःशंक निःसन्देहपने ग्रहे।

अब, पाँच दोषों का त्याग कहते हैं (अतिचार)

(21) 1. सर्वज्ञ वचन को निःसन्देहपणे माने।

(22) 2. मिथ्यामत की अभिलाषा न करे; पर-द्वैत को न इच्छे।

(23) 3. पवित्र स्वरूप को ग्रहे, पर के प्रति ग्लानि न करे।

(24) 4. मिथ्यात्वी परग्राही द्वैत की मन द्वारा प्रशंसा न करे।

(25) 5. वचन द्वारा (उस मिथ्यात्वी के) गुण न कहे।

अब, सम्यक्त्व की प्रभावना के आठ भेद कहते हैं –

(26) 1. पवयणी – (अर्थात्, सिद्धान्त का जानकार) सिद्धान्त में स्वरूप को उपादेय कहे।

(27) 2. धर्मकथा – जिनधर्म का कथन कहे।

(28) 3. वादी – हट द्वारा द्वैत का आग्रह होय तो छुड़ावे और मिथ्यावाद मिटावे।

(29) 4. निमित्त – स्वरूप पाने में निमित्त जिनवाणी, गुरु तथा स्वधर्मी हैं और निजविचार है; निमित्तरूप से जो धर्मज्ञ हैं उसका हित कहे।

(30) 5. तपस्वी – परद्वैत की इच्छा मिटाकर, निजप्रताप प्रगट करे।

(31) 6. विद्यावान – विद्या द्वारा जिनमत का प्रभाव कहे, ज्ञान द्वारा स्वरूप का प्रभाव करे।

(32) 7. सिद्ध – स्वरूपानन्दी का वचन द्वारा हित करे, संघ की स्थिरता करे; जिस द्वारा स्वरूप की प्राप्ति होती है, उसको सिद्ध कहते हैं।

(33) 8. कवि – कवि, स्वरूपसम्बन्धी रचना रचे, परमार्थ को पावे, प्रभावना करे।

इन आठ भेदों द्वारा जिनधर्म का–स्वरूप का–प्रभाव बढ़े, ऐसा करे, ये अनुभवी के लक्षण हैं।

अब, छह भावना कहते हैं – (विशेष)

(34) 1. मूलभावना – सम्यक्त्वस्वरूप–अनुभव, वह सकल निज–धर्ममूल / शिवमूल है। जिनधर्मरूपी कल्पतरु का मूल, सम्यक्त्व है – ऐसा भावे (दंसणमूलो धम्मो)।

(35) 2. द्वारभावना – धर्मनगर में प्रवेश करने के लिए सम्यक्त्व, द्वार है।

(36) 3. प्रतिष्ठाभावना – व्रत–तप की, स्वरूप की प्रतिष्ठा, सम्यक्त्व से है।

(37) 4. निधानभावना – अनन्त सुख देने का निधान, सम्यक्त्व है।

(38) 5. आधारभावना – जिन गुणों का आधार, सम्यक्त्व है।

(39) 6. भाजनभावना – सब गुणों का भाजन, सम्यक्त्व है।

ये छह भावनाएँ स्वरूपरस प्रगट करती हैं।

अब, सम्यक्त्व के पाँच भूषण लिखते हैं –

(40) 1. कौशल्यता – परमात्मभक्ति, परपरिणाम और पापपरित्याग (रूप) स्वरूप, भावसंवर और शुद्धभावपोषक क्रिया को कौशल्यता कहते हैं।

(41) 2. तीर्थसेवा – अनुभवी वीतराग सत्पुरुषों के सङ्ग को तीर्थसेवा कहते हैं।

(42) 3. भक्ति – जिनसाधु और स्वधर्मी की आदरता द्वारा उसकी महिमा बधाना, उसको भक्ति कहते हैं।

(43) 4. स्थिरता – सम्यक्त्वभाव की दृढ़ता, वह स्थिरता है।

(44) 5. प्रभावना – पूजा–प्रभाव करना, वह प्रभावना है।

ये भूषण, सम्यक्त्व के हैं।

सम्यक्त्व के पाँच लक्षण हैं। वे क्या–क्या हैं, उनको कहते हैं–

(45) 1. उपशम – राग-द्वेष को मिटाकर, स्वरूप की भेंट करना, वह उपशम है।

(46) 2. संवेग – निजधर्म तथा जिनधर्म के प्रति राग, वह संवेग है।

(47) 3. निर्वेद – वैराग्यभाव, वह निर्वेद है।

(48) 4. अनुकम्पा – स्वदया-परदया, वह अनुकम्पा है।

(49) 5. आस्तिक्य – स्वरूप की तथा जिनवचनों की प्रतीति, वह आस्तिक्य है। ये लक्षण अनुभवी के हैं।

अब, छह जैनसार लिखते हैं –

(50) 1. वन्दना – परतीर्थ, परदेव और परचैत्य, उनकी वन्दना न करे।

(51) 2. नमस्कार – उनकी पूजा या नमस्कार न करे।

(52) 3. दान – उनको दान न करे।

(53) 4. अनुप्रयाण – (उनके लिये) अपने खान-पान से अधिक न करे।

(54) 5. आलाप – प्रणतिसहित सम्भाषण, उसको आलाप कहते हैं, वह उनके साथ न करे।

(55) 6. संलाप – गुण-दोष सम्बन्धी पूँछना या बारम्बार भक्ति करना, संलाप है, वह उनकी न करे।

अब, सम्यक्त्व के छह अभङ्ग कारण लिखते हैं। जो सम्यक्त्व के भङ्ग के कारण पाकर न डिगे, उनको अभङ्ग कारण कहते हैं। उनके छह भेद हैं।

(56 से 61) 1. राजा, 2. जनसमुदाय, 3.बलवान, 4. देव,

5. पितादिक बड़ेजन, और 6. माता। ये सम्यक्त्व के अभङ्गपने में छह भय हैं। उनको जानता रहे, पर उनके भय से निजधर्म तथा जिनधर्म को न तजे।

अब, सम्यक्त्व के छह स्थान लिखते हैं –

(62) 1. जीव है – आत्मा, अनुभवसिद्ध है। चेतना में चित्तलीन करे; जीव, अस्तिरूप है, वह केवलज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष है।

(63) 2. नित्य है – द्रव्यार्थिकनय से नित्य है।

(64) 3. कर्ता है – आत्मा, पुण्य-पाप का कर्ता है।

(65) 4. भोक्ता है – आत्मा, पुण्य-पाप का भोक्ता भी है। यह पुण्य-पाप का कर्ता – भोक्तापना, मिथ्यादृष्टि में है। निश्चयनय से आत्मा, उनका कर्ता या भोक्ता नहीं है।

(66) 5. अस्ति, ध्रुव (मोक्ष) है – निर्वाणस्वरूप अस्ति, ध्रुव है। व्यक्त निर्वाण, वह अक्षय मुक्ति है, और

(67) 6. मोक्ष का उपाय है – सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह मोक्ष का उपाय है।

सम्यक्त्व के ये 67 भेद, परमात्मा की प्राप्ति का उपाय हैं।

[सम्यक्त्व तो एक ही प्रकार होता है। उसमें भेद नहीं होते। उससे अविनाभावी उस सम्यग्दृष्टि आत्मा के ज्ञान-चारित्र आदि में क्या-क्या विशेषताएँ आ जाती हैं, उनका यह कथन है। चिद्विलास के अतिरिक्त और किसी शास्त्र में हमारे देखने में ही नहीं आया है। मुमुक्षुओं के लिए अत्यन्त उपयोगी समझकर यहाँ दे दिया है।]

कण्ठस्थ करने योग्य प्रश्नोत्तर —

प्रश्न 230– समयग्दर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा के सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुण की स्वभावपर्याय

को सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह शुद्धभावरूप है; रागरूप नहीं है। आत्मा की एक शुद्धि विशेष का नाम है। तत्त्वार्थश्रद्धान या आत्मश्रद्धान, उस का लक्षण है। यह चौथे से सिद्ध तक सब जीवों में एक जैसा पाया जाता है।

प्रश्न 231- मिथ्यादर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मा के सम्यक्त्व (श्रद्धा) गुण की विभावपर्याय को मिथ्यादर्शन कहते हैं। यह मोहरूप है; आत्मा में कलुषता है। स्व-पर का एकत्व, इसका लक्षण है।

प्रश्न 232- सम्यक्त्व का लक्षण स्वानुभूति क्या है ?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि का मति-श्रुतज्ञान जिस समय सम्पूर्ण परज्ञेयों से हटकर, मात्र आत्मानुभव करने लगता है, उसको स्वात्मानुभूति कहते हैं तथा सम्यग्दर्शन की सहचरता के कारण और बुद्धिपूर्वक राग के अभाव के कारण, इसी को निश्चयसम्यग्दर्शन भी कहते हैं।

प्रश्न 233- सम्यक्त्व का लक्षण श्रद्धा, रुचि, प्रतीति क्या है ?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि का मति-श्रुतज्ञान जब विकल्परूप से नौ तत्त्वों की जानकारी तथा श्रद्धा में प्रवृत्त होता है, उस विकल्प को या विकल्पात्मकज्ञान को सम्यक्त्व का सहचर होने से, व्यवहारसम्यक्त्व कहा जाता है।

प्रश्न 234- सम्यक्त्व का लक्षण चरण, प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्तिक्य, भक्ति, वात्सल्यता, निन्दा, गर्हा क्या है ?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व से अविनाभावी अनन्तानुबन्धी-कषाय का अभाव हो जाता है और उसके अभाव से उसके चारित्र में शुभक्रियाओं में प्रवृत्ति होती है। उस शुभविकल्परूप मन की

प्रवृत्ति, जो चारित्रगुण की विभावपर्याय है, **चरण** है; आरोप से उसे सम्यक्त्व कह देते हैं तथा उसी समय कषायों में मन्दता आ जाती है, उसको **प्रशम** कह देते हैं। पञ्च परमेष्ठी, धर्मात्माओं, रत्नत्रयरूप धर्म तथा धर्म के अङ्गों में जो प्रीति हो जाती है, उसको **संवेग,** भक्ति वात्सल्यता कहते हैं तथा भोगों की इच्छा न होने को **निर्वेद** कहते हैं, स्व-पर की दया को **अनुकम्पा** कहते हैं; नौ पदार्थों में 'है' पने के भाव को **आस्तिक्य** कहते हैं। अपने में रागभाव के रहने तथा उससे होनेवाले बन्ध के पश्चाताप को **निन्दा** कहते हैं तथा उस राग के त्याग के भाव को **गर्हा** कहते हैं। ये सब अनन्तानुबन्धी-कषाय के अभाव होने से चारित्रगुण में विकल्प प्रगट होते हैं। उनको आरोप से सम्यक्त्व या व्यवहारसम्यक्त्व भी कह देते हैं क्योंकि सम्यक्त्व की सहचरता है।

प्रश्न 235- निःशङ्कित अङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर - शङ्का नाम संशय तथा भय का है। इस लोक में धर्म-अधर्मद्रव्य, पुद्गल परमाणु आदि सूक्ष्म पदार्थ, समुद्र, मेरुपर्वत आदि दूरवर्ती पदार्थ तथा तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, राम, रावणादि अन्तरित पदार्थ हैं - इनका वर्णन जैसा सर्वज्ञ वीतरागभाषित आगम में कहा गया है, वह सत्य है या नहीं? अथवा सर्वज्ञदेव ने वस्तु का स्वरूप अनेकान्तात्मक (अनन्त धर्मसहित) कहा है, वह सत्य है या असत्य है? - ऐसी शङ्का उत्पन्न न होना, वह निशङ्कितपना है।

परपदार्थों में आत्मबुद्धि का उत्पन्न होना, पर्यायबुद्धि है, अर्थात् कर्मोदय से मिली हुई शरीरादि सामग्री को ही जीव अपना स्वरूप समझ लेता है। इस अन्यथा बुद्धि से ही सात प्रकार के भय उत्पन्न होते हैं; यथा - इहलोकभय, परलोकभय, वेदनाभय, अरक्षाभय, अगुप्तिभय, मरणभय, अकस्मात्भय।

यहाँ पर कोई शङ्का करे कि भय तो श्रावकों तथा मुनियों के भी होता है क्योंकि भयप्रकृति का उदय, अष्टम गुणस्थान तक है तो भय का अभाव सम्यग्दृष्टि के कैसे हो सकता है ?

उसका समाधान :— सम्यग्दृष्टि के कर्म के उदय का स्वामीपना नहीं है और न वह परद्रव्य द्वारा अपने द्रव्यत्वभाव का नाश मानता है; पर्याय का स्वभाव विनाशीक जानता है; इसलिए चारित्रमोह सम्बन्धी भय होते हुए भी, दर्शनमोह सम्बन्धी भय का तथा तत्त्वार्थश्रद्धान में शङ्का का अभाव होने से वह नि:शङ्क और निर्भय ही है। यद्यपि वर्तमान पीड़ा सहने में अशक्त होने के कारण, भय से भागना आदि इलाज भी करता है, तथापि तत्त्वार्थश्रद्धान से डिगनेरूप दर्शनमोहसम्बन्धी भय का लेश भी उसे उत्पन्न नहीं होता। अपने आत्मज्ञान में नि:शङ्क रहता है।

प्रश्न 236- नि:कांक्षित अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर - विषय-भोगों की अभिलाषा का नाम काँक्षा या वाँछा है। इसके चिह्न ये हैं - पहिले भोगे हुए भोगों की वाँछा, उन भोगों की मुख्य क्रिया की वाँछा, कर्म और कर्म के फल की वाँछा, मिथ्यादृष्टियों को भोगों की प्राप्ति देखकर उनको अपने मन में भले जानना अथवा इन्द्रियों की रुचि के विरुद्ध भोगों में उद्वेगरूप होना, ये सब संसारिक वाँछाएँ हैं। जिस पुरुष के ये न हों, वह निकांक्षित अङ्गयुक्त है। यद्यपि सम्यग्दृष्टि, रोग के उपायवत् पञ्चेन्द्रियों के विषय सेवन करता है तो भी उसको उनसे रुचि नहीं है। ज्ञानी पुरुष, व्रतादि शुभाचरण करता हुआ भी, उनके उदयजनित शुभफलों की वाँछा नहीं करता, यहाँ तक व्रतादि शुभाचरणों को, अशुभ से बचने के लिये आचरण करते हुए भी, हेय जानता है।

प्रश्न 237- निर्विचिकित्सा अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपने को उत्तम गुणयुक्त समझकर, अपने को श्रेष्ठ मानने से दूसरे के प्रति जो तिरस्कार करने की बुद्धि उत्पन्न होती है, उसे विचिकित्सा या ग्लानि कहते हैं। इस दोष के चिह्न ये हैं – जो कोई पुरुष, पाप के उदय से दु:खी हो या असाता के उदय से ग्लान –शरीरयुक्त हो, उसमें ऐसी ग्लानिरूप बुद्धि करना कि 'मैं सुन्दर रूपवान्, सम्पत्तिवान, बुद्धिमान हूँ; यह रङ्क–दीन, कुरूप मेरी बराबरी का नहीं' सम्यग्दृष्टि के ऐसे भाव कदापि नहीं होते। वह विचार करता है कि जीवों की शुभाशुभकर्मों के उदय से अनेक प्रकार विचित्रदशा होती है। कदाचित मेरा भी अशुभ उदय आ जाये तो मेरी भी ऐसी दुर्दशा होना कोई असम्भव नहीं है; इसलिए वह दूसरों को हीनबुद्धि से या ग्लानदृष्टि से नहीं देखता।

प्रश्न 238– अमूढ़दृष्टि अङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर – अतत्त्व में तत्त्व के श्रद्धान करने की बुद्धि को मूढ़बुद्धि कहते हैं। जिनके यह मूढ़दृष्टि नहीं है, वे अमूढ़दृष्टि अङ्गयुक्त सम्यक् –दृष्टि हैं। इसके बाह्य चिह्न यह हैं–मिथ्यादृष्टियों ने पूर्वापर विवेक बिना, गुण–दोष के विचाररहित, अनेक पदार्थों को धर्मरूप वर्णन किये हैं और उनके पूजने से लौकिक तथा पारमार्थिक कार्यों की सिद्धि बतलायी है। अमूढ़दृष्टि का धारक इन सब को असत्य जानता है और उनमें धर्मरूप बुद्धि नहीं करता तथा अनेक प्रकार की लौकिक मूढ़ताओं को निस्सार तथा खोटे फलों की उत्पादक जानकर, व्यर्थ समझता है। कुदेव या अदेव में देवबुद्धि; कुगुरु या अगुरु में गुरुबुद्धि; तथा इनके निमित्त हिंसा करने में धर्म मानना आदि मूढ़दृष्टिपने को मिथ्यात्व समझ दूर ही से तजता है, यही सम्यक्त्वी का अमूढ़दृष्टिपना है। वह सच्चे देव, गुरु, धर्म को ही स्वरूप पहचान कर मानता है।

प्रश्न 239– उपबृंहण अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर – अपनी तथा अन्य जीवों की सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र शक्ति का बढ़ाना, उपबृंहण अङ्ग है। इसको उपगूहन अङ्ग भी कहते हैं। पवित्र जिनधर्म में अज्ञानता अथवा अशक्यता से उत्पन्न हुई निन्दा को, योग्य रीति से दूर करना तथा अपने गुणों को व दूसरे के दोषों को ढांकना, सो उपगूहन अङ्ग है।

प्रश्न 240– स्थितिकरण अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर – आप स्वयं या अन्य पुरुष किसी कषायवश ज्ञान, श्रद्धान, चारित्र से डिगते या छूटते हों तो अपने को व उन्हें दृढ़ तथा स्थिर करना, स्थितिकरण अङ्ग है।

प्रश्न 241– वात्सल्य अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर – अरहन्त, सिद्ध, उनके विम्ब, चैत्यालय, चतुर्विध संघ तथा शास्त्रों में अन्त:करण से अनुराग करना, भक्ति–सेवा करना, वह वात्सल्य है। यह वात्सल्य वैसा ही होना चाहिए, जैसे स्वामी में सेवक की अनुरागपूर्वक भक्ति होती है या गाय का बछड़े में उत्कट अनुराग होता है। यदि इन पर किसी प्रकार के उपसर्ग या सङ्कट आदि आवें तो अपनी शक्तिभर मेटने का यत्न करना चाहिए; शक्ति नहीं छिपाना चाहिए।

प्रश्न 242– प्रभावना अङ्ग किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस तरह से बन सके, उस तरह से अज्ञान अन्धकार को दूर करके जिन शासन के माहात्म्य को प्रगट करना प्रभावना है अथवा अपने आत्मगुणों की उद्योत करना, अर्थात् रत्नत्रय के तेज से अपनी आत्मा का प्रभाव बढ़ाना और पवित्र मोक्षदायक जिनधर्म को दान –तप–विद्या आदि का अतिशय प्रगट करके तन, मन, धन द्वारा

(जैसी अपनी योग्यता हो) सर्व लोक में प्रकाशित करना, वह प्रभावना है।

सम्यग्दर्शन से लाभ

सम्यग्दर्शन से —

(1) आगामी कर्मों का आस्रव-बन्ध रुक जाता है;

(2) पहले बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा होती है;

(3) ज्ञान, सम्यग्ज्ञान हो जाता है और चारित्र, सम्यक्चारित्र हो जाता है;

(4) एकत्वबुद्धि की कलुषता, आत्मा से दूर हो जाती है और शुद्धि की प्रगटता हो जाती है;

(5) दुःख दूर होकर, अतीन्द्रियसुख प्रारम्भ हो जाता है;

(6) लब्धिरूप स्वानुभूति तो हर समय रहती है और कभी -कभी उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति का भी आनन्द मिलता है;

(7) अनादिकालीन पर के कर्तृत्व-भोक्तृत्व का भाव समाप्त हो जाता है। पर के संग्रह की तृष्णा मिट जाती है। परिग्रहरूपी पिशाच से मुख मुड़ जाता है। उपयोग का बहाव, पर से हट कर स्व की ओर होने लगता है;

(8) कर्मचेतना और कर्मफलचेतना के स्वामित्व का नाश होकर, मात्र ज्ञानचेतना का स्वामी हो जाता है / ज्ञानमार्गानुचारी हो जाता है;

(9) परद्रव्यों का, अपने संयोग-वियोग का, राग का, इन्द्रियसुख -दुःख का, कर्मबन्ध का, नौ तत्त्वों का, यहाँ तक कि मोक्ष का भी ज्ञाता-दृष्टा बन जाता है। केवल सामान्य आत्मा में स्वपने की बुद्धि रह जाती है;

(10) इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख में हेयबुद्धि हो जाती है; अतीन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रियसुख की रुचि जागृत हो जाती है;

(11) आत्मप्रत्यक्ष हो जाता है;

(12) सातावेदनीय से प्राप्त सुख सामग्री में उपादेयबुद्धि नष्ट हो जाती है;

(13) विषयसुख और पर में अत्यन्त अरुचिभाव हो जाता है;

(14) मात्र ज्ञानमय भाव उत्पन्न होते हैं; अज्ञानमय भावों की उत्पत्ति का नाश हो जाता है।

(15) धर्म प्रारम्भ होता है। सम्यग्दर्शन पहला धर्म है और चारित्र दूसरा धर्म है। जगत में और धर्म कुछ नहीं है;

(16) मिथ्यात्वसम्बन्धी कर्मों का अनादिकालीन निमित्त -नैमित्तिकसम्बन्ध छूट जाता है;

(17) अनादि पञ्च परावर्तन की श्रृंखला टूट जाती है;

(18) नरक, निर्यञ्च और मनुष्यगति नहीं बँधती। केवल देवगति में ही सहचर रागवश जाता है। यदि पहले बँधी हो तो नरक में प्रथम नरक के प्रथम पाथड़े से आगे नहीं जाता। तिर्यञ्च या मनुष्य, उत्तम भोगभूमि का होता है; सम्यग्दृष्टि मनुष्य, मनुष्यगति में जन्म नहीं लेता। देवगति से मनुष्यगति में आ सकता है;

(19) नियम से उसी भव में या थोड़े से भवों में मोक्ष का नाथ होकर, सब दु:खों से सदा के लिये छुटकारा हो जाता है।

— ऐसे महान पवित्र सम्यग्दर्शन को कोटिश: नमस्कार है।

सम्यग्दर्शन का माहात्म्य

श्री रत्नकरण्डश्रावकाचारजी में कहा है-

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापस्त्रवोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्॥27॥

अर्थात्, यदि (सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से) पाप का निरोध है, अर्थात् आगामी कर्मों का संवर है तो हे जीव! अन्य सम्पदा से तुझे क्या प्रयोजन है? कुछ नहीं। और यदि सम्यग्दर्शन के अभाव में पाप का आस्त्रव है, अर्थात् कर्मों का आगमन है तो भी हे जीव! तुझे अन्य सम्पदा से क्या प्रयोजन है?

भावार्थ - जीव को सबसे अधिक सम्पदाओं की अभिलाषा है तो गुरुदेव समझाते हैं कि हे जीव! यदि सम्यग्दर्शनरूपी महान सम्पदा प्राप्त हो गयी तो अन्य सम्पदाएँ तेरे किस काम की? इस सम्पदा से मुझे आस्त्रव का निरोध होगा और उसके फलस्वरूप महान अतीन्द्रिय सुखरूप मोक्ष मिलेगा। अन्य सम्पदा तो नाशवान हैं, वह तेरे कुछ काम नहीं आतीं। भाई! उनको आत्मा छूता भी नहीं। नीचे की पंक्ति में नास्ति से समझाते हैं कि यदि सम्यक्त्वरूप सच्ची सम्पदा नहीं है और शेष जगत् की सब सम्पदाएँ हैं, महान अहमिन्द्रपद तक प्राप्त है, तो रहो, हे जीव! मिथ्यादर्शनरूपी महान शत्रु से तुझे कर्म बँधता रहेगा और उसके फलस्वरूप नरक-निगोद में चला जायेगा। यह सब सम्पदा यहीं पड़ी रह जायेंगी; इसलिए भाई! इन सम्पदाओं की अभिलाषा छोड़। ये तो जीव को अनेक बार मिली। असली सम्यक्त्वरूपी सम्पदा का प्रयत्न कर, जिसके सामने ये सब हेय हैं।

सम्यग्दर्शन से ज्ञान और चारित्र, सम्यक् हो जाते हैं और उनका गमन भी मोक्षमार्ग की ओर चल देता है, अन्यथा ग्यारह अङ्ग तक ज्ञान और महाव्रत तक व्यर्थ है; केवल बन्ध करनेवाला है। *(देखिये, इसी ग्रन्थ का श्लोक 1537)*। इसलिए संसारसागर से तरने के लिए सम्यग्दर्शन खेवट के समान कहा है।

दर्शनं ज्ञानचारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।
दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते ॥31॥

विद्यावृत्तस्य सभूतिस्थिवृद्धिफलोदया:।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥32॥

अर्थात्, ज्ञान-चारित्र से पहले सम्यग्दर्शन की ही साधना की जाती है क्योंकि वह मोक्षमार्ग में खेवटिया के समान कहा गया है। ज्ञान और चारित्र की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और अतीन्द्रिय सुखरूपी फल, सम्यक्त्व के अभाव में नहीं होते; जैसे, बीज के अभाव में वृक्ष की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल लगना नहीं होता। दंसण मूलो धम्मो - यहाँ सम्यग्दर्शन को बीजवत् कहा है और चारित्र को वृक्षवत् कहा है और अतीन्द्रियसुखरूप मोक्ष, उसका फल कहा है। अत: पहले सम्यग्दर्शन का पुरुषार्थ करना ही सर्वश्रेष्ठ है।

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान्।
अनगारो गृहीश्रेयान् निर्मोहो मोहिनो मुने: ॥33॥

अर्थात्, सम्यग्दृष्टि गृहस्थी, मोक्ष की ओर जा रहा है किन्तु मिथ्यादृष्टि मुनि, संसार (निगोद) की ओर जा रहा है; अत: उस मिथ्यादृष्टि मुनि से वह सम्यग्दृष्टि श्रेष्ठ है।

इससे सम्यक्त्व का माहात्म्य प्रगट ही है। छहढाला में भी कहा है—

प्रथम नरक विन षटभू ज्योतिष, वान भवन षंढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नाहिं, उपजत समकितधारी॥
तीनलोक तिहुं कालमाहिं, नहिं दर्शन सम-सुखकारी।
सकलधरम को मूल यही, इस बिन करनी दु:खकारी।।

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यकता न लहै, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा॥

देखो! केवल एक सम्यग्दर्शन से कितना संसार कट जाता है। किञ्चित् भवों में मोक्ष हो जाता है और तब तक नरक-तिर्यञ्च नहीं होता। केवल देव और वहाँ से कुलीन सम्पत्तिशाली मनुष्य होता है। यदि श्रेणिक की तरह मिथ्यात्व अवस्था में सातवें नरक तक की भी आयु बाँध ली हो, तो कटकर अधिक से अधिक पहले नरक की प्रथम पाथड़े की 84 हजार वर्ष रह जाती है। यदि पशुगति या मनुष्यगति बाँध ली हो, तो उत्तम भोगभूमि की हो जाती है और मोक्षमार्ग तो उसी समय प्रारम्भ हो जाता है। वह वहाँ भी कर्मों की निर्जरा करके मोक्ष का ही पुरुषार्थ करता है।

श्रीकार्तिकेयानुप्रेक्षा में कहा है-

रयणाण महारयणं सव्वजोयाण उत्तमं जोयं।
सिद्धीण महारिद्धी सम्मत्तं सव्वसिद्धियरं॥325॥

अर्थात्, सम्यक्त्व है, सो रत्ननि विषै तो महारत्न है। बहुरि सर्वयोग कहिये वस्तु की सिद्धि करने के उपाय मन्त्रध्यान आदिक, तिनि में उत्तम योग है, जातें सम्यक्त्व से मोक्ष सधै है। बहुरि आणिमादिक ऋद्धि हैं, तिनि में बड़ी ऋद्धि है। बहुत कहा कहिये - सर्वसिद्धि करनेवाला यह सम्यक्त्व ही है। इसमें यह दिखाया है कि सम्यक्त्व से कोई बड़ी सम्पदा जगत् में नहीं है।*

* **नोट** - सम्यग्दर्शन का विशेष माहात्म्य जानने के लिए सोनगढ़ से प्रकाशित सम्यग्दर्शन नामक पुस्तक का अभ्यास करें। सम्यग्दर्शन का माहात्म्य, शब्द-अगोचर है। यह सब निश्चय सम्यग्दर्शन की महिमा है; व्यवहाररूप राग की नहीं। वह तो बन्ध करनेवाला है।

छठवें भाग का सार

सविकल्प-निर्विकल्प चर्चा

प्रश्न 243- सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है या नहीं?

उत्तर - नहीं! आत्मा में एक श्रद्धागुण है। उसकी एक विभावपर्याय होती है, जिसे मिथ्यादर्शन कहते हैं और एक स्वभावपर्याय होती है, जिसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। यह स्वभावपर्याय, चौथे गुणस्थान से सिद्धदशा तक एक प्रकार की ही होती है। सविकल्प -निर्विकल्प सम्यग्दर्शन या व्यवहार-निश्चय सम्यग्दर्शन नाम की इसमें कोई पर्याय ही नहीं होती; अत: सम्यग्दर्शन को दो प्रकार का मानना भूल है।

प्रश्न 244- विकल्प शब्द के क्या-क्या अर्थ होते हैं?

उत्तर - (1) विकल्प शब्द का एक अर्थ तो साकार है। यह ज्ञान का लक्षण है। इस अपेक्षा सभी ज्ञान, सविकल्पक कहलाते हैं [और दर्शन निर्विकल्प कहलाता है]।

(2) विकल्प शब्द का दूसरा अर्थ, उपयोग संक्रान्ति है। इस अपेक्षा छद्मस्थ के चारों ज्ञान, सविकल्प हैं; केवलज्ञान निर्विकल्प है।

(3) एक पदार्थ से, दूसरे पदार्थ पर उपयोग के परिवर्तन को भी विकल्प कहते हैं। इस अपेक्षा उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति के समय तो छद्मस्थ का ज्ञान निर्विकल्प है क्योंकि उसमें उपयोग एक ही आत्मपदार्थ पर रहता है, पदार्थान्तर पर नहीं जाता; शेष समय में

ज्ञेयपरिवर्तन किया करता है, इसलिए सविकल्प है। इन तीन अपेक्षाओं से ज्ञान को सविकल्प कहते हैं।

(4) विकल्प का चौथा अर्थ राग है। यह चारित्रगुण का विभाव-परिणमन है। चारित्रगुण के रागसहित परिणमन को सविकल्प या सरागचारित्र कहते हैं, जो दसवें तक है और चारित्रगुण के विकल्परहित परिणमन को निर्विकल्प या वीतरागचारित्र कहते हैं, जो ग्यारहवें -बारहवें गुणस्थान में हैं।

(5) विकल्प शब्द का अर्थ, बुद्धिपूर्वक राग है, जो पाया तो पहले से छठवें तक जाता है परन्तु यहाँ मोक्षमार्ग का प्रकरण होने से चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान का राग ही ग्रहण किया गया है।

इन पाँच अर्थों में विकल्प शब्द का प्रयोग होता है। सम्यग्दर्शन को विकल्पात्मक कहना भारी भूल है।

प्रश्न 245- केवलियों का ज्ञान, निर्विकल्प किस प्रकार है?

उत्तर - छद्मस्थों के चारों ज्ञान, सविकल्प, अर्थात् उपयोगसंक्रान्ति सहित हैं और केवली का ज्ञान, निर्विकल्प, अर्थात् उपयोगसंक्रान्ति रहित है - इस अपेक्षा केवलज्ञान, निर्विकल्प है।

प्रश्न 246- केवलज्ञान, सविकल्प किस प्रकार है?

उत्तर - [देखनेवाले] दर्शन का निज लक्षण निर्विकल्प, अर्थात् ज्ञेयाकाररहित है और ज्ञान का निज लक्षण, सविकल्प, अर्थात् ज्ञेयाकार -सहित है। अपने इस लक्षण से प्रत्येक ज्ञान, सविकल्प है। केवलज्ञान में भी स्व-पर ज्ञेयाकारपना रहता है; अतः वह भी सविकल्प है।

प्रश्न 247- छद्मस्थ का ज्ञान, सविकल्प किस प्रकार है और निर्विकल्प किस प्रकार है?

उत्तर - केवलज्ञान, निर्विकल्प, अर्थात् उपयोगसंक्रान्ति रहित है

और छद्मस्थ का ज्ञान, सविकल्प, अर्थात् उपयोगसंक्रान्ति सहित है – इस अपेक्षा तो छद्मस्थों के चारों ज्ञान, सविकल्प हैं। दूसरे, उपयोगात्मक स्वात्मानुभूति में उपयोग, क्योंकि एक ही निज शुद्ध आत्मा में रहता है और अर्थ से अर्थान्तर का परिवर्तन [ज्ञेयपरिवर्तन] नहीं करता – इस अपेक्षा स्वोपयोग के समय में तो छद्मस्थों का ज्ञान, निर्विकल्प है और अन्य समय में सविकल्प है।

प्रश्न 248– ज्ञान, सविकल्प है या नहीं ?

उत्तर – ज्ञान, एक तो अपने ज्ञेयाकाररूप लक्षण से सविकल्प है, दूसरे उपयोगसंक्रान्ति लक्षण से सविकल्प है, तीसरे ज्ञेयपरिवर्तन से सविकल्प है। परन्तु 'ज्ञान, रागरूप ही हो जाता है' इस अपेक्षा सविकल्प कभी नहीं है (क्योंकि कभी रागरूप होता ही नहीं है।)

प्रश्न 249– सम्यग्दर्शन, सविकल्प है या नहीं ?

उत्तर – सम्यग्दर्शन तो सम्यक्त्वगुण (श्रद्धागुण) का निर्विकल्प [शुद्धभावरूप] परिणमन है। चौथे गुणस्थान से सिद्धदशा तक एकरूप है। वह किसी प्रकार भी सविकल्प नहीं है क्योंकि यह कभी रागरूप नहीं होता है।

प्रश्न 250– चारित्र, सविकल्प है या नहीं ?

उत्तर – पहले गुणस्थान में तो चारित्रगुण का परिणमन, सर्वथा रागरूप ही है; अतः वह तो सविकल्प ही है। चौथे गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी अंश को छोड़कर, चारित्र का शेष अंश सविकल्प है –रागरूप है। पाँचवें–छठवें गुणस्थान में जितना बुद्धि–अबुद्धिपूर्वक राग है, उतना चारित्र का परिणमन विकल्परूप है। सातवें से दसवें गुणस्थान तक जितना अबुद्धिपूर्वक राग है, उतना चारित्र का परिणमन विकल्परूप है – चारित्र वास्तव में सविकल्प है, परन्तु जहाँ जितना चारित्र, रागरहित है, वहाँ उतना वह भी निर्विकल्प है। चारित्र भी

सर्वथा सविकल्प हो–यह बात नहीं है। स्वभाव से तो चारित्र भी निर्विकल्प ही है और जितना मोक्षमार्गरूप [संवर–निर्जरारूप] है, उतना वह भी निर्विकल्प ही है; जितना जहाँ रागरूप परिणत है, वह निश्चय से सविकल्पक ही है।

प्रश्न 251– चौथे, पाँचवे, छठवें गुणस्थान में तीनों गुणों की वास्तविक परिस्थिति बताओ ?

उत्तर – इन गुणों में सम्यग्दर्शन तो श्रद्धागुण की शुद्धपर्याय है, जो रागरहित निर्विकल्प है। सम्यग्ज्ञान, ज्ञानगुण के क्षयोपशमरूप है; इसका कार्य केवल स्व पर को जानना है, राग से इसका भी कुछ सम्बन्ध नहीं है। चारित्र में जितनी स्वरूपस्थिरता है, उतना तो शुद्ध अंश है और जितना राग है, उतनी मलिनता है; अत: चारित्र को यहाँ सराग या सविकल्प कहते हैं।

प्रश्न 252– सातवें से बारहवें गुणस्थान तक तीनों गुणों की वास्तविक परिस्थिति क्या है ?

उत्तर – श्रद्धागुण की सम्यग्दर्शनरूप पर्याय तो वैसी ही शुद्ध है, जैसी छठवें तक थी, उसमें कोई अन्तर नहीं है। ज्ञान है तो क्षयोपशमरूप, परन्तु बुद्धिपूर्वक सब का सब उपयोग स्वज्ञेय को ही जानता है; राग से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। चारित्र में बुद्धिपूर्वक राग तो समाप्त हो चुका। अबुद्धिपूर्वक का कुछ राग, दसवें तक है। शेष सब शुद्धपरिणमन है और बारहवें में राग नाश होकर चारित्र, पूर्ण वीतराग है।

प्रश्न 253– यहाँ सराग सम्यग्दृष्टि से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – जिस सम्यग्दर्शन के साथ बुद्धिपूर्वक चारित्र का राग वर्तता है, उसके धारी चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थानवर्ती जीवों को यहाँ सविकल्प या सराग सम्यग्दृष्टि कहा है।

प्रश्न 254- यहाँ वीतराग सम्यग्दृष्टि से क्या अभिप्राय है ?

उत्तर - जिस सम्यग्दर्शन के साथ बुद्धिपूर्वक चारित्र का राग नहीं वर्तता है, उसके धारी सातवें आदि गुणस्थानवर्ती जीवों को यहाँ निर्विकल्प या वीतराग सम्यग्दृष्टि कहा गया है।

ज्ञानचेतना अधिकार

प्रश्न 255- ज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर - सम्यक्त्व से अविनाभूत मति-श्रुतज्ञानावरण के विशिष्ट क्षयोपशम से होनेवाला ज्ञान का उघाड़ और उस उघाड़ के रागरहित शुद्धपरिणमन को ज्ञानचेतना कहते हैं अथवा ज्ञान के ज्ञानरूप रहने को [रागरूप न होने को] ज्ञानचेतना कहते हैं अथवा ज्ञान के ज्ञानरूप वेदन को ज्ञानचेतना कहते हैं।

प्रश्न 256- ज्ञानेचतना के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो - (1) लब्धिरूप ज्ञानचेतना, और (2) उपयोगरूप ज्ञानचेतना।

प्रश्न 257- लब्धिरूप ज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर - सम्यक्त्व से अविनाभूत ज्ञानचेतना को आवरण करनेवाले मति-श्रुतज्ञानावरण के विशिष्ट क्षयोपशम को लब्धिरूप ज्ञानचेतना कहते हैं। वह ज्ञान के उघाड़रूप है।

प्रश्न 258- उपयोगरूप ज्ञानचेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर - लब्धिरूप ज्ञानचेतना की प्राप्ति होने पर, जब ज्ञानी अपने उपयोग को सब परज्ञेयों से हटाकर, केवल निजशुद्ध आत्मा को संवेदन करने के लिए स्व से जोड़ता है, उस समय उपयोगात्मक ज्ञानचेतना होती है। यह ज्ञान के स्व में उपयोगरूप है।

प्रश्न 259- लब्धिरूप ज्ञानचेतना किन के पायी जाती है ?

उत्तर – चौथे से बारहवें गुणस्थान तक सभी जीवों के हर समय पायी जाती है।

प्रश्न 260– उपयोगरूप ज्ञानचेतना किन के पायी जाती है ?

उत्तर – चौथे, पाँचवे, छठवेंवालों के कभी–कभी पायी जाती है और सातवें से निरन्तर अखण्डधारारूप से पायी जाती है।

प्रश्न 261– संवर–निर्जरा, ज्ञानचेतना के आधीन है या सम्यक्त्व के आधीन है ?

उत्तर – ज्ञानचेतना तो ज्ञान की पर्याय है। ज्ञान का, बन्ध–मोक्ष से कोई सम्बन्ध नहीं है। संवर–निर्जरा की व्याप्ति तो सम्यक्त्व से है; अतः वे सम्यक्त्व के आधीन हैं, चाहे उपयोग स्व में रहे या पर में जावे।

व्याप्ति अधिकार

प्रश्न 262– व्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर – सहचर्य नियम को व्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 263– व्याप्ति के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दो – (1) समव्याप्ति, और (2) विषमव्याप्ति।

प्रश्न 264– समव्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर – दोनों ओर के सहचर्य नियम को समव्याप्ति कहते हैं [अर्थात्, किन्हीं दो चीजों के सदा साथ रहने को और कभी जुदा न रहने को समव्याप्ति कहते हैं।] जैसे, सम्यक्त्व और दर्शनमोह का अनुदय। इन दो पदार्थों में कभी आपस में व्यभिचार नहीं मिलता, अर्थात् एक मिले और दूसरा न मिले – ऐसा कभी नहीं होता, दोनों इकट्ठे ही मिलते हैं; इसलिए इनमें समव्याप्ति है। समव्याप्ति परस्पर में दोनों की होती है। इसको इस प्रकार बोलते हैं–जहाँ–जहाँ सम्यक्त्व

है, वहाँ-वहाँ दर्शनमोह का अनुदय है और जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व नहीं है, वहाँ-वहाँ दर्शनमोह का अनुदय भी नहीं है तथा जहाँ-जहाँ दर्शनमोह का अनुदय है, वहाँ-वहाँ सम्यक्त्व है और जहाँ-जहाँ दर्शनमोह का अनुदय नहीं है, वहाँ-वहाँ सम्यक्त्व भी नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन और ज्ञानचेतनावरण कर्म के क्षयोपशम की [अर्थात्, लब्धिरूप ज्ञानचेतना की] समव्याप्ति है। इसके जानने से यह लाभ है कि एक का अस्तित्व, दूसरे के अस्तित्व को और एक का नास्तित्त्व, दूसरे के नास्तित्त्व को सिद्ध कर देता है।

प्रश्न 265- क्या समव्याप्ति में एक पदार्थ, दूसरे पदार्थ के आधीन है ?

उत्तर - कदापि नहीं! एक का परिणमन या मौजूदगी, दूसरे के आधीन बिल्कुल नहीं है; दोनों स्वतन्त्र अपने-अपने स्वकाल की योग्यता से परिणमन करते हैं। व्याप्ति का यह अर्थ नहीं है कि एक पदार्थ, दूसरे को लाता हो या दूसरे को उसके कारण से आना पड़ता हो या एक के कारण, दूसरे को अपनी वैसी अवस्था करनी पड़ती हो, कदापि नहीं। व्याप्ति तो केवल यह बताती है कि स्वत: ऐसा प्राकृतिक नियम है कि दोनों साथ रहते हैं - एक हो और दूसरा न हो - ऐसा कदापि नहीं होता। बस, इससे अधिक और व्याप्ति से कुछ सिद्ध नहीं किया जाता।

प्रश्न 266- विषमव्याप्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर - एक तरफ के सहचर्य नियम को विषय व्याप्ति कहते हैं [अर्थात्, जो व्याप्ति एक तरफ तो पायी जावे और दूसरी तरफ न पायी जाए, उसे विषयव्याप्ति कहते हैं।] जैसे, जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ आग है - यह तो घट गया, परन्तु जहाँ-जहाँ धूम नहीं है, वहाँ-वहाँ आग भी नहीं है - यह नहीं घटा क्योंकि बिना धूम भी आग होती है; इसलिए धूम और अग्नि में समव्याप्ति नहीं, किन्तु

विषयव्याप्ति है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन और स्वोपयोग में, राग और ज्ञानावरण में, लब्धि और स्वोपयोग में - विषमव्याप्ति है। जिस ओर से यह व्याप्ति घट जाती है, उनका तो परस्पर सहचर्य सिद्ध हो जाता है, किन्तु जिस ओर से नहीं घटती, उनका सहचर्य सिद्ध नहीं होता- यह इससे लाभ है।

प्रश्न 267- सम्यक्त्व और ज्ञानचेतनावरण के क्षयोपशम में कौन सी व्याप्ति है ?

उत्तर - समव्याप्ति है क्योंकि सदा इकट्ठे रहते हैं। एक हो और दूसरा न हो-ऐसा कभी होता ही नहीं है। जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व है, वहाँ-वहाँ ज्ञानचेतनावरण का क्षयोपशम भी है और जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व नहीं है, वहाँ-वहाँ ज्ञानचेतनावरण का क्षयोपशम भी नहीं है; जहाँ-जहाँ ज्ञानचेतनावरण का क्षयोपशम नहीं है, वहाँ-वहाँ सम्यक्त्व भी नहीं है; इसलिए सम्यक्त्व का अस्तित्व, लब्धिरूप ज्ञानचेतना के अस्तित्व को सिद्ध करता है। इससे जो सम्यग्दृष्टियों के ज्ञानचेतना नहीं मानते-उनका खण्डन हो जाता है।

प्रश्न 268- सम्यक्त्व और उपयोगरूप ज्ञानचेतना में कौनसी व्याप्ति है ?

उत्तर - विषमव्याप्ति है क्योंकि जहाँ-जहाँ स्वोपयोग है, वहाँ -वहाँ तो सम्यक्त्व है, परन्तु जहाँ-जहाँ स्वोपयोग नहीं है, वहाँ -वहाँ सम्यक्त्व हो अथवा न भी हो-कोई नियम नहीं है। स्वोपयोग के बिना भी सम्यक्त्व रहता है अथवा इसको यूँ भी कह सकते हैं कि जहाँ -जहाँ सम्यक्त्व नहीं है, वहाँ-वहाँ तो स्वोपयोग भी नहीं है, परन्तु जहाँ-जहाँ सम्यक्त्व है, वहाँ-वहाँ स्वोपयोग हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता-कोई नियम नहीं है। इनमें एक तरफ की व्याप्ति तो है परन्तु दूसरे तरफ की नहीं है; इसलिए यह विषमव्याप्ति है। इससे एक तो यह सिद्ध किया जाता है कि शुद्धोपयोग, सम्यग्दृष्टियों

के ही होता है, और दूसरे यह सिद्ध किया जाता है कि सब सम्यग्दृष्टियों के हर समय स्वोपयोग नहीं रहता।

प्रश्न 269- लब्धि और उपयोगरूप ज्ञानचेतना में कौन-सी व्याप्ति है ?

उत्तर - विषमव्याप्ति है क्योंकि जहाँ-जहाँ उपयोग है, वहाँ-वहाँ तो लब्धि है परन्तु जहाँ-जहाँ उपयोग नहीं है, वहाँ-वहाँ लब्धि हो भी सकती है अथवा नहीं भी हो सकती अथवा इसको यूँ भी कह सकते हैं कि जहाँ-जहाँ लब्धि नहीं है, वहाँ-वहाँ तो उपयोग भी नहीं है परन्तु जहाँ-जहाँ लब्धि है, वहाँ-वहाँ उपयोग हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है-कुछ नियम नहीं है। इनमें एक तरफ व्याप्ति है परन्तु दूसरी तरफ नहीं है; इसलिए विषमव्याप्ति है। इससे एक तो यह सिद्ध किया जाता है कि लब्धि, कारण है; स्वपयोग, कार्य है। अत: स्वोपयोगवाले के लब्धि अवश्य है। दूसरा यह सिद्ध किया जाता है कि ज्ञानचेतना प्राप्त जीव, अपना उपयोग हर समय स्व में ही रखता हो, पर में न ले जाता हो-यह बात नहीं है। ज्ञानचेतनालब्धि बनी रहती है और उपयोग, पर को जानने में भी चला जाता है।

प्रश्न 270- उपयोग और बन्ध में कौन-सी व्याप्ति है ?

उत्तर - कोई भी नहीं है क्योंकि जहाँ-जहाँ उपयोग है, वहाँ-वहाँ बन्ध होना चाहिए (किन्तु ऐसा नहीं है।) सिद्ध में उपयोग तो है परन्तु बन्ध बिल्कुल नहीं है। जहाँ-जहाँ उपयोग नहीं है, वहाँ-वहाँ बन्ध भी नहीं है - यह भी नहीं घटा, क्योंकि विग्रहगति में उपयोग नहीं है, परन्तु बन्ध है। अब दूसरी ओर से देखिए - जहाँ-जहाँ बन्ध है, वहाँ-वहाँ उपयोग चाहिए लेकिन विग्रहगति में बन्ध है परन्तु उपयोग नहीं है। जहाँ-जहाँ बन्ध नहीं है, वहाँ-वहाँ उपयोग

नहीं है – यह भी नहीं घटा क्योंकि सिद्ध में बन्ध बिल्कुल नहीं है परन्तु उपयोग सारा स्व में है।

प्रश्न 271– राग और ज्ञानावरण में कौन सी व्याप्ति है?

उत्तर – विषमव्याप्ति है क्योंकि जहाँ–जहाँ राग है, वहाँ–वहाँ ज्ञानावरण है, यह तो ठीक, परन्तु जहाँ–जहाँ ज्ञानावरण है, वहाँ – वहाँ राग भी अवश्य हो–यह कोई नियम नहीं है। हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है क्योंकि ग्यारहवें, बारहवें गुणस्थान में ज्ञानावरण तो है परन्तु राग नहीं है। जहाँ–जहाँ राग है, वहाँ–वहाँ ज्ञानावरण है, इससे राग का तो ज्ञानावरण के साथ पक्का सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है, परन्तु जहाँ–जहाँ ज्ञानावरण है, वहाँ–वहाँ राग हो–यह सिद्ध न होने से ज्ञानावरण का राग से कुछ सम्बन्ध सिद्ध नहीं होता।

प्रश्न 272– राग और दर्शनमोह की कौन–सी व्याप्ति है?

उत्तर – कोई नहीं, क्योंकि न राग से दर्शनमोह बँधता है और न दर्शनमोह के उदय से राग होता है। राग की व्याप्ति, चारित्रमोह से है; दर्शनमोह से नहीं। इससे यह सिद्ध किया जाता है कि सम्यग्दर्शन, सविकल्प नहीं। सम्यग्दृष्टि के चारित्र में कृष्णलेश्या रहते हुए भी, शुद्धसम्यक्त्व बना ही रहता है [यहाँ राग से आशय, केवल चारित्रमोह सम्बन्धी राग से है।]

प्रश्न 273– अन्वय-व्यतिरेक किसे कहते हैं?

उत्तर – जिसके होने पर जो हो, उसको अन्वय कहते हैं और जिसके नहीं होने पर जो न हो, उसको व्यतिरेक कहते हैं — जैसे जहाँ–जहाँ सम्यक्त्व है, वहाँ–वहाँ दर्शनमोह का अनुदय है, यह अन्वय है और जहाँ–जहाँ दर्शनमोह का अनुदय नहीं है, वहाँ–वहाँ सम्यक्त्व भी नहीं है, यह व्यतिरेक है।

प्रश्न 274– व्याप्ति के जानने से क्या लाभ है?

उत्तर – इससे पदार्थों के सहचर्यसम्बन्ध का पता चल जाता है कि किन पदार्थों की किन पदार्थों के साथ सहचरता है या नहीं ? यह अविनाभाव की कसौटी है। इससे परख कर देख लेते हैं। इससे एक पदार्थ की अस्ति या नास्ति से दूसरे पदार्थ की अस्ति या नास्ति का ज्ञान कर लिया जाता है।

*[**नोट** – न्यायशास्त्र में अनुमान प्रयोग में साधन के सद्भाव में साध्य के सद्भाव और साध्य के अभाव में, साधन के अभाव को अविनाभाव या व्याप्ति कहते है। वहाँ समव्याप्ति या विषमव्याप्ति नहीं होती। व्याप्ति होती है या अव्याप्ति होती है। यह विषय उससे भिन्न जाति का है। यह आध्यात्मिक विषय है। वहाँ धूम और अग्नि की व्याप्ति है। यहाँ धूम और अग्नि को विषमव्याप्ति है; इसलिए इस विषय को उस न्याय के ढंग से समझने का प्रयत्न न करें किन्तु जिस ढंग से यहाँ निरुपण किया गया है, उसी ढंग से समझें तो कल्याण होगा। वहाँ साधन द्वारा साध्य के सिद्ध करने का उद्देश्य है और यहाँ एक पदार्थ के अस्तित्व या नास्तित्व से, दूसरे पदार्थ के अस्तित्व या नास्तित्व को सिद्ध करने का उद्देश्य है।]*

विविध प्रश्नोत्तर

प्रश्न 275– उपयोगसंक्रान्ति के पर्यायवाची शब्द बताओ ?

उत्तर – उपयोगसंक्रान्ति, पुनर्वृत्ति, क्रमवर्तित्व, विकल्प, ज्ञप्ति परिवर्तन, उपयोग का बदलना।

प्रश्न 276– क्षायोपशमिकज्ञान और क्षायिकज्ञान में क्या अन्तर है ?

उत्तर – (1) क्षायोपशमिकज्ञान में उपयोगसंक्रान्ति होती ही है, (2) वह क्रमवर्ती ही है। (3) क्षायिकज्ञान में उपयोगसंक्रान्ति नहीं ही होती है, (4) वह अक्रमवर्ती ही है।

प्रश्न 277– गुण क्या–क्या है ?

उत्तर – सम्यक्त्व की उत्पत्ति होना, वृद्धि होना, निर्जरा होना, संवर होना, संवर–निर्जरा की वृद्धि होना, पुण्य बँधना, पुण्य का उत्कर्षण होना, पाप का अपकर्षण होना, पाप का पुण्यरूप संक्रमण [बदलना], गुण है।

प्रश्न 278– दोष क्या–क्या है ?

उत्तर – सम्यक्त्व का सर्वथा नाश या आँशिक हानि होना, संवर–निर्जरा का सर्वथा नाश या हानि होना, पाप का बँधना, पाप का उत्कर्षण होना, पुण्य का अपकर्षण होना, पुण्यप्रकृति का पापप्रकृति में बदलना, दोष है।

प्रश्न 279– राग और उपयोग में किन कारणों से भिन्नता है ?

उत्तर – राग, औदयिकभाव है; उपयोग, क्षायोपशमिकभाव है। राग, चारित्रगुण की विपरीत पर्याय है; उपयोग, ज्ञानगुण की क्षयोपशमरूप पर्याय है। राग, चरित्रमोह के उदय से होता है; उपयोग, ज्ञानावरण के क्षयोपशम से होता है। राग का अनुभव मलीनतारूप है, ज्ञान का अनुभव स्वभावरूप है [जाननेरूप] है। राग से बन्ध ही होता है; उपयोग से बन्ध नहीं ही होता है; इसलिए प्रत्येक में दोनों स्वतन्त्ररूप से पाये जाते हैं, अर्थात् हीनाधिक पाये जाते हैं या ज्ञान तो पाया जाता है परन्तु राग नहीं पाया जाता। ये दृष्टान्त इनकी भिन्नता को सिद्ध करते हैं।

सातवें भाग का सार

* पञ्चभाव – प्रश्नोत्तर

प्रश्न 280– आत्मा के असाधारणभाव कितने हैं ?

उत्तर – पाँच–औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक। भाव तो असंख्यात लोकप्रमाण हैं, परन्तु ज्ञानियों ने जाति के अपेक्षा बहुत मोटेरूप से इन पाँच भेदों में विभक्त कर दिये हैं। इनके अवान्तर भेद तिरेपन हैं।

प्रश्न 281– असाधारणभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर – असाधारण का अर्थ तो यह है कि ये भाव, आत्मा में ही पाये जाते हैं; अन्य पाँच द्रव्यों में नहीं पाये जाते। आत्मा में किस –किस जाति के भाव–परिणाम–अवस्थाएँ होती हैं–यह इससे ख्याल में आ जाता है और इनके द्वारा जीव को जीव का स्पष्ट ज्ञान साङ्गोपाङ्ग द्रव्य–गुण–पर्याय सहित हो जाता है। इन भावों के जानने से ज्ञान में बड़ी स्पष्टता आ जाती है। अच्छे बुरे [हानिकारक अथवा लाभदायक] परिणामों का ज्ञान होता है। जैसे, मोह को अनुसरण करके होनेवाला औदयिकभाव हानिकारक तथा दुःखरूप है। मोह के अभाव से होनेवाले औपशमिक–क्षायोपशमिकभाव, मोक्षमार्गरूप हैं तथा क्षायिकभाव, मोक्षरूप है। क्षायिक ज्ञान–दर्शन–वीर्य जीव का पूर्ण स्वभाव है तथा क्षायोपशमिक, एकदेश स्वभाव है। विपरीत ज्ञान, विभावरूप है – इत्यादिक।

---

* पञ्च भाव के सन्दर्भ में इसी पुस्तक का चौथा प्रकरण अवश्य पढ़ना चाहिए।

प्रश्न 282- क्षायिकभाव किसे कहते हैं तथा उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर - कर्म के क्षय को अनुसरण करके होनेवाले भाव को क्षायिकभाव कहते हैं। उसके 9 भेद हैं। (1) क्षायिकसम्यक्त्व, (2)चारित्र, (3) ज्ञान, (4) दर्शन, (5) दान, (6) लाभ, (7) भोग, (8) उपभोग, और (9) वीर्य। इनको नौ क्षायिक लब्धियाँ भी कहते हैं। ये भाव तेरहवें गुणस्थान के प्रारम्भ में प्रगट होकर, सिद्ध में अनन्त काल तक धाराप्रवाहरूप से प्रत्येक समय होते रहते हैं। नौ भिन्न-भिन्न अनुजीवीगुणों की एक समय की नौ क्षायिक पर्यायों के यह नाम हैं। सादि-अनन्तभाव हैं।

प्रश्न 283- औपशमिकभाव किसे कहते हैं और उसके कितने भेद हैं ?

उत्तर - कर्म के उपशम को अनुसरण करके होनेवाले भाव को औपशमिकभाव कहते हैं। इसके दो भेद हैं। (1) औपशमिक -सम्यक्त्व, (2) औपशमिकचारित्र। वह श्रद्धा और चारित्रगुण का एक समय का क्षणिक स्वभावपरिणमन है। सादि-सान्तभाव है। औपशमिकसम्यक्त्व तो चौथे से सातवें तक रह सकता है और पूर्ण औपशमिकचारित्र ग्यारहवें गुणस्थान में होता है।

प्रश्न 284- क्षायोपशमिकभाव किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं ?

उत्तर - कर्म के क्षयोपशम को अनुसरण करके होनेवाले भाव को क्षायोपशमिकभाव कहते हैं। इसके अठारह भेद हैं। चार ज्ञान [मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय], तीन अज्ञान [कुमति, कुश्रुत, विभङ्ग], तीन दर्शन [चक्षुः, अचक्षु, अवधि], पाँच क्षायोपशमिक [दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य], एक क्षायोपशमिक सम्यक्त्व,

एक क्षायोपशमिक चारित्र, एक संयमासंयम। ये आत्मा के 18 पर्यायों के नाम हैं। सादि-सान्तभाव हैं। इनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान तो ज्ञानगुण की एक समय की पर्यायें हैं। तीन दर्शन, दर्शनगुण की एक समय की पर्याय हैं। दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य ये आत्मा में पाँच स्वतन्त्र गुण हैं। प्रत्येक भाव अपने-अपने गुण की एक समय की पर्याय है। क्षयोपशमिकसम्यक्त्व, श्रद्धागुण की एक समय की स्वभावपर्याय है। क्षायोपशमिकसंयम और संयमासंयम, चारित्रगुण की एक समय की आंशिक स्वभावपर्याय है। चार ज्ञान तो चौथे से बारहवें तक पाये जाते हैं। तीन अज्ञान, पहले तीन गुणस्थानों में हैं। तीन दर्शन और पाँच दानादिक पहले से बारहवें तक पाये जाते हैं। क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, चौथे से सातवें तक पाया जाता है। क्षायोपशमिकचारित्र छठवें से दसवें तक है और संयमासंयम, केवल पाँचवें गुणस्थान में पाया जाता है।

प्रश्न 285- औदयिकभाव किसे कहते हैं और इसके कितने भेद है तथा उनमें किस-किस कर्म का निमित्त है ?

उत्तर - कर्म के उदय को अनुसरण करके होनेवाले भाव को औदयिकभाव कहते हैं। इसके 21 भेद हैं। चार गतिभाव, चार कषायभाव, तीन लिङ्गभाव, एक मिथ्यादर्शनभाव, एक अज्ञानभाव, एक असंयमभाव, एक असिद्धत्वभाव, छह लेश्याभाव। गतिभाव में गतिनामा नामकर्म के उदय का सहचर दर्शनमोह तथा चारित्रमोह का उदय निमित्त है। कषाय, लिङ्ग, असंयम में चारित्रमोह का उदय निमित्त है। अज्ञानभाव में ज्ञानावरण का उदय अंश निमित्त है। मिथ्यादर्शन में दर्शनमोह का उदय निमित्त है। असिद्धत्वभाव में आठों कर्मों का उदय निमित्त है। लेश्याभाव में योग का सहचर और मोहनीय निमित्त है। ये सब दुःखरूप हैं। अज्ञानभाव, बन्ध का कारण नहीं है-शेष सब बन्ध के कारण हैं। आत्मा का बुरा इन औदयिकभावों से ही है। ये आत्मा के एक समय के परिणमनरूप

भाव हैं। पर्यायें हैं। सब क्षणिक नाशवान हैं। सादि सान्त हैं। (प्रवाह की अपेक्षा अनादि-सान्त हैं।)

प्रश्न 286- पारिणामिकभाव किसे कहते हैं और इसके कितने भेद हैं?

उत्तर - जो भाव, कर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम या उदय की अपेक्षा न रखता हुआ जीव का स्वभावमात्र हो, उसे पारिणामिकभाव कहते हैं। इसके तीन भेद हैं। (1) जीवत्व, (2) भव्यत्व, (3) अभव्यत्व। जीवत्वभाव, द्रव्यरूप है। भव्यत्व-अभव्यत्वभाव, गुणरूप है। भव्य जीव में भव्यत्वगुण का सम्यक्त्व होने से पहले अपक्व परिणमन चलता है। चौथे से सिद्ध तक पक्व परिणमन है। अभव्य जीव में अभव्यत्वगुण का अभव्यत्व परिणमन होता है। जीवत्वभाव, ज्ञायकभाव, पारिणामिकभाव, परमपारिणामिकभाव, कारणशुद्धपर्याय आदि अनेक नामों से कहा जाता है। यह सब जीवों में है। भव्य-अभव्य में से एक जीव में कोई एक होता है। भव्य में भव्यत्व, अभव्य में अभव्यत्व। भव्यत्व-अभव्यत्व की अपेक्षा जीव ही मूल में दो प्रकार के हैं। अभव्य, संसाररुचि को कभी नहीं छोड़ता है। भव्य, स्वकाल की योग्यतानुसार पुरुषार्थ करके संसाररुचि का नाशकर मोक्ष पाता है परन्तु सब भव्य, मोक्ष प्राप्त करें-ऐसा नियम नहीं है। जो पुरुषार्थ करता है, वह प्राप्त कर लेता है। योग्यता सब भव्यों में है। अभव्य में पर्यायदृष्टि से योग्यता नहीं है; द्रव्यस्वभाव तो उसका भी मोक्षरूप है।

प्रश्न 287- कर्म किसे कहते हैं? वे कितने हैं?

उत्तर - आत्मस्वभाव से प्रतिपक्षी स्वभाव को धारण करनेवाले पुद्गल कार्मणस्कन्धवर्गणाओं को कर्म कहते हैं। वे आठ हैं। (1) ज्ञानावरण, (2) दर्शनावरण, (3) वेदनीय, (4) मोहनीय, (5) आयु, (6) नाम, (7) गोत्र, और (8)अन्तराय।

प्रश्न 288- कर्म के मूल भेद कितने हैं और क्यों ?

उत्तर - कर्म के मूल दो भेद हैं। (1) घातिकर्म, (2) अघाति-कर्म। (1) जो अनुजीवीगुणों के घात में निमित्तमात्र कारण हैं, उन्हें घातिकर्म कहते हैं। (2) जो अनुजीवीगुणों के घात में निमित्त नहीं है अथवा आत्मा को परवस्तु के संयोग में निमित्तमात्र कारण हैं अथवा आत्मा के प्रतिजीवीगुणों के घात में निमित्तमात्र कारण हैं, उन्हें घातिकर्म कहते हैं। घातिकर्म चार हैं- (1) ज्ञानावरण, (2) दर्शनावरण, (3) मोहनीय, और (4) अन्तराय। शेष चार अघाति हैं।

प्रश्न 289- कर्मों में उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम में से कौन-कौन अवस्था होती है ?

उत्तर - अघातिकर्मों में दो ही अवस्था होती है। उदय और क्षय। चौदहवें तक इनका उदय रहता है और चौदहवें के अन्त में अत्यन्त क्षय हो जाता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण तथा अन्तराय की दो ही अवस्था होती है। क्षयोपशम और क्षय। बारहवें तक इनका क्षयोपशम है और बारहवें के अन्त में क्षय है। मोहनीय में चारों अवस्थाएँ होती है। उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम।

प्रश्न 290- किस गुण के तिरोभाव में कौन कर्म निमित्त है ?

उत्तर - ज्ञानगुण के तिरोभाव में ज्ञानावरण निमित्त है। निमित्त में ज्ञानावरण की स्वतः दो अवस्था होती है-क्षय और क्षयोपशम। उपादान में ज्ञानगुण में स्वतः दो नैमित्तिक अवस्था होती है-क्षायिक और क्षायोपशमिक; इसलिए ज्ञानगुण में दो भाव होते हैं, अर्थात् ज्ञानगुण का पर्याय में दो प्रकार परिणमन होता है-क्षायिकपरिणमनरूप केवलज्ञान और क्षायोपशमिकपरिणमनरूप शेष चार ज्ञान और तीन कुज्ञान। [अज्ञानभाव तो औदयिक अंश की अपेक्षा है।]

इसी प्रकार दर्शनगुण में दर्शनावरण निमित्त है। इस गुण की भी

दो अवस्था होती हैं। क्षायिकपरिणमनरूप केवलदर्शन, क्षायोपशमिक-परिणमनरूप चक्षु, अचक्षु, अवधिदर्शन।

दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्यगुण में अन्तरायकर्म निमित्त है। इन गुणों की भी दो अवस्था होती हैं। क्षायिकपरिणमनरूप क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। क्षायोपशमिक-परिणमनरूप क्षायोपशमिक दान, लाभ,भोग, उपभोग और वीर्य। उपरोक्त सब क्षायोपशमिकभाव बारहवें गुणस्थान तक हैं और क्षायिकभाव तेरहवें से प्रारम्भ होकर सिद्ध तक है।

मोहनीय के दो भेद हैं। दर्शनमोह और चारित्रमोह। आत्मा के सम्यक्त्व [श्रद्धा] गुण में दर्शनमोह निमित्त है और चारित्रगुण में चारित्रमोह निमित्त है। श्रद्धागुण की चार अवस्था होती हैं। पहले, दूसरे, तीसरे में इसकी औदयिक अवस्था है। चौथे से सातवें तक प्रथम नम्बर की औपशमिकसम्यक्त्व अवस्था और आठवें से ग्याहरवें तक दूसरी औपशमिकसम्यक्त्व अवस्था रह सकती है। चौथे से सातवें तक क्षायोपशमिक अवस्था रह सकती है और चौथे से सिद्ध तक क्षायिक अवस्था रह सकती है। दर्शनमोह का उदय, मिथ्यात्वभाव में निमित्त है। इसका क्षयोपशम, क्षय तथा उपशम क्रमशः क्षायोपशमिक, क्षायिक और औपशमिकसम्यक्त्व में निमित्त है।

चारित्रगुण की भी चार अवस्थाएँ होती हैं। असंयमभाव में चारित्रमोह का उदय निमित्त है। यह भाव पहले चार गुणस्थानों में होता है। उसका क्षय, क्षायिकचारित्र में निमित्त और बारहवें से ही होता है। इसका उपशम, औपशमिकचारित्र में निमित्त हैं, जो सम्पूर्ण ग्यारहवें में होता है और इसका क्षयोपशम एक तो संयमासंयमभाव में निमित्त है, जो पाँचवें में होता है और दूसरे क्षायोपशमिकचारित्र में निमित्त है, जो छठवें से दसवें गुणस्थान तक होता है।

पञ्चाध्यायी प्रश्नोत्तर समाप्त

पञ्चाध्यायी (आर्ष टीका, भाग 1 से 7 में से संकलित)

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, देहरादून के प्रकाशन

1. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–1	40 रुपये
2. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–2	40 रुपये
3. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–3	40 रुपये
4. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–4	40 रुपये
5. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–5	40 रुपये
6. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–6	40 रुपये
7. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–7	40 रुपये
8. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, भाग–8 (छहढाला प्रश्नोत्तरी)	प्रकाशनाधिन
9. जिनागमसार	अनुपलब्ध

नोट : कृपया उक्त सभी ग्रन्थ प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

— **SHRI KUNDKUND KAHAN DIG. JAIN SWADHYAY MANDIR**
29, Gandhi Road, Dehradun-248001 (Uttarakhand)
Ph. : 0135 - 2654661 / 2623131

— **TEERTHDHAM MANGALAYATAN,**
Aligarh-Agra Road, Sasni-204216, Hathras (U.P.)
www.mangalayatan.com;   info@mangalayatan.com

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

जन्म : सन् 1913

देह परिवर्तन : 19 दिसम्बर 2012

जन्मस्थान : ग्राम टिकरी, जिला मेरठ, उत्तरप्रदेश

पिता – श्री मिट्ठनलाल जैन

माता – श्रीमती भरतोदेवी जैन

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा, मथुरा-चौरासी एवं तत्पश्चात् जम्बू-विद्यालय, सहारनपुर में हुई। लघुवय में लाहौर में स्वतन्त्र व्यवसाय किया। देश के स्वाधीन होने के पश्चात्, स्वदेश वापिसी और बुलन्दशहर (उ०प्र०) में आजाद ट्रेडिंग कम्पनी के नाम से, पुस्तकों एवं स्टेशनरी का व्यवसाय किया। अपनी सहधर्मिणी श्रीमती विमलादेवी, चार पुत्रियों तथा एक पुत्र के साथ, पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए, धर्ममार्ग पर गतिशील रहे।

सिद्धक्षेत्र श्री गिरनारजी की यात्रा के समय, सोनगढ़ में विराजित दिव्यविभूति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल साक्षात्कार के उपरान्त, आपके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हुआ। फलस्वरूप, निरन्तर तत्त्वाराधना एवं तत्त्वप्रचार ही आपके जीवन के अभिन्न अंग बन गये और सम्पूर्ण देश में तत्त्वज्ञान की पताका फहराने के लिये, आप एकाकी निकल पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री के मंगल प्रवचनों एवं माननीय श्री रामजीभाई दोशी एवं खेमचन्दभाई सेठ की कक्षाओं में जो कुछ सीखा, उसे 'जैन-सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला' के, आठ भाग के रूप में संकलन का कार्य कर, जन-जन को जिनधर्म के गूढ़ रहस्य को साधारण भाषा में प्रस्तुत करने का अपूर्व कार्य किया।

आपकी तत्त्वज्ञान की प्रचार-प्रसार की उत्कृष्ट भावनाओं के फलस्वरूप, उन्हें क्रियान्वित करने हेतु, **तीर्थधाम मङ्गलायतन** के रूप में आपके स्वप्न को आपके परिवार व समग्र मुमुक्षु-समाज ने साकार किया। यहाँ से प्रकाशित मासिक-पत्रिका, **मङ्गलायतन** के आप आजीवन प्रधान सम्पादक रहे।

स्वाभिमानीवृत्ति के साथ ही, निर्भीकता, निस्पृहता, सिद्धान्तों पर अडिगता आदि आपके व्यक्तित्व की उल्लेखनीय विशेषताएँ रही हैं।

आपके उपकारों के प्रति नतमस्तक होते हुए, आपके श्रीचरणों में वन्दन समर्पित करते हैं, और आपकी इस अनुपम कृति को समाज के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (भाग-4)